❀ श्रीहरिः ❀

सभाष्य अथर्ववेद की विषयसूची ❀

विषय पृष्ठ

❀ बीसवाँ-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसकी ऋचाओंका अग्निष्टोम आदि यज्ञों प्रयोग होता है। मरुत् शब्दकी व्याख्या। अग्निस्तुति। १

द्वितीय सूक्त। इसकी ऋचाओंसे पोता आग्नीध्र और ब्राह्मणाच्छंसी यजन करते है। ५

तृतीय चतुर्थ पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त। ज्योतिष्टोम आदिमें इनका विनियोग होता है। इन्द्र अग्नि और आदित्यके घोड़ोंके नाम। ८

अष्टम सूक्त। इनका ब्राह्मणाच्छंसी आदि उच्चारण करते हैं। २६

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त। इनकी ऋचायें शस्त्रयाज्या और परिधानीया आदि होती है और इन की ऋचाओंका ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग होता है। इत्यादि। ऋजीष शब्द ३४

त्रयोदश सूक्त। इसकी ऋचाओंका ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंमें विनियोग होता है। ६४

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त। इनका उक्थ्य-क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसीशस्त्रमें विनियोग होता है। ६६

तृतीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त। इनका अति-

विषय पृष्ठ

रात्र क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्रमें विनियोग होता है। आदि १०६

पञ्चम षष्ठ सप्तम और अष्टम सूक्त। इनका अतिरात्र क्रतुके मध्यमपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है १३८

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त। इनका अतिरात्र क्रतुके तृतीय रात्रिपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है। १६४

त्रयोदश सूक्त। इसका अतिरात्र ब्राह्मणाच्छंसितृतीयपर्यायशस्त्रमें विनियोग होता है। १८२

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम द्वितीय सूक्त। इनका नाम साम और अहीन सूक्त है। इन्द्र, धुनि और चुमुरि असुर तथा गृत्समद ऋषि का आख्यान; इन्द्रका अस्तित्व। २००

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम सूक्त। अभिप्लव षडह स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है। २६७

द्वितीय सूक्त। गवामयन आदिमें इसका प्रयोग होता है। २७१

तृतीय सूक्त। पृष्ठ्यके तृतीय दिन आदिमें इनका पाठ होता है। २७४

चतुर्थ सूक्त। पृष्ठ्यषडहके चतुर्थ दिनमें इनका विनियोग होता है। २७५

पञ्चम सूक्त। अश्वमेध त्र्यहके द्वितीय दिन आदिमें इनका विनियोग होता है। २७७

षष्ठ सप्तम सूक्त। अप्तोर्यामक्रतु आदिमें इसका विनियोग होता है। २७८

विषय पृष्ठ

अष्टम सूक्त । इसका तीव्र सुतुपशद उपहव्य और व्युष्टिद्व्यहमें काम पड़ता है । २८१

नवम सूक्त । स्वरसोम आदिमें इसका काम पड़ता है । २८२

दशम सूक्त । इसका अतिरात्र अतिरिक्तोक्थ, छन्दोम, वैश्वदेव त्र्यह और साकमेघ त्र्यहमें विनियोग होता है । २८४

एकादश सूक्त । विषुवत्सौर्यपृष्ठमें यह चतुर्थ स्तोत्रिय होता है । २९२

द्वादश सूक्त । यह छठा स्तोत्रिय होता है । २९५

त्रयोदशसूक्त । वाजपेय और गवामयन आदिमें इसका प्रयोग होता है । २९८

चतुर्दश सूक्त । चतुर्थमाध्यन्दिनसवन, अभिसवके युग्म दिवस, विषुवत् और त्र्यहमें इसका प्रयोग होता है । २९९

पञ्चदशसूक्त । पृष्ठ्य आदिमें इसका विनियोग होता है । ३०२

षोडश सूक्त । त्रिककुद्दशाहाहीनमें इसका विनियोग होता है । ३०५

सप्तदश सूक्त । पृष्ठ्यषडह आदिमें इसका विनियोग है । ३०७

अष्टादश सूक्त । पृष्ठ्य षडह आदिमें इसका विनियो- होता है । ३१०

उन्नीसवाँ सूक्त । पृष्ठ्यपञ्चाहके पञ्चम दिनमें इससे काम लिया जाता है । ३१२

बीसवाँ सूक्त । श्येनसंदंशाजिर आदिमें इसका विनियोग होता है ३१५

इक्कीसवाँ सूक्त । विषुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इसका विनियोग होता है ३२२

बाईसवाँ सूक्त । दशरात्रमें इसका काम होता है । ३२६

विषय — पृष्ठ

तेईसवाँ सूक्त । वैकृत पृष्ठ्यंह आदिमें इसका प्रयोग होता है । — ३२८

चौबीसवाँ सूक्त । वैश्वदेव त्र्यह आदिमें इससे काम लिया जाता है । — ३३२

पच्चीसवाँ सूक्त । इसका विनियोग अन्य सूक्तोंमें है । ३३५

छब्बीसवाँ सूक्त । पृष्ठ्यषडह, वाजपेय, अभिजित् विश्वजित् आदिमें इसका प्रयोग होता है । — ३३६

सत्ताईसवाँ सूक्त । अभिप्लवके पञ्चम दिनमें इसका काम होता है । — ३४५

अट्ठाईसवाँ सूक्त । यह दशाहके नवम दिनमें उक्थस्तोत्रिय होता है । — ३४८

उन्तीसवाँ सूक्त । इन्द्रस्तुति । — ३४६

छठा अनुवाक—

प्रथम सूक्त । पृष्ठ्य पडहमें इससे काम लिया जाता है । ३५०

द्वितीय सूक्त । छन्दोमके प्रथम दिनमें यह पढ़ा जाता है ३५५

तृतीयसूक्त । छन्दोमके द्वितीय दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३६०

चतुर्थसूक्त । छन्दोमके तृतीय दिनमें इसका पाठ होता है । ३६४

पञ्चमसूक्त । स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३७१

सप्तम अनुवाक—

प्रथमसूक्त । पृष्ठ्यपडहमें इसका विनियोग होता है । ३७७

द्वितीयसूक्त । पृष्ठ्यके चतुर्थ दिनमें इससे काम लिया जाता है । — ३७६

तृतीयसूक्त । पृष्ठ्यके पंचम दिन यह काममें आता है ३८३

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठ्यके छठे दिन यह काममें आता है । ३८५

पञ्चम षष्ठ सूक्त । छन्दोम आदिमें इनका विनियोग है । ३८८

विषय पृष्ठ

सप्तम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका विनियोग है । ३९८

अष्टम सूक्त । विषुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४०१

नवम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका प्रयोग है । ४०३

दशम सूक्त । विश्वजित् वैराजपृष्ठ आदिमें इसका विनियोग है । ४०५

एकादश सूक्त । अप्तोर्याम क्रतु आदिमें इसका विनियोग है । ४०७

द्वादश सूक्त । विश्वजित् आदिमें इससे काम लिया जाता है ४०९

त्रयोदश चतुर्दश सूक्त । चतुर्विंश साम्वत्सरिक, छन्दोम त्रिष्वह आदिमें इसका विनियोग है । ४१०

पञ्चदश षोडश सप्तदश अष्टादश एकोनविंश सूक्त । छन्दोममें इससे काम लिया जाता है ४१५

अष्टम अनुवाक–

प्रथम सूक्त । तृतीय छन्दोम दिन आदिमें इसका विनियोग है । ४३३

द्वितीय सूक्त । अतिरात्र पृष्ठ्यषडह और अभिजित्में इसका प्रयोग होता है ४३६

तृतीय सूक्त । श्येनसंदंशाजिरवज्र आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४४८

चतुर्थ सूक्त । तृतीय छन्दोममें इससे काम होता है । ४५२

पञ्चम सूक्त । महाव्रतमें यह पढ़ा जाता है । ४५८

छठा सूक्त । महाव्रत माध्यन्दिन सवनमें यह पढ़ा जाता है । ४६१

विषय पृष्ठ

नवम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । सर्वजित् ऋषभ, बृहस्पतिसव, त्रिककुद्द दशाह आदिमें इसका प्रयोग है । ४७२

द्वितीय सूक्त । तनूपृ३ आदिमें इसका विनियोग है । ४७५

तृतीय सूक्त । अपूर्व एकाहमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । ४७६

चतुर्थ सूक्त । व्रात्यस्तोम पवित्र आदि राजसूय आदि में इसका काम पड़ता है । ४७७

पञ्चम छठा सूक्त । अग्निष्टुत् एकाह आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४८०

सप्तम सूक्त । २० । १०१ के साथ इसका विनियोग कह दिया है । ४८३

अष्टम सूक्त । २० । ४५ के साथ इसका विनियोग है । ४८४

नवम सूक्त । प्राचीन स्तोम एकाह और राज एकाह में इसका विनियोग है । ४८३

दशम सूक्त । इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४८६

एकादश सूक्त । विघन एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४६०

द्वादश सूक्त । वज्रपुनः स्तोम, पवित्र आदि राजसूय वैदस्वरसाम, अभ्यासंग्य, पञ्चशारदीय, आदिमें इसका विनियोग है । ४६८

त्रयोदशसूक्त । अश्वमेधऋयह आदिमें इसका विनियोग है । ५०१

चतुर्दश सूक्त । विराट् आदि चार एकाहोंमें इसका विनियोग है । ५०३

पञ्चदश सूक्त । पवित्र राजसूय आदिमें इसका विनियोग है । ५०५

विषय पृष्ठ

सोलहवाँ सत्रहवाँ सूक्त । त्रिवृति अभिभुत आदिमें इसका विनियोग है । ५०७

अठारहवाँ सूक्त । पवित्र राजसूय आदिमें इसका विनियोग है । ५०८

उन्नीसवाँ सूक्त । साद्यःक्र नामक एकाहोंमें इसका विनियोग है । ५१०

बीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके सर्वस्तोम आदिमें इसका विनियोग है । ५११

इक्कीसवाँ सूक्त । त्रिवृत् आदिमें इसका विनियोग है । ५१३

बाईसवाँ सूक्त । चातुर्मास्य वैश्वदेव, और त्रिककुद् दशाहाहीनमें इसका विनियोग है । ५१४

तेईसवाँ सूक्त । वैश्वदेव आदि त्र्यहमें इसका विनियोग है ५१७

चौबीसवाँ सूक्त । दशाह गवामयनिक आदिमें इसका विनियोग है । ५१८

पचीसवाँ छब्बीसवाँ सूक्त । तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग है ५१९

सत्ताईसवाँ सूक्त । विषुवत् सौर्यपृष्ठमें इससे काम लिया जाता है । ५२२

अट्ठाईसवाँ सूक्त । तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग है । ५२३

उन्तीसवाँ सूक्त । पृष्ठ सौत्रामणि आदिमें इससे काम लिया जाता है । ५२६

तीसवाँ सूक्त । पृष्ठचमें इसका गान होता है । ५३१

३१–४० सूक्त । कुन्ताप सूक्त ५४१

विषय पृष्ठ

इकतालीसवाँ सूक्त । सोमयाग और पृष्ठ्यषडह आदि में इसका प्रयोग होता है । ५६४

बयालीसवाँ सूक्त । त्रिककुद्दशाह आदिमें इसका विनियोग होता है । ५७१

तैंतालीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें इसका पाठ होता है ५७३

चौवालीसवाँ, पैंतालीसवाँ छियालीसवाँ और सैंतालीसवाँ सूक्त । अश्विनीकुमारोंकी स्तुति आदि । ५७५

अथर्ववेदसंहिताकी विषयसूची समाप्त॰



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद.

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

विंशं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म प्रायशः प्राक् प्रपञ्चितम् ।
विंशेथ ब्रह्मवर्ग्याणां शस्त्रयाज्यादि वर्ण्यते ॥

श्रीः । वेद जिनके निश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ । शान्तिक और पौष्टिक कर्मका वर्णन प्रायः पहिले कह दिया है । अब बीसवें काण्डमें ब्रह्मवर्ग्योंके शस्त्रयाज्या आदिका वर्णन किया जाता है ॥

तत्र विंशे काण्डे नवानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके त्रयोदश सूक्तानि । तत्र प्रथमं सूक्तं तृचात्मकम् । तास्तिस्र ऋचः अग्निष्टोमादियज्ञेषु ब्राह्मणाच्छंसिपोत्राग्नीध्राणां क्रमेण प्रातःसवनिकप्रस्थितयाज्याः । सूत्रितं हि वैताने । "प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वर्युः संप्रेष्यति । होतर्यज प्रशास्तर्ब्राह्मणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरग्नीद् इति । इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति । उत्तराभ्यां पोत्राग्नीध्रौ" इति [वै० ३. ६] ॥

इस बीसवें काण्डमें नौ अनुवाक हैं। और पहिले अनुवाक में तेरह सूक्त हैं। इनमें पहिला सूक्त तीन ऋचाओंका है। वे तीनों ऋचाएँ अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें ब्राह्मणाच्छंसी पोता और आग्नीध्र आदिके क्रमसे प्रातःसवनकी प्रस्थितयाज्या हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वर्युः सम्प्रेष्यति। होतर्यज प्रशास्तर्ब्राह्मणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरग्नीद् इति। इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति। उत्तराभ्यां पोत्राग्नीध्रौ।" (वैतानसूत्र ३। ६)

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्र॑ त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे।

स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ १ ॥

इन्द्र॑। त्वा॒। वृ॒ष॒भम्। व॒यम्। सु॒ते। सोमे॑। ह॒वा॒म॒हे॒।

सः। पा॒हि॒। मध्वः॑। अन्ध॑सः ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट। ❀ इदि परमैश्वर्ये। ऋज्रेन्द्र० [उ० २.२८] इत्यादिना रन् प्रत्ययः। निपातनाद् आद्युदात्तः ❀। अथ वा इन्दौ सोमे निमित्तभूते सति द्रवति त्वरया गच्छतीति इन्द्रः। यद्वा इन्दवे सोमाय तत्पानार्थं द्रवतीति वा इन्द्रः। सत्सु अन्येषु दधिपयःप्रभृतिषु द्रव्येषु सोमस्यातिशयेन प्रियत्वाद् उक्तव्युत्पत्तिरिन्द्रशब्दस्यात्र द्रष्टव्या। तादृश इन्द्र त्वा त्वाम्। ❀"आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पदात् परत्वाभावेपि अनुदात्तत्वादेशश्छान्दसः ❀। कीदृशं त्वाम्। वृषभम् कामानां वर्षितारं वयं यजमानाः सोमे सुते अभिषुते सति तत्पानार्थं हवामहे आह्वयामः। ❀ ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च। शपि "बहुलं छन्दसि" इति संप्रसारणम् ❀। स तादृशः अस्माभि-

राहूतस्त्वं मन्त्रः मधुररसस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य। एकदेशम् इति शेषः। अथ वा मन्त्रः मधु अन्धसः अन्धः अन्नं सोमलक्षणम्। ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" इति षष्ठी ❀। पाहि पिब ॥

हे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! (वा इन्दु (सोम) के लिये त्वरासे दौड़ने वाले इन्द्र !) आप कामनाओंकी वर्षा करने वालेको हम सोमके अभिषुत होने पर बुलाते हैं। हमारे बुलाये हुए आप मधुर सोमरसरूपी अन्नका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।
स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

मरुतः। यस्य। हि। क्षये। पाथ। दिवः। विऽमहसः।
सः। सुऽगोपातमः। जनः ॥ २ ॥

हे विमहसः विशिष्टेन अतिशयितेन महसा तेजसा युक्ताः। देवेषु मध्ये एषाम् अतिशयितवीर्यत्वात्। हे मरुतः। म्रियन्ते प्राणिन एभिरिति मरुतः। प्राणात्मकस्य वायोर्निर्गमे सति प्राणिनां मृतिः प्रसिद्धैव। अथ वा म्रियन्त इति मरुतः। इन्द्रेण अदित्या उदरं प्रविश्य एकोनपञ्चाशद्धा खण्डितत्वात् तादृशा एतत्संज्ञया प्रसिद्धा देवा यूयं यस्य हि यस्य खलु यजमानस्य क्षये देवानां निवासस्थाने यागगृहे। ❀ "क्षयो निवासे" इति आद्युदात्तत्वम् ❀। दिवः द्योतमानाद् द्युलोकाद् अन्तरिक्षाद् आगत्य। ❀ "ऊडिदम्०" इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀। पाथ पिबथ। सोमम् इति शेषः। स खलु जनः यजमानः सुगोपातमः अतिशयेन गोपायितृतमः लोके ये गोपायितारः रक्षि

तरक्षका सन्ति तेषां मध्ये स एव श्रेष्ठतम इत्यर्थः। ❀ गोपायतेः विरपि अतोलोपयलोपौ ❀। यस्माद् एवं तस्माद् ममापि यज्ञगृहे सोमं पिबतेत्यभिप्रायः॥

हे देवताओंमें विशिष्ट तेजस्वी मरुतो! (मरुत् शब्दकी व्युत्पत्ति यह है, कि-"म्रियन्ते प्राणिनः एभिः-इनसे प्राणी मर जाते हैं" इस लिये ये मरुत् कहलाते हैं। प्राणरूपी वायुके निकलने पर मरण होना प्रसिद्ध ही है। अथवा यह व्युत्पत्ति भी होती है, कि "म्रियन्त इति मरुतः।-जो मरे हैं वे मरुत् हैं" इन्द्रने इनकी माताके उदरमें प्रवेश करके इनके उड़भ्रास टुकड़े कर डाले थे, इस कारण ये मरुत् कहलाते हैं, ऐसे हे मरुतो!) तुम जिस यजमानके यागगृहमें द्युलोकसे आकर सोमका पान करते हो वह पुरुष, लोकमें जो पुरुष अपने आश्रितोंकी रक्षा करते हैं उन में परमश्रेष्ठ (गोपायितृतम) होजाता है। यह बात है इस लिये आप मेरे यज्ञगृहमें भी सोमका पान करिये॥ २॥

तृतीया॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
स्तोमैर्विधेमाग्नये॥ ३॥

उक्षऽअन्नाय। वशाऽअन्नाय। सोमऽपृष्ठाय। वेधसे।
स्तोमैः विधेम। अग्नये॥ ३॥

उक्षः सेचनसमर्थो गौः अन्नं यस्य स तथोक्तः। तादृशाय तथा वशान्नाय। वशा वन्ध्या अजादिका सा अन्नं हविर्यस्य स वशान्नः। तस्मै। उक्षवशयोरग्नेरन्नत्वम् "अगोरुधाय" इत्येतं मन्त्रं व्याचक्षाणेन आश्वलायनेन उक्तम्। "एत एव म उक्षाणश्च ऋषभाश्च वशाश्च भवन्ति" इति [आश्व० गृ० १.१]। तथा सोम-

पृष्ठाय सोमः सोमरसः पृष्ठे उपरिदेशे मुखे यस्य स तादृशाय वेधसे विधात्रे सर्वस्य स्रष्ट्रे एवम् उक्तगुणविशिष्टाय अग्नये अह्नादिगुणविशिष्टाय देवाय अग्नये अभ्यर्चयम् । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति चतुर्थी ❀ । स्तोमैः स्तोत्रैः स्तुतिसाधनभूतैः शस्त्रादिभिः विधेम परिचरेम । ❀ विध विधाने । तौदादिकः ❀ ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ॥

वृषभ और वंध्या बकरी आदि जिनका अन्न है, और जिन के ऊपर सोम रहता है ऐसे सबके स्रष्टा अह्नादि गुणोंसे संपन्न अग्निदेवके लिये हम स्तुतिके भेद शस्त्र आदिसे स्तुति करते हैं ३

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६१७)

"मरुतः पोत्रात्" इत्याद्यारचत्वार ऋतुप्रैषाः । तत्र आद्योत्तमाभ्यां पोता यजति । द्वितीयतृतीयाभ्याम् आग्नीध्रब्राह्मणाच्छंसिनौ । सूत्रितं हि । "सदस्युपविष्टा यथाप्रैषम् ऋतून् यजन्ति । मरुतः पोत्राद् इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृतीयया ब्राह्मणाच्छंसी" इति [वै० ३. ६] ॥

"मरुतः पोत्राद्" आदि चार ऋतुप्रैष हैं । इनमेंसे पहिली और उत्तमा (अन्तिम) ऋचाओंसे पोता यजन करता है । और दूसरी तथा तीसरी ऋचाओंसे आग्नीध्र और ब्राह्मणाच्छंसी यजन किया करते हैं । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"सदस्युपविष्टा यथाप्रैषं ऋतून् यजन्ति । मरुतः पोत्राद् इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृतीयया ब्राह्मणाच्छंसी" । (वैतानसूत्र ३ । ६) ॥

तत्र प्रथमः प्रैषः ॥

मरुतः॑ पोत्रात् सुष्टुभः॑ स्वर्कादृतुना सोमं॑ पिबतु १

मरुतः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् । पिबतु ॥ १ ॥

मरुतः एतन्नाम्ना प्रसिद्धा देवाः पोत्रात् पोतुः कर्म पोत्रम् तस्मात् । तत्कृताद् यागाद् इत्यर्थः । कीदृशात् । सुष्टुभः । ॐ स्तोभतिः स्तुतिकर्मा ॐ । शोभनस्तोभोपेतात् तथा स्वर्कात् सुष्ठु अर्च्यते देवः अनेनेति स्वर्कम् तस्मात् स्वर्चनात् । यद्वा सुष्टुभः । अत्र स्तोभशब्देन स्तोभोपेतं स्तोत्रम् उच्यते । शोभनस्तोत्रोपेतात् । स्वर्कात् । अर्च्यन्ते एभिरिति अर्का मन्त्राः । शोभनमन्त्रोपेतात् । शोभनशस्त्रोपेताद् इत्यर्थः । एवंभूतात् पोतुर्यागाद् ऋतुना सह सोमम् अभिषवादिसंस्कारोपेतं सोमरसं पिबतु पिबन्तु । वचनव्यत्ययः ॥

मरुत् नामक प्रसिद्ध देवता पोताके किये हुए सुन्दर स्तुति वाले और शोभन मन्त्रों वाले यागरूपी कर्म पोत्रसे ऋतुके साथ अभिषव आदि संस्कारोंसे सम्पन्न सोमको पियें ॥ १ ॥

द्वितीयः ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु २

अग्निः । आग्नीध्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् । पिबतु ॥ २ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणविशिष्टो देवः आग्नीध्रात् । अग्निम् इन्ध इति अग्नीत् । स एव आग्नीध्रः एतन्नामा ऋत्विक् । तत्कर्मापि आग्नीध्रम् । यद्वा अग्नीधः कर्म आग्नीध्रम् । तस्माद् आग्नीध्रात् । शिष्टं पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

अंगनादि गुणविशिष्ट अग्निदेव, अग्निका समिन्धन करने वाले आग्नीध्र नामक ऋत्विजके कर्म आग्नीध्रसे प्रसन्न होकर ऋतुके

साथ सोमरसका पान करें। इस आग्नीध्रमें सुन्दर स्तुतियें हैं और सुन्दर मन्त्र हैं ॥ २ ॥

तृतीयः ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

इन्द्रः । ब्रह्मा । ब्राह्मणात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् । पिबतु ॥ ३ ॥

इन्द्रः परमैश्वर्यादिगुणयुक्तो देवः स एव ब्रह्मा । बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च । इन्द्रस्य ब्रह्मात्मना स्तुतिः "इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः" [ऋ० ८. १६. ७] इत्यादिमन्त्रवर्णाद् अवगन्तव्या । ब्राह्मणात् । अत्र ब्राह्मणशब्देन ब्राह्मणाच्छंस्याख्य ऋत्विग् अभिधीयते । तत्कृतं कर्मापि ब्राह्मणम् इत्युच्यते । यद्वा अत्र ब्रह्मशब्देन ब्राह्मणाच्छंसी निर्दिश्यते । तत्कर्म शस्त्रयागलक्षणं ब्राह्मणम् तस्मात् । शिष्टं पूर्ववत् ॥

परम ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वे बृहत् हैं। [इन्द्रकी ब्रह्मारूपमें स्तुति 'इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः' ऋग्वेदसंहिता ८ । १६ । ७ आदिक मन्त्रोंसे समझनी चाहिये।] ऐसे ब्रह्मा इन्द्र ! ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विजके किये हुए सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे, अभिषव आदि संस्काररूप ऋतुसे (शुद्ध हुए) सोमरसका पान करें ३

अथ चतुर्थः ॥

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

देवः । द्रविणःऽदाः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् । पिबतु ॥ ४ ॥

द्रविणोदाः । द्रविणं हिरण्यादिलक्षणं धनं बलं वा । तद् ददातीति द्रविणोदाः एतन्नामको देवः । अस्य धनदातृत्वम् "द्रविणोदा ददातु नो वसूनि" [ऋ० १. १५. ८] इत्यादिमन्त्रान्तरेषु धनप्रार्थनाविषयतया प्रसिद्धम् । ❁ द्रुदक्षिभ्याम् इनन् [उ० २. ५०] इति इनन्प्रत्ययान्तो द्रविणशब्दः ❁ ॥

इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

धनका प्रदान करने वाले द्रविणोदा नामक देवता, कि जिनका धन देना धर्म "द्रविणोदा ददातु नो वसूनि ।—द्रविणोदा देवता हमको धन प्रदान करें" ऋग्वेदसंहिता (१ । १५ ८) आदिक मन्त्रोंमें प्रसिद्ध है वह पोता नामक ऋत्विजके किये हुए सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे अभिषव आदि संस्काररूप ऋतुसे शुद्ध हुए सोमरसका पान करें ४

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६१८) ॥

ज्योतिष्टोमादिषु प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे "आ याहि" इति पञ्च सूक्तानि विनियुक्तानि । तत्र "आ याहि सुषुमा हि ते" इत्याद्यौ तृचौ स्तोत्रियानुरूपौ । "अयमु त्वा विचर्षणे" इति सप्तर्चः "इन्द्र त्वा वृषभं वयम्" इति नवर्चश्च शंसनीयाः उक्थमुखम् इति व्यवह्रियन्ते । "उदु येदभि" इति तिस्रः ऋचः पर्यास इत्युच्यते । अत्रोत्तमा परिधानीया । सूत्रितं हि । "आ याहि सुषुमा हि ते [२०. ३] आ नो याहि सुतावतः [२०. ४] इति स्तोत्रियानुरूपौ । अयमु त्वा विचर्षणे [२०. ५] इत्युक्थमुखम् । उदु येदभि श्रुतामघम् [२०. ७] इति पर्यासः । उत्तमा परिधानीया । त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमाम् अन्वाह । अर्धर्चशस्य ऋगन्तं प्रणवेनोपसंतनोति" इति [वै० ३. ११] ॥

ज्योतिष्टोम आदिमें प्रातःसवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें "आ याहि" आदि पाँच सूक्तोंका विनियोग होता है । इनमें "आ याहि

सुषुमा हि ते" ये आदिम दो तृच स्तोत्रियानुरूप हैं। "अयमु त्वा विचर्षणे" यह सात ऋचाएँ और "इन्द्र त्वा वृषभं वयम्" यह तीन ऋचाएँ शंसनीय और उक्थमुख कहलाते हैं। "उद्घेदभि" आदि तीन ऋचाएँ पर्यास कहलाती हैं। इनमें उत्तमा परिधानीया है। सूत्रमें भी कहा है, कि—"आ याहि सुषुमा हि ते (२० । ३) आ नो याहि सुतावतः (२० । ४) इति स्तोत्रियानुरूपौ। अयमु त्वा विचर्षणे (२० । ५) इत्युक्थमुखम्। उद्घेदभि श्रुतमघम् (२० । ७) इति पर्यासः। उत्तमा परिधानीया। त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमां अन्वाह। अर्धर्चश आगन्तम् प्रणवेनोपसंतनोति" (वैतानसूत्र ३ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ। याहि। सुसुम। हि। ते। इन्द्र। सोमम्। पिब। इमम्।
आ। इदम्। बर्हिः। सदः। मम ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यादिगुणविशिष्ट त्वम् आ याहि आगच्छ। किमर्थम् आगमनम् इति तत्राह। ते त्वदर्थं सोमं सुषुमा हि अभिषुतवन्तः खलु। ⊛ षुञ् अभिषवे। "बहुलं छन्दसि" इति शपः लुक्। "हि च" इति निघातप्रतिषेधः। सुषुमा हि त इत्यत्र छान्दसः सांहितिको दीर्घः ⊛। इमम् अभिषुतं सोमं पिब पानं कुरु। इदम् आस्तीर्णं बर्हिः आ सदः आसीद। ⊛ लेटि अडागमे इतश्च लोपे च कृते रूपम् ॥

हे इन्द्र! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया

है। इस अभिषुत सोमका आप पान करिये। इन बिछी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मऽयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिना । उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां ब्रह्मयुजा ब्रह्मयुजौ ब्रह्मणा मन्त्रेण रथे युज्यमानौ हरी अभिमतप्रदेशं प्रति आहरणशीलौ एतन्नामानावश्वौ। एताविन्द्रस्य प्रतिनियतौ। ❀ हरी इन्द्रस्य लोहितोऽग्नेर्हरित आदित्यस्येत्यादि निरुक्तात् [निघ० १. १५] ❀ । तावेव विशिनष्टि केशिनेति। केशिना केशिनौ प्रकृष्टैः केशैः स्कन्धवाल इत्यादिप्रदेशस्थैर्युक्तौ । अनेन तयोः प्रभूतशक्तिमत्त्वम् उक्तं भवति। तौ आ वहताम् आगमयताम्। तदर्थं नः अस्माकं ब्रह्माणि आह्वानसाधनान् मन्त्रान् उप शृणु। अथ वा आगत्य नः ब्रह्माणि स्तोत्राणि उप शृणु। ❀ वृह वृहि वृद्धौ इत्यस्य बृंहेरम् नलोपश्च [उ० ४. १४५] इति मनिन्प्रत्यये नलोपे च कृते तत्संनियोगेन अमागमे च कृते ब्रह्मेति रूपम् ❀ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्ट स्थान स्थानको लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी † नामक घोड़े आपको (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आह्वानके मन्त्रोंको सुनिये ॥ २ ॥

† "हरीन्द्रस्य लोहितोऽग्नेर्हरित आदित्यस्येत्यादि।–इन्द्रके घोड़ोंका नाम हरी है। अग्निदेवके घोड़ेका नाम लोहित है और आदित्यके घोड़ोंका नाम हरित है। (निघंटु १ । १५)

तृतीया ॥

ब्रह्माणंस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनंः ।
सुतावंन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ।
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वयं यजमाना ब्रह्माणः ब्राह्मणाः । यद्वा ब्रह्माणः ब्राह्मणान्ब्रंसिनो वयम् । ॐ ब्रह्मशब्दः पुंलिङ्गोन्तोदात्तः ॐ । त्वा त्वां युजा । युज्यत इति युक् । स्तोतव्यदेवताहृदयस्पृशा स्तोत्रेण हवामहे आह्वयामः । कीदृशं त्वाम् । सोमपाम् सोमस्य पातारम् । इन्द्रस्य सोमपाने अतिशयितप्रियत्वाद् एवं विशेष्यते । कीदृशा वयम् । सोमिनः सोमवन्तः कृतसोमयागाः । अस्तु प्रस्तुते क्रियायातम् इति तत्राह । सुतावन्तः सोमानभिषुतवन्तः सुतेन सोमेन युक्ता वा । अभिषवग्रहणादिसंस्कारैः संपादितसोमा इत्यर्थः । ॐ छान्दसो दीर्घः ॐ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले ब्राह्मण सोमयाग कर चुके हैं और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है । ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६९९)

"आ नो याहि" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"आ नो याहि" सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

आ नों याहि सुतावंतोस्माकं सुष्टुतीरुपं ।

पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥

आ । नः । याहि । सुतऽवतः । अस्माकम् । सुऽस्तुतीः । उप ।
पिब । सु । शिप्रिन् । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र सुतावतः सूयते अभिषूयत इति सुतः सोमः । तद्वतः अभिषुतसोमान् नः अस्मान् प्रति । ❀ "शरादीनां च" इति मतुपि पूर्वपदस्य सांहितिको दीर्घः ❀ । आ याहि आगच्छ । तदेव विशिनष्टि । अस्माकं सुष्टुतीः शोभनाः स्तुतिः उप याहि उपागच्छ । सोमे सुसंस्कृते कृते च शस्त्रे अवश्यम् आगच्छेत्यर्थः । आगत्य च हे सुशिप्रिन् शोभनहनूयुक्त । अनेन सोमपानोचितवक्त्रोपेतत्वम् उक्तं भवति । अथ वा शोभननासिकोपेत । अनेन सोमरसाघ्राणोचितनासायुक्तत्वम् उक्तं भवति । ❀शिप्रे हनू नासिके वेति निरुक्तम् [नि० ६, १७] । ❀ तादृशस्त्वम् अन्धसः अन्धः अन्नं सोमरसलक्षणम् अन्धस एकदेशं वा ग्रहेण धृतम् अंशं पिब पानं कुरु ॥

हे इन्द्र ! हम सोम वालोंके पास आप आइये, हमारी सुन्दर स्तुतियोंकी ओर ध्यान देकर आप आइये और सुन्दर नासिका वा ठोड़ी वाले आप इस सोमरूप अन्नके कुछ भागका माशन करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

आ । ते । सिञ्चामि । कुक्ष्योः । अनु । गात्रा । वि । धावतु ।
गृभाय । जिह्वया । मधु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ते तव कुक्ष्योः । भागद्वयापेक्षया द्विवचनम् । कुक्षेरुभयोः पार्श्वयोः आ सिञ्चामि पूरयामि । सोमरसम् इति शेषः । अनेन दीयमानस्य सोमरसस्य कुक्ष्यवयवपूर्तिपर्यन्तम् अभिवृद्धिरुक्ता भवति । स च उदरस्थो गात्रा गात्राणि । अनेन गात्रशब्देन गात्रावयवा लक्ष्यन्ते । सर्वाण्यङ्गानि हस्तपादादीनि वि धावतु तत्तन्नाडीषु सर्वत्र प्रवहतु । अतस्त्वं मधु मधुवत् स्वादुतरं सोमरसं जिह्वया रसनया गृभाय गृहाण । ❀ ग्रहेः "छन्दसि शायजपि" इति श्नः शायजादेशः । संप्रसारणं च । "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी दोनों कोखोंको मैं सोमरससे पूर्ण करना चाहता हूँ, वह सोम आपके हाथ पैर आदि सब अङ्गोंमें अर्थात् उनकी नाड़ियोंमें दौड़े अतः आप मधुकी समान स्वादु सोमरस को जिह्वासे ग्रहण करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

स्वादुः । ते । अस्तु । सम्ऽसुदे । मधुऽमान् । तन्वे । तव ।
सोमः । शम् । अस्तु । ते । हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र संसुदे सम्यक् सुष्ठु दात्रे । अत्र सम् इत्यनेन दानस्य सुकरत्वम् अभिधीयते । सु इत्यनेन च दानविषयस्य धनादेः प्राशस्त्यं बहुत्वं च विवक्ष्यते । तादृशाय ते तुभ्यं मधुमान् माधुर्योपेतः सोमः अस्माभिर्दीयमानः स्वादुरस्तु स्वदनीयोस्तु । अनन्तरं च स सोमः तव तन्वे शरीराय । बलकार्यस्त्विति शेषः । अथ वा शम् अस्तु इत्येतद् अत्राप्यन्वेनव्यम् । तव शरीराय

सुखकरं भवत्वित्यर्थः । तथा ते हृदे हृदयाय च शम् अस्तु मनसे सुखकरं भवतु । ❀ स्वादुष्ट इति । "युष्मत्ततक्षुःष्वन्तःपादम्" इति सकारस्य षत्वम् । ततः ष्टुत्वम् ❀ ॥

इति चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! धन आदिका भली प्रकार दान करने वाले आपके लिये हमारा दिया हुआ मधुररसयुक्त सोम भली प्रकार स्वाद लेने योग्य होवे और आपके शरीरके लिये बलप्रद हो, और यह सोम आपके हृदयको सुख देने वाला होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (६२०) ॥

"अयमु त्वा विचर्षणे" इति सप्तर्चस्य विनियोग उक्तः ॥

"अयमु त्वा विचर्षणे" इस सात ऋचा वाले सूक्तका विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

अयम् । ऊं इति । त्वा । विऽचर्षणे । जनीःऽइव । अभि । सम्ऽवृतः । प्र । सोमः । इन्द्र । सर्पतु ॥ १ ॥

हे इन्द्र विचर्षणे । विचर्षणिः पश्यतिकर्मा । हे विद्वष्टः इन्द्र जनीरिव जनय इव । ❀ विभक्तिव्यत्ययः ❀ । जनयन्त्यपत्यान्यास्विति जनिशब्दव्युत्पत्तिः । ता यथा पुत्रादिभिः अभितः संवृता वर्तन्ते एवं अयणद्रव्यैः अध्वर्युप्रभृतिभिर्वा अभि संवृतः अभित आच्छन्नोयं सोमः । उ इति पूरणः । त्वा त्वां प्र सर्पतु प्रगच्छतु । ❀ विचर्षण इति । विपूर्वात् कृष विलेखने इत्यस्मात् कृषेरादेश्च चः इति [उ० २. १०३] अनिप्रत्ययः आदेः ककारस्य चकारश्च ❀ ॥

हे द्रष्टा इन्द्रदेव ! जैसे सन्तानोंको उत्पन्न करने वाली स्त्रियें पुत्र आदिसे चारों ओरसे घिरी रहती हैं । इसी प्रकार अध्वर्यु आदिसे भली प्रकार घिरा हुआ यह सोम आपको प्राप्त होवे १

द्वितीया ॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

तुविऽग्रीवः । वपाऽउदरः । सुऽबाहुः । अन्धसः । मदे ।
इन्द्रः । वृत्राणि । जिघ्नते ॥ २ ॥

अनया सोमस्य अतिशयितवीर्यसाधनत्वम् अभिधीयते । अन्धसः सोमलक्षणस्य अन्नस्य भक्षणेन मदे सति इन्द्रो देवः तुविग्रीवः । तुवीति बहुनाम । प्रभूतकन्धरः । भवतीति शेषः । ग्रीवाशब्दः स्कन्धस्योपलक्षकः । वृषवत् • समृद्धस्कन्ध इत्यर्थः । तथा वपोदरः वपा यथा विस्तीर्णा भवति एवं विस्तृतोदरश्च भवति। तथा सुबाहुः शोभनबाहुः पृथुभुजश्च भवति एव सोमपानेन अभिवृद्धगात्रः सन् पश्चाद् वृत्राणि वृत्रवद् आवरकान् शत्रून् जिघ्नते हिनस्ति इत्येवं सोमस्य महिमा ॥ यद्वा तुविग्रीवत्वादयः इन्द्रस्य स्वाभाविका धर्माः । उक्तलक्षण इन्द्रः सत्स्वपि तेषु अन्धसो मदे सत्येव वृत्राणि जिघ्नते इति सोमप्रशंसा ॥

[इस ऋचामें सोमका परमवीर्यप्रद होना वर्णन किया गया है, कि-] सोमरूपी अन्नके भक्षणसे मद होने पर इन्द्रदेवके कंधे बैलके कन्धोंकी समान मोटे होजाते हैं, पेट वपा (चरबी) सा विशाल होजाता है और भुजाएँ मोटी होजाती हैं । इस प्रकार सोमपान शरीर बढ़ जाने पर इन्द्रदेव वृत्रकी समान घेरने वाले शत्रुओंको मार डालते हैं। [यह सोमकी महिमा है] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्रेहिं पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

इन्द्र । प्र । इहि । पुरः । त्वम् । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ।
वृत्राणि । वृत्रऽहन् । जहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र विश्वस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य सर्वस्य ईशानः । अनेन इन्द्रस्य सर्वत्र प्रतिघटराहित्यम् उक्तं भवति । तादृशस्त्वं पुरः प्रेहि अस्माकं सेनायाः पुरतो गच्छ । गत्वा च हे वृत्रहन् वृत्रस्य एतन्नामकस्य असुरस्य हन्तः वृत्राणि अस्मदावरकान् शत्रून् जहि घातय । ❀ "हन्तेर्जः" इति जभावः ❀ ॥

हे स्थावर जङ्गम सब जगत्के ईश इन्द्र ! आप हमारी सेनाके आगे २ चलिये और हे वृत्र नामक शत्रुओंको मारने वाले ! आप वृत्रासुरकी समान घेरने वाले हमारे शत्रुओंका संहार करिये ३

चतुर्थी ॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

दीर्घः । ते । अस्तु । अङ्कुशः । येन । वसु । प्रऽयच्छसि ।
यजमानाय । सुन्वते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते अङ्कुशः । अङ्कुशवत्प्रवाङ्गुलिको हस्तः अङ्कुश इत्युच्यते । स दीर्घोऽस्तु । प्रदानविषये संकोचरहितोस्त्वित्यर्थः । तमेव विशिनष्टि । येनाङ्कुशेन सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते सोम-

लक्षणस्य हविषो दात्रे यजमानाय वसु धनं प्रयच्छसि । स तादृशो दीर्घोस्तु ॥

हे इन्द्र ! आपका अङ्कुशकी समान नमी हुई अँगुलियों वाला अङ्कुशरूपी हाथ, देनेके लिये लम्बा होवे, जिस हाथमें आप सोमाभिषव करने वाले सोमरूपी हविके दाता यजमानको धन देते हैं, वह हाथ लम्बा होवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

अयम् । ते । इन्द्र । सोमः । निऽपूतः । अधि । बर्हिषि ।
आ । इहि । ईम् । अस्य । द्रव । पिब ॥ ५ ॥

हे इन्द्र अधि बर्हिषि । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । आस्तीर्णे दर्भे निपूतः दशापवित्रेण नितरां शोधितः । उपलक्षणम् एतत् । ग्रहणश्रयणादिसंस्कारैः संस्कृतोयं सोमः ते त्वदर्थः । यस्मादेवं तस्मात् एहि आगच्छ । अस्मयज्ञं प्रतीति शेषः । आगमनविलम्बम् असहमान आह द्रवेति । त्वरया आगच्छेत्यर्थः । आगत्य च ईम् इदानीम् अस्य अमुं त्वदर्थं निपूतं सोमं पिब पानं कुरु ॥

हे इन्द्रदेव ! दर्भों पर दशापवित्रके द्वाराके (अंगोछेके द्वारा) परम पवित्र किया हुआ (ग्रहण श्रयण आदि संस्कारोंसे संस्कृत) यह सोम आपके लिये है अत एव आप हमारे यज्ञकी ओर आइये (आगमनमें विलम्बको न सहता हुआ कहता है, कि–) शीघ्रतासे आइये और आकर इस समय आपके लिये पवित्र किये हुए सोमका पान करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

शाचिगो इति शाचिऽगो । शाचिऽपूजन । अयम् । रणाय । ते । सुतः ।
आखण्डल । प्र । हूयसे ॥ ६ ॥

हे शाचिगो । शाचयः प्रत्यानेतुं शक्ता गावो यस्य स शाचिगुः । पणिभिरपहृतानां गवां प्रत्यानेतृत्वमसिद्धेः । तथा शाचिपूजन । पूज्यते एभिरिति पूजनानि स्तोत्राणि । शाचीनि शक्तानि स्तुत्यविषयगुणप्रकाशकानि स्तोत्राणि यस्य स शाचिपूजनः । तस्य संबोधनम् । ❀ "आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वान्निघाताभावः ❀ । हे उक्तगुणविशिष्ट इन्द्र रणाय । ❀ मकारलोपश्छान्दसः ❀ । रमणाय रमणीयाय ते तुभ्यम् । यद्वा ते तव रणाय रमणाय क्रीडनाय अयं सोमः सुतः अभिषवादिना संस्कृतः । तस्मात् कारणात् हे आखण्डल आ समन्तात् खण्डयति शत्रून् इति आखण्डलः । शत्रुहिंसक इन्द्र त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आह्वानविषयः करिष्यसे सोमपानार्थम् अस्माभिराहूयसे । ❀ आखण्डलेति । आङ्पूर्वात् कडि खडि भेदने इत्यस्माच्चौरादिकाद्धातोः मङ्गेरलच् [उ० ५, ७०]इत्यत्र बाहुलकाद् अलच् प्रत्ययः । आमन्त्रिताद्युदात्तः ❀ ॥

हे पणि नामक असुरोंके द्वारा हरी हुई गौओंको लौटानेमें समर्थ शाचिगो ! हे स्तुतिके योग्य गुणोंको प्रकाशित करने वाले स्तोत्रोंसे सम्पन्न शाचिपूजन इन्द्र ! यह सोम आपको आनन्द देनेके लिये अभिषुत होगया है । हे शत्रुओंको चारों ओरसे खण्डित करने वाले आखण्डल इन्द्र ! इस लिये हम आपको बुला रहे हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

यस्ते॑ शृङ्गवृषो नपात् प्रण॑पात् कुण्डपाय्यः॑ ।

न्य॑स्मिन् दध्र आ मनः॑ ॥ ७ ॥

यः। ते। शृङ्गऽवृषः। नपात्। प्रण॑पादिति प्रऽन॑पात्। कुण्डऽपाय्यः॑।

नि। अस्मिन्। दध्रे। आ। मनः॑ ॥ ७ ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् शृङ्गवृषणनामा कश्चिद् ऋषिः तस्य न पातयति कुलम् इति नपात् पुत्रः। तस्य संबोधनम्। यद्वा शृङ्गवद् उन्नता रश्मयः शृङ्गशब्देन उच्यन्ते। तैर्वर्षतीति शृङ्गवृड् आदित्यः। तस्य न पातयिता दिवि स्थापयिता इन्द्रः शृङ्गवृषो नपाड् इत्युच्यते। तादृश इन्द्र ते तव यः प्रसिद्धः प्रणपात् कुण्डपाय्यः कुण्डैः पातव्यः सोमो यस्मिन् क्रतौ स कुण्डपाय्यः क्रतुरस्ति। ❁ "क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ" इति पिवतेः यत्प्रत्ययान्तत्वेन निपातितः ❁। अस्मिन् बहुसोमवति क्रतौ त्वं मनो नि दध्रे धारयसि सर्वतः स्थापयसि। ❁ दधातेर्लिटि "इरयो रे" इति रेभावः ❁॥

इति पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे शृंगकी समान उन्नत किरणों वाले सूर्यदेवका पतन न होने देने वाले शृङ्गवृषो नपात् इंद्र! आपका जो पतन न होने देने वाला (जिसमें कुण्डोंसे सोम पिया जाता है ऐसा) कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उस बहुतसे सोम वाले यज्ञमें आप मनको लगाइये ॥७॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (६२१)

"इन्द्र त्वा वृषभं वयम्" इति नवर्चस्य सूक्तस्य प्रातःसवनशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"इंद्र त्वा वृषभं वयम्" इस नौ ऋचा वाले सूक्तका प्रातःसवनशस्त्रमें विनियोग कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।
सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

व्याख्यातेयम् अनुवाकादौ ॥

हे इंद्रदेव ! फलोंकी वर्षा करने वाले आपका हम सोमके अभिपुत होने पर आह्वान करते हैं, आप मधुररससम्पन्न सोमरूपी अन्नके एक भागका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् सोमम् । हर्य । पुरुऽस्तुत ।
पिब । आ । वृषस्व । ततृपिम् ॥ २ ॥

हे पुरुष्टुत पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्तुत बहुप्रकारं स्तुत वा हे इन्द्र क्रतुविदम् क्रतोर्यागस्य लम्भकं निष्पादकं सुतम् अभिषवादिना संस्कृतम् इमं सोमं हर्य कामय । ❀ हर्य गतिकान्त्योः इत्यस्य लोटि रूपम् । निघातः ❀ । कामयित्वा च ततृपिम् तर्पकं प्रीणयितारम् इमं सोमं पिब पानं कुरु । तदेव विशिनष्टि । आ वृषस्व जठरे सिञ्च । यथा जठरकुहरस्य अत्यन्तं सर्वतः पूर्तिर्भवति तथा कुर्वित्यर्थः । ❀ ततृपिम् । तृप प्रीणने इत्यस्मात् "छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्" इति किन् । तस्य लिड्वद्भावाद् द्विर्वचनादि ।

संहितायाम् "अन्येषामपि दृश्यते" इत्यभ्यासस्य दीर्घः। निपाद् आद्युदात्तः ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे स्तुति पाने वाले इंद्र! आप यज्ञको साधने वाले, अभिषव आदिसे संस्कृत इस सोमकी कामना करिये। और कामना करके इस तृप्त करने वाले सोमका पान करिये इससे अपने उदरको सींचिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

इन्द्र। प्र। नः। धितऽवानम्। यज्ञम्। विश्वेभिः। देवेभिः। तिर। स्तवान। विश्पते ॥ ३ ॥

हे स्तवान। कर्मणि कर्तृप्रत्ययः। स्तूयमान हे विश्पते विशो देवविशो मरुतः तेषां स्वामिन्। यद्वा विशां प्रजानां सर्वासां पते हे इन्द्र नः अस्माकं धितावानम् धितं धानं तद्वन्तं सोमस्य निधानवन्तम्। ग्रहादिभिर्गृहीतसोमम् इत्यर्थः। "छन्दसीवनिपौ०" इति मत्वर्थीयो वनिप्। उक्तलक्षणं यज्ञं विश्वेभिः सर्वैर्यष्टव्यैः देवेभिः देवैः सह प्र तिर वर्धय। हविःस्वीकारेणेति शेषः। तरतेर्व्यत्ययेन शः। प्रत्ययस्वरः। प्र ण इति। "उपसर्गाद् बहुलम्" इति संहितायां णत्वम् ॥

हे स्तुति पाने वाले! हे देवप्रजा मरुतोंके स्वामिन् इन्द्र! आप हमारे सोम वाले यज्ञको सब पूजनीय देवताओं सहित हवि स्वीकार करके बढ़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तव । प्र । यन्ति । सत्ऽपते ।

क्षयम् । चन्द्रासः । इन्दवः ॥ ४ ॥

हे सत्पते सतां यजमानानां पालक, इन्द्र सुताः, अभिषुताः चन्द्रासः चन्द्रा आह्लादकारिण इन्दवः क्लिन्ना रसात्मका इमे हूयमानाः सोमाः तव क्षयम् । क्षियन्ति निवसन्ति अत्रेति क्षयो निवासस्थानम् । तव जठरम् इत्यर्थः । ❀ "क्षयो निवासे" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । प्र यन्ति गच्छन्ति । ❀ इन्दव इति । उन्देरिच्चादेः [उ०१,१२] इति उप्रत्ययः । निदित्यनुवृत्तेराद्युदात्तः❀।

हे सज्जन यजमानोंका पालन करने वाले इन्द्रदेव ! ये अभिषुत आन्हाद देने वाले सोम आपके जठरको प्राप्त होरहे हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।

तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥

दधिष्व । जठरे । सुतम् । सोमम् । इन्द्र । वरेण्यम् ।

तव । द्युक्षासः । इन्दवः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र वरेण्यम् वरणीयं स्पृहणीयं सुतम् अभिषुतम् इमं सोमम् अस्माभिर्हूयमानं जठरे दधिष्व धारय । ❀ दधातेर्लोटि रूपम् । "आगमा अनुदात्ताः" इति इटोनुदात्तत्वात् प्रत्ययस्वरः ❀ । सोमानाम् इन्द्रस्य असाधारणं स्वत्वम् आह । द्युक्षासः दीप्तिमन्तो दीप्तिनिवासस्थानभूता इन्दवः सोमाः तव । असाधारणस्वभूता इति शेषः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस स्पृहणीय अभिषुत सोमको अपने हृदय में धारण करिये दीप्तिके निवासरूप ये सोम आपके असाधारण भाग हैं ॥ ५,॥

षष्ठी ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

गिर्वणः । पाहि । नः । सुतम् । मधोः । धाराभिः । अज्यसे ।

इन्द्र । त्वाऽदातम् । इत् । यशः ॥ ६ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय संभजनीय इन्द्र । ❀ वन षण संभक्तौ इत्यस्माद् असुन् । गिर उपधाया दीर्घाभावश्छान्दसः । "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम् ❀ । नः अस्माकं संबन्धिनं सुतम् अभिषुतं सोमं पाहि पिब । अहूयमानस्य कथं पानप्रसक्तिरित्यत्राह । मधोर्धाराभिरिति । यस्माद् मधोः मधुरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे आर्द्रीक्रियसे । हूयस इत्यर्थः । अपेक्षितस्य फलस्य अभावे होमस्य का प्रसक्तिरित्यत्राह । हे इन्द्र त्वादातमित् त्वया दातव्यमेव यशः अन्नम् । अस्तीति शेषः । "अस्ति त्वादातम् अद्रिवः" इत्ययं मन्त्रभागं व्याचक्षाणेन यास्केन त्वया नस्तद् दातव्यम् [नि० ४. ४] इति हि त्वादातशब्दो व्याख्यातः । यद्वा त्वादातम् त्वया शोधितं यशोस्ति । ❀ दैप् शोधने । सत्यपि पकारे "नानुबन्धकृतम् अनेजन्तत्वम्" इत्येजन्त एवायम् । ततः "आदेचः०" इति आत्वम् । अस्मात् कर्मणि क्तः । "दाधा घ्वदाप्" इत्यत्र अदाप् इति प्रतिषेधेन घुसंज्ञाया अभावाद् "दो दद् घोः" इति दद् आदेशो न भवति । त्वेति युष्मच्छब्दस्य तृतीया । "कर्तृकरणे कृता बहुलम्" इति समासः । "तृतीया कर्मणि" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ ॥

हे स्तुतियोंसे सेवा करने योग्य इन्द्र ! हमारे अभिषुत सोम का पान करिये । आप मधुर रस वाले सोमकी धाराओंसे आर्द्र किये जारहे हैं अर्थात् आपको सोमकी आहुति दी जा रही है। हे इन्द्र ! यह आपका शोधित यश ही है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

अभि । द्युम्नानि । वनिनः । इन्द्रम् । सचन्ते । अक्षिता ।
पीत्वी । सोमस्य । ववृधे ॥ ७ ॥

वनिनः देवान् संभजमानस्य यजमानस्य द्युम्नानि द्योतमानान्यन्नानि सोमलक्षणानि । ❀ द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्कः [नि० ५. ५] ❀ । द्युम्नानि विशेष्यन्ते । अक्षिता अक्षितानि अक्षीणानि अतिप्रभूतानि इन्द्रं देवम् अभि सचन्ते अभितः संगच्छन्ते । स च इन्द्रः सोमस्य प्रभूतस्य । अंशम् इतिशेषः । अथवा सोमस्य सोमं पीत्वी पीत्वा । ❀ पा पाने इत्यस्मात् क्त्वाप्रत्ययस्य "स्नात्व्यादयश्च" इति निपातनात् त्वीभावः । "घुमास्थागापा०" इत्यादिना ईत्वम् । प्रत्ययस्वरः ❀। वावृधे प्रवृद्धो भवति

देवताओंकी भक्ति करने वाले यजमानके दमकते हुए सोम अतिप्रवृद्धभावमें इन्द्रदेवको चारों ओरसे प्राप्त होरहे हैं । और इन्द्र भी सोमके अंशको पीकर बढ़ रहे हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । पराऽवतः । च । वृत्रऽहन् ।

इमाः । जुषस्व । नः । गिरः ॥ ८ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तरिन्द्र नः अस्मान् यजमानान् अर्वावतः अर्वाचीनाद् अन्तिकाद् देशाद् आ गहि आगच्छ । तथा परावतः दूरदेशाच्च नः आ गहि आगच्छ । ⊛ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिप्रत्ययः । मन्ययस्वरः ⊛ । आगत्य च नः अस्माकम् इमा गिरः स्तुतिरूपा वाचो जुषस्व सेवस्व ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! आप हम यजमानोंके पास समीपके स्थानमें हों तो समीपके स्थानमे आजाइये और दूर हों तो दूरसे आजाइये । और आकर हमारी स्तुतिरूपा वाणियों का सेवन करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे ।

इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

यत् । अन्तरा । पराऽवतम् । अर्वाऽवतम् । च । हूयसे ।

इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र परावतम् परावद् दूरस्थानं तथा अर्वावतं च संनिहित स्थानं च यत् यस्मिन् अन्तरा तयोरन्तरालदेशे । ⊛ उभयत्र "अन्तरान्तरेण युक्ते" इति द्वितीया ⊛। तत्र हूयसे सम्यग् ह्वयसे ततः तस्माद् देशात् परावतः अर्वावतश्च सकाशाद् इह अस्मद्यागदेशं प्रति आ गहि आगच्छ ॥

इति षष्ठं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप दूर वा पासके जिस अन्तराल स्थानसे बुलाये जारहे हैं उस स्थानसे हमारे यागस्थलमें शीघ्रतासे आइये ॥६॥

छठा सूक्त समाप्त (६२२)

"उद्घेदभि" इति तृचस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः मातःसवने विनियोग उक्तः ॥

"उद्घेदभि" तृचका ब्राह्मणाच्छंसीके मातःसवनमें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।

अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतऽमघम् । वृषभम् । नर्यऽअपसम् । अस्तारम् । एषि । सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य त्वं श्रुतामघम् । मघम् इति धननाम । श्रुतं विख्यातं स्तोतृभ्यो यष्टृभ्यश्च दानव्यं धनं यस्यासौ श्रुतमघः तम् । सत्यपि श्रुतधनत्वे दानाभावे प्रयोजनाभावाद् उच्यते वृषभम् इति । अभिमतस्य धनस्य वर्षकम् इत्यर्थः । तथा नर्यापसम् नरेभ्यो हितं नर्यम् अपः कर्म यस्यासौ नर्यापाः तम् । ❀ "तस्मै हितम्" इति यत् । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ । स्वसेवकानाम् इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारविषयकर्मवन्तम् इत्यर्थः । तथा अस्तारम् शत्रूणां निरसितारम् । ❀ असु क्षेपणे । तृनि "रधादिभ्यश्च" इति इड्विकल्पः ❀ । एवंमहानुभावम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य उद्घेदेषि । घेति प्रसिद्धौ । उदेषि ऊर्ध्वं गच्छसि उदयसि । सूर्योदयाभावे इन्द्रस्य सोमलक्षणहविःप्रदानासंभवाद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं प्रति उदेषीत्युच्यते ॥

हे सूर्यदेव ! इन्द्र अत्मव हैं अर्थात् स्तोता और यष्टाओंका इन्द्रका धनप्रदान करना प्रसिद्ध है, और इन्द्र अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाले हैं, तथा इन्द्र नपर्यास है अर्थात् इन्द्रके कर्म अपने सेवक मनुष्योंके इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार करने वाले हैं, तथा इन्द्र शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं। ऐसे महानुभाव इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर आप उदय होते हैं।' [सूर्योदयके अभावमें इन्द्रका सोमात्मकहविःप्रदान असम्भव है अतः यह कहा, कि-हे सूर्य देव ! आप इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर उदय होते हैं] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥

नव । यः । नवतिम् । पुरः । बिभेद । बाहुऽओजसा ।
अहिम् । च । वृत्रऽहा । अवधीत् ॥ २ ॥

य इन्द्रः शम्बरस्यासुरस्य नव नवतिं च पुरः नवोत्तरनवतिसंख्याका मायानिर्मिताः पुरीः । ❀ "पङ्क्तिविंशति०" इत्यादिना निपत्ययान्तो निपा ततः ❀ । बाह्वोजसा बाहुबलेन अन्यनैरपेक्ष्येणैव बिभेद भिन्नवान् नाशितवान् । तथा च मन्त्रान्तरम् । "दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य" इति [ऋ० २. १९. ६] । किं च वृत्रहा । वृत्रशब्दः शत्रुसामान्यवचनः "वृत्राणि वृत्रहं जहि" [२०. ५. ३] "इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते" [२०. ५. २] इत्यादौ तथा दर्शनात् । वृत्राणां शत्रूणां हन्ता इन्द्रः अहिं च । अयति गच्छतीत्यहिर्मेघः । ❀ अहिरयनाद् एत्यन्तरिक्षे इति निरुक्तम् [नि० २. १७] ❀।

अथ वा आगत्य हन्तीत्यहिर्वृत्रः । ॐ हन हिंसागत्योः । आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च [उ० ४. १३७] इति आङ्पूर्वाद् इञ् प्रत्ययः । वातेर्डित् [उ० ४. १३३] इत्यनुवर्तनात् डिद्वद्भावः आङो ह्रस्वश्च । ञित्त्वाद् आद्युदात्तः ॐ। तम् अवधीत् हतवान् । स न इत्युत्तरत्र संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव शम्बरासुरके मायानिर्मित निन्यानवें पुरोंको अपने भुजबलसे नष्ट कर चुके हैं । उन शत्रुनाशक इन्द्रने वृत्रासुरका संहार कर डाला है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

सः । नः । इन्द्रः । शिवः । सखा । अश्वऽवत् । गोऽमत् । यवऽमत् ।
उरुधाराऽइव । दोहते ॥ ३ ॥

स पूर्वोक्तगुणविशिष्ट इन्द्रः नः अस्माकं शिवः सुखकारी सखा मित्रभूतः । तादृश इन्द्रः अश्वावत् अश्वैर्बहुभिरुपेतं गोमत् बह्वीभिर्गोभिरुपेतं यवमत् । यवो धान्यविशेषः । बहुभिर्यवैर्युक्तं धनम् उरुधारेव प्रभूतधारायुक्ता बहुक्षीरा गौरिव दोहते सा यथा सर्वेषां तर्पणसमर्थं बहुक्षीरं दुग्धे एवं सर्वजनतृप्तिसाधनम् अश्वाद्युपेतं धनं दुग्धाम् प्रयच्छतु । ॐ बाहुलकात् शपो लुगभावः । लेटि वा अडागमः ॐ ॥

इति सप्तमं सूक्तम् ॥

ऐसे इन्द्रदेव हमारे लिये सुखकारी बनें और हमारे मित्र बनें ऐसे इन्द्रदेव हमको बहुतसे घोड़ोंसे सम्पन्न तथा बहुतसी गौओं

से सम्पन्न और यव आदि बहुतसे धान्योंसे सम्पन्न उरुधारा की समान हमको प्रदान करें अर्थात् विशाल धारा वाली बहु-क्षीरा गौ जैसे सबको तृप्ति करने योग्य दुग्धको देती है इसी प्रकार सबकी तृप्तिके साधन अन्न आदिसे सम्पन्न धनको प्रदान करें ॥ ३ ॥

सप्तम सूक्त समाप्त

"इन्द्र क्रतुविदम्" इत्येषा आद्या ऋक् ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रयाज्या । उक्तं हि । "उक्थसंपदः परिधानीयोत्तरा याज्या" इति [वै० ३. ११] ॥

"एवा पाहि" इत्याद्यास्तिस्र ऋचस्तेषामेव ब्राह्मणाच्छंस्यादीनां त्रयाणाम् ऋत्विजां क्रमेण माध्यंदिनसवनिकयः प्रस्थितयाज्याः । तथा च वैतानं सूत्रम् । "एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या" इति [वै० ३. ११] ॥

"इन्द्र क्रतुविदम्" यह पहिली ऋचा ब्राह्मणाच्छंसीकी शस्त्रयाज्या है । वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा भी है, कि–"उक्थसम्पदः परिधानीयोत्तरा याज्या" ।

"एवा पाहि" आदि तीन ऋचाएँ इन ही ब्राह्मणाच्छंसी आदि तीनों ऋत्विजोंकी क्रमशः माध्यन्दिनसवनिकी प्रस्थितयाज्या हैं। इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा है, कि–"एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या" ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ १ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्य । पुरुऽस्तुत ।

पिब । आ । तृपस्व । ततृपिम् ॥ ४ ॥

हे पुरुष्टुत बहुविधैर्बहुप्रकारं वा स्तुत इन्द्र क्रतुः प्रज्ञा भवति तस्या लम्भकम् । अथवा क्रतोरेव ज्योतिष्टोमादेर्लम्भकं साधकं सुतम् अभिषुतं ततृपिम् तर्पकं सोमं इयं कामय। ⊛ ततृपिम् इत्यत्र "आदृगमहन०" इति विहितः "छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्" इति किन ⊛ । पिब । अपि च आ तृपस्व जठरे सिञ्च । पिबे- त्यनेन उक्त एवार्थः पुनरनेन अभिहितः पानस्याधिक्याभिधा- नाय । व्याख्यातेयम् अस्मिन्नेवानुवाके [६. २] ॥

हे अनेक प्रकारसे स्तुत इन्द्रदेव ! आप ज्योतिष्टोम आदिको सम्पन्न करने वाले, अभिषुत तृप्तिजनक सोमकी कामना करिये। और इसका पान करिये तथा जठरमें सींचिये ॥ ४ ॥

अथ द्वितीया ॥

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥

एव । पाहि । प्रत्नऽथा । मन्दतु । त्वा । श्रुधि । ब्रह्म । वावृधस्व । उत । गीःऽभिः ।
आविः । सूर्यम् । कृणुहि । पीपिहि । इषः । जहि । शत्रून् । अभि । गाः । इन्द्र । तृन्धि ॥ १ ॥

हे इन्द्र प्रत्नथा । प्रत्नम् इति पुराणनाम । पूर्वं यथा अङ्गिरः- प्रभृतीनां सोमयागे सोमम् अपाः । ⊛ "प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल्

छन्दसि" इति इवार्थे थाल् प्रत्ययः ❀ । एव एवम् अस्मदीयमपि सोमं पाहि पिब । स च पीतः सोमः त्वा त्वां मन्दतु मदयतु । तदर्थम् अस्मदीयं ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं श्रुधि शृणु । ❀ "श्रृशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि" इति हेर्धिभावः ❀ । न केवलं श्रवणमेव उत अपि च गीर्भिः अस्मदीयाभिः स्तुतिवाग्भिः वावृधस्व वर्धस्व अभिवृद्धो भव । अतस्तव यागार्थं सूर्यम् सर्वकर्मणां प्रेरकं देवम् आविष्कृणुहि प्रकाशितं कुरु । यद्वा अस्माकं व्यवहाराय बहुकालं सूर्यम् आविष्कृणु । तत इषः अन्नानि अस्मदुपभोगसाधनानि पीपिहि प्यायय समर्धय । किं च शत्रून् शातयितॄन् अस्मद्विरोधिनो द्वेष्यान् जहि घातय । हे इन्द्र गाश्च पणिभिरपहृता अभि तृन्धि प्रयच्छ । ❀ वावृधस्वेति । वृधेर्बहुलग्रहणाच्छपः श्लुः । "व्यत्ययो बहुलम्" इत्यत्र "क्वचिद् विकरणं च" इति वचनात् शप्-प्रत्ययः । विकरणस्वरेण मध्योदात्तः । तृन्धि । उतृदिर् हिंसानादरयोः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पहिले अंगिरा आदिके सोमयागमें आपने सोमका पान किया था, इसी प्रकार आप हमारे सोमका भी पान करिये । वह पिया हुआ सोम आपको प्रसन्न करे । इस लिये आप हमारे मन्त्रात्मक स्तोत्रको सुनिये । केवल सुनिये ही नहीं किन्तु हमारी स्तुतिकी वाणियोंसे बढ़िये और अपने याग के लिये सब कर्मोंके प्रेरक सूर्यदेवको प्रकाशित करिये । फिर हमारे उप भोगोंके साधन अन्नोंको बढ़ाइये और हमसे विरोध करने वाले शत्रुओंको नष्ट करिये । और हे इन्द्रदेव ! पणियोंसे हरी हुई गौओंको हमें प्रदान करिये ॥ १ ॥

तृतीया ॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः

अर्वाङ् । आ । इहि । सोमऽकामम् । त्वा । आहुः । अयम् ।

सुतः । तस्य । पिब । मदाय ।

उरुऽव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि ।

हूयमानः ॥ २ ॥

हे इन्द्र अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ । किमर्थम् आगमनम् इति चेद् उच्यते सोमकामं त्वाहुरिति । यतस्त्वा त्वां सोमकामम् सोमं कामयमानं सोमविषये अत्यन्ताभिलषितवन्तम् आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । "सोमकामं हि ते मनः" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० ८. ९१. २] । "इमं जम्भसुतं पिब" इति [ऋ० ८. ९१. २] मन्त्रे जम्भनिष्पीडितस्यापि सोमस्य पानाभिधानाद् इन्द्रस्य सोमे अतिशयमीतिसद्भाव उक्तो भवति । यस्मादेवं तस्माद् अयं सोमः सुतः अभिषुतः । तस्य । तं सोमम् इत्यर्थः । ® "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ® । पिब पानं कुरु । कस्मै प्रयोजनायेति उच्यते । मदाय । तस्य पिबेति सोमपानमात्रम् अभिहितम् । इदानीं कुक्षिपरिपूर्तिपर्यन्तं पानम् अभिधीयते उरुव्यचा इत्यादिना । उरु प्रभूतं व्यचनं कुक्षिबाहुल्यं यस्य स उरुव्यचाः । ® व्यचेरौणादिकः असिप्रत्ययः । "व्यचेः कुटादित्वम् अनसीति वक्तव्यम्" इति वचनात् ङित्त्वाभावेन संप्रसारणाभावः । "परादिश्छन्दसि बहुलम्" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ® । तादृशस्त्वं जठरे उदरे अतिविस्तीर्णे आ वृषस्व आसिञ्च सर्वतः पूरय । तदर्थम् आहूयमानस्त्वं पितेव यथा पिता पुत्रस्य वचनं शृणोति एवं नः अस्माकम्

आह्वानं शृणुहि शृणु। ॐ "उनश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्" इति हेलु गर्भावः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे अभिमुख होकर आइये । क्योंकि-विद्वान् पुरुष आपको सोमकी कामना वाला कहते हैं । यहसोम अभिषुत होगया है, इसका आप मदके लिये पान करिये । आप सोमको प्रभूतमात्रामें अपनी दोनों कोखोंमें भरिये । इसके लिये बुलाये हुए आप पिता जैसे पुत्रके वचनको सुनता है, तिसप्रकार हमारे आह्वानको सुनिये ॥ २ ॥

चतुर्थी ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ ३ ॥

आऽपूर्णः । अस्य । कलशः । स्वाहा । सेक्ताऽइव । कोशम् । सिसिचे । पिबध्यै ।

सम् । ऊं इति । प्रियाः । आ । अववृत्रन् । मदाय । प्रऽदक्षिणित् । अभि । सोमासः । इन्द्रम् ॥ ३ ॥

अस्य अस्मै इन्द्राय । ॐ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॐ । तदर्थं कलशः द्रोणकलश आपूर्णः सोमरसेन सर्वतः पूर्ण आसीत् । नञ्च पूरणं किमर्थम् इति चेद् उच्यते । स्वाहा स्वाहुतत्वाय । होमार्थम् इत्यर्थः । ततः सेक्तेव कोशम् सेक्ता पूरकः पुमान् कोशम् इति यथा सिञ्चति पूरयति उदकादिना एवं पिबध्यै इन्द्रस्य पानाय । ॐ पा पाने इत्यस्य तुमर्थे शध्यैन् प्रत्ययः। शित्त्वात् पिबादेशः।

निरवाद्द आय् दास: ॐ । सिसिचे सिञ्चति अध्वर्यु: सोमरसम्। सामर्थ्याद्द ग्रहादिष्विति लभ्यते । ते च सिक्ताः प्रियाः हृद्याः स्वादवः सोमासः सोमाः मदाय इन्द्रस्य हर्षाय मदत्तिणित् मादत्तिणेन इन्द्रं सम् अभ्यावट्टत्रन् सम्यग् अभिमुखा वर्तन्ते समभिव्याप्नुवन्ति।ॐ वृतु वर्तने। लङि "बहुलं छन्दसि" इति श्लुः। व्यत्ययेन परस्मैपदम् । "बहुलं छन्दसि" इति भेरुडागमः ॐ॥

इति अष्टमं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये द्रोणकलश सोमरससे चारों ओरसे भरा हुआ रक्खा था–होम करनेके लिये भरा हुआ रक्खा था जैसे सेचक पूरक पुरुष मशकको जल आदिसे पूर्ण करता है, इसी प्रकार अध्वर्यु इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको ग्रहादिकोंमें सिक्त करता है, वे भरे हुए (सिक्त) स्वादु सोम इन्द्रदेवके हर्षके लिये चतुरतासे इन्द्रदेवकी ओरको अभिमुख होकर व्याप्त होजाते हैं ३

अष्टम सूक्त समाप्त (६२४)

"तं वो दस्ममृतीपहम्" इत्यादिचत्वारि सूक्तानि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि। चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा "ऋजीषी वज्री" [२०. १२. ७] इत्येपा ऋक् शस्त्रयाज्या । "तं वो दस्ममृतीपहम्" [१] "तत् त्वा यामि सुवीर्यम्" [३] इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ। "उदु त्ये मधुमत्तमाः" [२०.१०.१] इति सामप्रगाथः । "इन्द्रः पूर्भित्" [२०. ११] इति सूक्तम् उक्थमुखम् । "उदु ब्रह्माणि" [२०. १२] इति सूक्तं पर्याससंज्ञम् । "एवेदिन्द्रम्" [२०. १२. ६] इति परिधानीया । एतत् सर्वं वैताने सूत्रितम् । "तं वो दस्ममृतीपहं तत् त्वा यामि सुवीर्यम्" इति [वै० ३. १२]॥

"तं वो दस्ममृतीपहम्" आदि चार सूक्त माध्यन्दिनसवनमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं। चतुर्थ सूक्तकी अंतिम

"ऋजीषी वज्री" (२० । १२ । ७) ऋचा शस्त्रयाज्या है। "तं वो दस्ममृतीषहम्" (१) "तत् त्वा यामि सुवीर्यम्" (३) ये प्रगाथ स्तोत्रियानुरूप है। "उदु त्ये मधुमत्तमाः"(२०।१०।१) यह सामप्रगाथ है। "इन्द्रः पूर्भित्" (२० । ११) यह सूक्त उक्थमुख है। "उदु ब्रह्माणि" (२० । १२) सूक्त पर्यास कहलाता है। "एवेदिन्द्रम्" (२० । १२ । ६) यह परिधानीया है। इस सबको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"तं वो दस्ममृतीषहम् तत् त्वा यामि सुवीर्यम्" (वैतानसूत्र ३ । १२)॥

तत्र प्रथमा ॥

तं वो॑ द॒स्मम्‌॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।
अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे १

तम् । वः । द॒स्मम् । ऋ॒ति॒ऽसह॑म् । वसोः॑ । म॒न्दा॒नम् । अन्ध॑सः । अ॒भि । व॒त्सम् । न । स्वस॑रेषु । धे॒नवः॑ । इन्द्र॑म् । गीः॒ऽभिः । न॒वा॒म॒हे॒ ॥ १ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं युष्मद्यागनिष्पत्त्यर्थं युष्मदभिमतफलार्थं वा तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य गीर्भिः स्तुतिप्रकाशिकाभिर्ऋग्भिः नवामहे स्तुमः इति संबन्धः। कीदृशम् इन्द्रम्। दस्मम् दर्शनीयम्। तत्तत्फलार्थिभिरवश्यं सेवनीयम् इत्यर्थः। ऋतीषहम्। ऋतेर्ऋतिशब्दः। आर्तेरभिभवितारम् नाशकम्। ❀"सहेः पृतनर्ताभ्यां च" इत्यत्र सहेरिति योगविभागात् षत्वम्❀। तथा वसोः वासकस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य। पानेनेति शेषः। मन्दानम् मन्दमानम्। स्तुतौ दृष्टान्तम् आह। वत्सं न स्वसरेषु धेनवः। स्वसरेषु स्वयं सरन्तीति वा स्वः आदित्यः स एनानि सारयतीति वा स्वसराण्यहानि। तेषु आगच्छत्सु-निर्ग-

च्छन्तु वा । सायंप्रातःकालेष्वित्यर्थः । तेषु धेनवः प्रभूतेन पयसा प्रीणयित्र्यो गावः अभिनवप्रसवा वा ता वत्सं न । यथा वत्सं स्तनप्रदानाय हम्भाशब्दम् उच्चैर्बहुशः कुर्वन्ति तद्वत् ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय हैं अर्थात् फलाभिलाषियोंको इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये और यह आर्तिका नाश करने वाले हैं । और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें भरे रहते हैं । जैसे सूर्य जिनको करता है उन दिनोंके आने जाने के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई बच्छड़ोंकी ओरको दूध पिलानेके लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये) इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे

द्युक्षम् । सुऽदानुम् । तविषीभिः । आऽवृतम् । गिरिम् । न । पुरुऽभोजसम् ।
क्षुऽमन्तम् । वाजम् । शतिनम् । सहस्रिणम् । मक्षु । गोऽमन्तम् । ईमहे ॥ २ ॥

द्युक्षम् दीप्तं सुदानुम् शोभनदानं विशिष्टदानार्हं तविषीभिः बलैः आवृतम् आच्छन्नम् । बलप्रदम् इत्यर्थः । गिरिं न पुरुभोजसम् । पुरु इति बहुनाम । बहूनां प्रजानां भोगयोग्यं गिरिं न पर्वतमिव । यथा दुर्भिक्षे प्रजा जीवनाय बहुभिः कन्दमूलाद्यन्नैरु-

पेतं गिरिम् अर्थयन्ते तद्वत् । ॐ उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव वृत्तयः इति हि मन्त्रवर्णः [नि० ६. ५] ॐ । अयम् वाजम् ईमहे इत्यत्र दृष्टान्तः । तथा द्युमन्तम् । ॐ द्यु शब्दे ॐ । शब्दोपेतम् । स्तुतिमन्तम् इत्यर्थः । यो लोके बहुस्तो भवति स शब्द्यत इति प्रसिद्धम् । शतिनम् शतयुक्तं शतसंख्यानां प्रजानां पोषकत्वेन तद्वन्तम् । एवं सहस्रिणम् इत्येतदपि योज्यम् । अपरिमितप्राणिपोषकम् इत्यर्थः। तथा गोमन्तम् बह्वीभिर्गोभिर्युक्तम् । एवम् उक्तैर्विशेषणैर्विशिष्टं वाजम् अन्नं मक्षु शीघ्रम् ईमहे याचामहे ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य, बलप्रद, स्तुतिके पात्र, सैंकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं जिस प्रकार दुर्भिक्षमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नोंसे सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं। [निरुक्त ६ । ५ में कहा भी है, कि—"उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव वृत्तयः ।"] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ३

तत् । त्वा । यामि । सुऽवीर्यम् । तत् । ब्रह्म । पूर्वऽचित्तये ।

येन । यतिऽभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् । आविथ ३

हे इन्द्र तत् वक्ष्यमाणलक्षणं सुवीर्यम् शोभनवीर्योपेतं ब्रह्म परिवृढम् अन्नं त्वा त्वां यामि याचे । ॐ वर्णलोपश्छान्दसः । "तत् त्वा यामीति द्विवर्णलोपऽइति हि यास्कः [नि० २. १] ॐ। उक्तमेवार्थं पुनराह इतरेभ्यः पूर्वलाभाय । तत् उक्तलक्षणं ब्रह्म अन्नं पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानाय । यामीति संबन्धः । तद् इत्युक्तम् ।

कीदृक् तद् इत्याह । येन ब्रह्मणा अन्नेन यतिभ्यः कर्मभ्यो निवृत्तेभ्यः सकाशाद् आहृत्य भृगवे एतन्नामकाय महर्षये धने हिते अभिमते सति तं भृगुं प्रीणितवान् असि । यद्वा येन सुवीर्येण अन्नेन यतिभ्यः नियतिमद्भ्यः कर्मसु नियतेभ्यः अन्येभ्यो महर्षिभ्यः तदर्थं धने हिते सति परितोषितवान् असि । तथा भृगवे एतन्नामकाय महर्षये च । येन च धनेन मस्कण्वम् कण्वस्य पुत्रम् एतन्नामानम् ऋषिम् आविथ ररक्षिथ ॥

हे इंद्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्यसम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ । उस अन्नको पूर्वमहानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कण्व नामक ऋषिके पुत्र मस्कण्व ऋषिकी रक्षा की थी उस धनकी हम आपसे याचना करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑ ।
स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुच॒क्रदे॑

येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णि । ते । शवः

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । सम्ऽनशे । यम् । क्षोणीः । अनुऽचक्रदे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र येन शवसा बलेन समुद्रम् । समभिद्रवन्त्येनम् आप इति समुद्रः उदधिः । तं प्रति महीः महतीः अनिवभूता अपः समुद्रपूर्तिपर्यन्तानि उदकानि असृजः सृष्टयादौ सृष्टवान् असि । तत् तादृक् ते शवः बलं वृष्णि वर्षकं सर्वेषाम् अभिमतप्रदातृ ।

भवतीति शेषः ॥ अथ परोक्षम् आह । अस्य इन्द्रस्य स महिमा बहुभिरुदकैः समुद्रपूर्त्यादिलक्षणः सद्यः तदानीमेव न संनशे परैर्न सम्यग् व्याप्तुम् अर्हः । महिम्न आनन्त्याद् अनन्यसाधारणत्वाच्चेति भावः । ॐ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । कृत्यार्थे केन् प्रत्ययः ॐ । यं महिमानं क्षोणीः । क्षोणी पृथिवी । तेन तन्निष्ठः प्राणिनिकरो लक्ष्यते । अनुचक्रदे अनुक्रन्दति । उद्घोषयतीत्यर्थः ॥

इति नवमं सूक्तम् ॥

हे इंद्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि में समुद्रका पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । बहुतसे जलोंमे समुद्रपूर्ति आदिकी इनकी महिमाको शत्रु नहीं पासकते इनकी महिमा का पृथिवीवासी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

नवम सूक्त समाप्त (६२५)

"उदु त्ये" इति सूक्तस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

"उदु त्ये" सूक्तका विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १

उत् । ऊं इति । त्ये । मधुमत्ऽतमाः । गिरः । स्तोमासः । ईरते । सत्राऽजितः । धनऽसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयन्तः । रथाःऽइव ।

त्ये । तच्छब्दसमानार्थस्त्यच्छब्दः । ते वक्ष्यमाणाः स्तोमासः स्तोमाः त्रिवृदादयः प्रगीतमन्त्रसाध्यानि स्तोत्राणीत्यर्थः । ते विशेष्यन्ते । मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुगः वस्तुवद् वाच्यपि माधुर्यम् अस्त्येव । ते उदीरते प्रादुर्भवन्ति । तथा गिरः अत्रापि

मधुपत्तमा इत्येतत् संबध्यते। अतिशयेन मधुरा गिरः शस्त्राश्रयभूता वाचः अप्रगीतमन्त्रसाध्यान्यपि शस्त्राणि उदीरते। ते विशेष्यन्ते। सत्राजितः सहैव एकवारमेव जयन्ति शत्रून् इति सत्राजितः। तथा धनसाः धनानां संभक्तारो धनप्रदाः। ❀ "जनसनखनक्रमगमो विट्" इति विट्। "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ❀। एवम् अक्षितोतयः। क्षितं क्षयः। न विद्यते क्षितं यासां ता अक्षिताः। अक्षिता ऊतयो येषां ते तथोक्ताः। सर्वदा रक्षका इत्यर्थः। ❀ "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदासाद् दीर्घाभावः। अत एव "क्षियो दीर्घात्" इति निष्ठानत्वाभावः ❀। वाजयन्तः वाजम् अन्नम् इच्छन्तः। ❀ क्यचि "नच्छन्दस्यपुत्रस्य" इति इत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ❀। तत्र दृष्टान्तः। रथा इव। अत्र सत्राजितइत्यादिविशेषणानि दृष्टान्तेपि योजयितव्यानि। यथोक्तलक्षणा रथा यथा रथस्वामिनः प्रयोजनाय उदीरते एवम् इन्द्रस्य परितोषाय स्तोमा उदीरत इत्यर्थः॥

ये आगे कहे जाने वाले प्रगीतमंत्रसाध्य त्रिवृद् आदि स्तोत्र और अप्रगीतमन्त्रसाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियें प्रादुर्भूत होरही हैं, ये धन प्रदान करने वाली हैं और एकवार ही शत्रुओं को जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दौड़ता है तैसे ही यह इन्द्रके संतोषके लिये प्रकट होती हैं॥ १॥

द्वितीया॥

कण्वा॑ इ॒व॒ भृग॑वः॒ सूर्या॑ इव॒ विश्व॒मिद् धी॒तमा॑नशुः।
इन्द्रं॒ स्तोमे॑भि॒र्म॒हय॑न्त आ॒यवः॑ प्रि॒यमे॑धासो अस्वरन् २

कण्वाःऽइव । भृगवः । सूर्याःऽइव । विश्वम् । इत् । धीतम् । आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महयन्तः । आयवः । प्रियऽमेधासः । अस्वरन्

कण्वा इव कण्वगोत्रोत्पन्ना महर्षयोपि कण्वाः । ते यथा विश्वम् व्याप्तं लोकत्रयस्वामिनम् । इत् शब्दः अव्यवहितेन इन्द्रम् इत्यनेन संबध्यते । धीतम् ध्यातं तत्तत्फलार्थिभिः सर्वैर्ध्यानोपलक्षितेन स्तोत्रेण विषयीकृतम् इन्द्रमित् इन्द्रमेव आनशुः स्तोत्रशस्त्रादिभिः प्राप्ताः । भृगवः । केवलोपि भृगुशब्दः इवेन विशिष्टार्थः परिगृह्यते । भृगव इव ते यथा उक्तलक्षणम् इन्द्रम् आनशुः । सूर्या इव सूर्या धात्रर्यमादयः । ते यथा स्वनियन्तारम् इन्द्रम् आनशुः । एवम् उक्तगुणकम् इन्द्रं प्रियमेधासः । येषां मेधाः प्रियभूतास्ते प्रियमेधाः । एतन्नामानः आयवः मनुष्या महर्षयः महयन्तः पूजयन्तः स्तोमेभिः स्तोत्रैः अस्वरन् शब्दम् अकुर्वन् । अस्तुवन्नित्यर्थः ॥

इति दशमं सूक्तम् ॥

कण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं । और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

दशम सूक्त समाप्त (६२७)

"इन्द्रः पूर्भित्" इति सूक्तस्य उक्तो विनियोगः ॥

"इन्द्रः पूर्भित्" सूक्तका विनियोग पहिले कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी
उभे ॥ १ ॥

इन्द्रः । पूःऽभित् । आ । अतिरत् । दासम् । अर्कैः । विदत्ऽवसुः ।
दयमानः । वि । शत्रून् ।
ब्रह्मऽजूतः । तन्वा । ववृधानः । भूरिऽदात्रः । आ । अपृणत् ।
रोदसी इति । उभे इति ।

इन्द्रो देवः पूर्भित् शत्रुपुरां भेत्ता दासम् उपक्षपयितारं शत्रुम् अर्कैः अर्चनीयैः स्तवनीयैः आतिरत् सर्वतो हिंसितवान् । सूर्यात्मना वा अर्कैः अर्चनीयै रश्मिभिः दासम् तमसः क्षपयितारं वासरम् आतिरत् सर्वतो वर्धितवान् । प्रकाशितवान् इत्यर्थः । किं कुर्वन् । विदद्वसुः लब्धधनः । शत्रुधनापहर्तेत्यर्थः । शत्रून् वृत्रादीन् वि दयमानः विशेषेण हिंसन् । ❀ तथा च यास्कः । विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् इति हिंसाकर्मा इति [नि०४.१७]❀ । ब्रह्मजूतः ब्रह्मणा प्रभूतेन स्तोत्रेण अभिवृद्धः तन्वा शरीरेण वव्रधानः वर्धमानः । ❀ वृधु वर्धने । कानचि रूपम् । संहितायाम् अभ्यासस्य "अन्येषामपि दृश्यते" इति दीर्घः ❀ । भूरिदात्रः । दात्यनेन खण्डयति शत्रून् इति दात्रम् आयुधम् । प्रभूतायुध इत्यर्थः । यद्वा दीयत इति दात्रं धनम् । बहुधनः । उक्तगुणविशिष्ट इन्द्रः उभे रोदसी उभे द्यावापृथिव्यौ आपृणत् । व्याप्नोद् इत्यर्थः ॥

इन्द्रदेव शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले हैं। इन्होंने गद-

बड़ी डालने वाले शत्रुओंको अपने मंशसनीय वीर्योंसे नष्ट कर डाला है। यह शत्रुओंके धनको पाने वाले हैं। और वृत्र आदि शत्रुओंको इन्होंने विशेषरूपसे नष्ट कर डाला है, इनका शरीर मन्त्रसे बढ़ जाता है, इनके पास शत्रुओंको नष्ट करने वाले बहुत से आयुध हैं। ऐसे इन्द्रदेवने द्युलोक और पृथिवीलोक दोनोंको व्याप्त कर लिया है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मखस्यं ते तविपस्य प्र जूतिमियर्मि वाचंममृताय भूषन् इन्द्रं क्षितीनामसि मानुंषीणां विशां दैवींनामुत पूर्वयावां ॥ २ ॥

मखस्य । ते । तविपस्य । प्र । जूतिम् । इयर्मि । वाचम् । अमृताय । भूषन् ।

इन्द्र । क्षितीनाम् । असि । मानुषीणाम् । विशाम् । दैवीनाम् । उत । पूर्वऽयावा ॥ २ ॥

हे इन्द्र मखस्य मंहनीयस्य मखात्मकस्य वा तविपस्य । तवः बलम् । अतिशयितबलस्य ते तव जूतिम् प्रेरयित्रीं वर्धयित्रीं वा वाचम् स्तुतिलक्षणां प्रेयर्मि प्रेरयामि । ॐ इयर्तिर्जुहोत्यादिः । "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्वम्। "अभ्यासस्यासवर्णे" इति इयङ् आदेशः । पादादित्वाद् अनिघातः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः ॐ। किमर्थम् । अमृताय अमृतत्वाय अन्नाय वा । किं कुर्वन् । भूषन् त्वाम् अलङ्कुर्वन् । ॐ भूष अलंकारे । शतृप्रत्ययः ॐ । हे इन्द्र यस्माद् मानुषीणाम् मनुषः संबन्धिनीनां क्षितीनाम् प्रजानाम् उत अपि च दैवीनाम् देवसंबन्धि

नीनां विशाम् प्रजानां पूर्वयावा पुरोगन्तासि । सर्वेषां प्राणिनां श्रेष्ठो भवसीत्यर्थः । तस्माद् वाचम् इयर्मीति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं यज्ञस्वरूप परम-बली आपको बढ़ाने वाली वाणीको अन्नके लिये विभूषित करता हुआ उच्चारण करता हूँ । हे इन्द्र ! आप मनुष्योंकी और देवताओंकी प्रजाके आगे जाने वाले हैं । अर्थात् सबमें श्रेष्ठ हैं इस लिये मैं वाणीको प्रेरित करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द् वर्प॑णीतिः ।
अह॒न् व्यं॑समु॒शध॒ग् वने॒ष्वा॒विर्धेना॑ अकृणोद् रा॒म्या॑णाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः॑ । वृ॒त्रम् । अ॒वृ॒णो॒त् । शर्ध॑ऽनीतिः । प्र । मा॒यिना॑म् । अ॒मि॒ना॒त् । वर्प॑ऽनीतिः ।
अह॑न् । विऽअं॑सम् । उ॒शध॑क् । वने॑षु । आ॒विः । धेनाः॑ । अ॒कृ॒णो॒त् । रा॒म्या॑णाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः शर्धनीतिः । शर्धः हिंसकं बलम् । ⊛ अत्र अकारान्तत्वं छान्दसम् ⊛ । तस्य नीतिर्नयनं प्रापणं यस्य स तथोक्तः । शत्रुं प्रति स्वबलप्रापक इत्यर्थः । तादृशः सन् वृत्रम् अपावरकं मेघं सर्वतो व्याप्नुवानम् असुरम् । ⊛ वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका इति निरुक्तम् [नि० २. १६] ⊛ । तम् अवृणोत् अरुधत् । तथा स एव इन्द्रः वर्पनीतिः । वर्प इति

रूपनाम । अत्र अकारान्तः । तस्य नेता । युद्धे शत्रुं प्रति स्वशरीरप्रापक इत्यर्थः । अनेन तस्य गतम् अयनम् उक्तं भवति । तादृशः सन् मायिनाम् मायावताम् असुराणाम् अत्र सामर्थ्याद् बलानीति गम्यते । यद्वा । ❀ द्वितीयार्थे षष्ठी ❀ । मायिन इत्यर्थः । प्रामिनात् प्रावधीत् । ❀ मीञ् हिंसायाम् । "मीनातेर्निगमे" इति ह्रस्वत्वम् ❀ । इन्द्रो वृत्रम् अवृणोत् इत्युक्तमेवार्थं विस्पष्टम् आह । उशधक् कामयित्वा शत्रुदाहकः । यद्वा उशतां युद्धं कामयमानानां शत्रूणां दाहक इन्द्रः वनेषु उदकेषु निमित्तभूतेषु वृत्रम् आवरकं मेघं व्यंसम् विगतांसं यथा भवति तथा विदार्य अहन् अवधीत् । ततो राम्याणाम् रमणीयानाम् अपाम् अर्थाय धेनाः । वाङ्नामैतत् । वाचः स्तनितानि आविरकृणोत् प्रकाशम् अकार्षीत् ॥ वृत्रासुरपक्षे वनेषु आच्छन्नं वृत्रम् उशधक् सन् व्यंसम् विगतांसं कृत्वा अंसाद्यङ्गानि विच्छिद्य अहन् अवधीत् । राम्याणाम् रमणार्हाणां क्रीडासाधनानां तद्योषिताम् । ❀ रामम् अर्हतीत्यर्थे "छन्दसि च" इति यत् प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः ❀ । आर्निवाच आविरकृणोद् इत्यर्थः । अथ वा राम्याणाम् क्रीडार्हाणां रात्रीणां संबन्धिनीर्धेना गाः । रात्रौ तमसा वृताः असुरापहृता गा इत्यर्थः । ताः आविरकृणोत् असुरान् अपहत्य ताः स्पष्टाश्चकार । असुरैर्देवानां गवादिलक्षणधनम् अपहृत्य रात्रिप्रवेशश्चैत्तिरीयके । "अहर्देवानाम् आसीद् । रात्रिरसुराणाम् । तेसुरा यद् देवानां वित्तं वेद्यम् आसीत् तेन सह रात्रिं प्राविशन्" इति [तै० सं० १. ५. ६. २] ॥

इन्द्रदेव शत्रु पर अपने हिंसक बलको डाल देते हैं. ऐसे इंद्रने वृत्र (असुर वा आवरक मेघ) को रोक लिया था और युद्धमें अपने शरीरको शत्रुकी ओर लेजाने वाले इन्द्रने मायावी असुरों को नष्ट कर डाला था, कामना करके शत्रुओंको नष्ट कर डालने

वाले इन्द्रने वनसे घिरे हुए वृत्रासुरको कंधों रहित करके नष्ट कर डाला था और क्रीड़ा करनेके योग्य रात्रियोंमें पणियोंकी हरी हुई गौओंको (शत्रु संहार करके) प्रकट कर दिया था ३

चतुर्थी ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय

इन्द्रः । स्वःऽसाः । जनयन् । अहानि । जिगाय । उशिक्ऽभिः । पृतनाः । अभिष्टिः ।

प्र । अरोचयत् । मनवे । केतुम् । अह्नाम् । अविन्दत् । ज्योतिः । बृहते । रणाय ॥ ४ ॥

स्वर्षाः स्वर्गस्य लम्भकः । ❀ षणु दाने । क्विप् । "जनसनखनां सञ्झलोः" इति आत्वम् । "सनोतेरनः" इति षत्वम् । "अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम्" इति रत्वम् ❀ । अभिष्टिः अभिगन्ता शत्रूणाम् अभिभविता । ❀ इषु गतौ । "मन्त्रे वृष०" इत्यादिना क्तिन उदात्तत्वम् । स हि भावपरोपि भवितारं लक्षयति । "तितुत्रतथसि०" इत्यादिना इट्प्रतिषेधः । शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वम् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ❀ । तादृश इन्द्रः अहानि जनयन् प्रादुर्भावयन् तमोनिवर्तनेन युद्धानुकूलानि कुर्वन् उशिग्भिः युद्धं कामयमानैरसुरैः सह युद्धं कृत्वा पृतनाः तेषां सेना जिगाय अजैषीत् । किं च । मनवे मनुष्याय । जातावेकवचनम् । मनुष्येभ्यो यजमानेभ्यः बृहते महते रणाय रमणाय क्रीडनाय । प्रभूत-

वैदिकलौकिकव्यवहारायेत्यर्थः । तदर्थम् अह्नां केतुम् प्रज्ञापकम् आदित्यं प्रारोचयत् दिवि अदीपयत् । ततो ज्योतिः सर्वपदार्थप्रकाशकं तेजः अविन्दत् लब्धवान् ॥

स्वर्गको प्राप्त कराने वाले, शत्रुओंका अभिभव करने वाले इन्द्रदेवने दिनोंको प्रकट करके (तमको दूर कर उनको युद्धके अनुकूल करके) युद्धाभिलाषी असुरोंने युद्ध कर उनकी सेनाको जीत लिया था और उन्होंने यजमान मनुष्योंके लौकिक वैदिक व्यवहारोंके लिये दिनके प्रज्ञापक आदित्यको द्युलोकमें दमका रक्खा है । इस प्रकार सर्वपदार्थप्रकाशक तेजको प्राप्त कर रक्खा है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रः । तुजः । बर्हणाः । आ । विवेश । नृऽवत् । दधानः । नर्या । पुरूणि ।

अचेतयत् । धियः । इमाः । जरित्रे । प्र । इमम् । वर्णम् । अतिरत् । शुक्रम् । आसाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवः बर्हणाः अभिवृद्धाः तुजः हिंसिकाः शत्रुसेनाः । ❀ तुज हिंसायाम् । क्विप् । धातुस्वरः ❀ । आ विवेश प्राविशत् । तत्र दृष्टान्तः । नृवत् मनुष्य इव स यथा शत्रुसेना युद्धार्थं प्रविशति तद्वत् । किं कुर्वन् । नर्या नर्याणि नरेभ्यः ऋत्विगादिरूपेभ्यो मनुष्येभ्यो हितानि पुरूणि बहूनि । सामर्थ्याच्छत्रुधना-

नीति गम्यते । दधानः धारयन् । ❀ दधातेः शानचि रूपम् । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । किं च इमाः परिदृश्यमानाः प्रसिद्धा धियः । धीजनकत्वात् सर्वैर्ध्यायमानत्वाच्च धिय उषसः । धीशब्दस्य उषःपरत्वं मन्त्रान्तरे । "शुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम्" इति [ऋ० १४३. ७] । जरित्रे स्तोत्रे स्तोतॄणाम् अर्थाय अचेतयत् प्राज्ञापयत् । उषसि हि प्रबुद्धायां स्तोत्रशस्त्रादीनि प्रवर्तन्ते । उक्त एवार्थः प्रकारान्तरेण उच्यते । आसां धियाम् उषसाम् इमं प्रसिद्धं शुक्रवर्णं प्रातिरत् प्रावर्धयत् । ❀ आसाम् । "इदमोन्वादेशेशनुदात्तस्तृतीयादौ" इति इदमः अश् आदेशः । सोप्यनुदात्तः । प्रत्ययश्च सुप्त्वाद् अनुदात्तः । अतः सर्वानुदात्तम् आसाम् इति पदम् ❀ ॥

मनुष्य युद्ध करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुसेनामें प्रवेश करता है, तिसी प्रकार इन्द्रदेव भी ऋत्विज आदिरूप मनुष्योंके बहुत से हितोंको और शत्रुधनोंको ग्रहण करनेके लिये बढ़ी हुई शत्रुसेनाओंमें घुस जाते हैं, और (सबसे ध्यान करने योग्य इन धी अर्थात्) उषाओंको स्तोताओंके लिये प्रकट करते हैं [उषःकाल के होने पर ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियें होती हैं, इसी बातको बढ़ाते हैं कि-] इन उषाओंके शुक्रवर्णको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं॥५॥

षष्ठी ॥

म॒हो म॒हानि॑ पनयन्त्य॒स्येन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑ ।
वृ॒जने॑न वृजि॒नान्त्सं पि॑पेष मा॒याभि॒र्दस्यूँ॑र॒भिभू॑त्योजाः ॥६॥

म॒हः । म॒हानि॑ । प॒न॒य॒न्ति॒ । अ॒स्य॒ । इन्द्र॑स्य । कर्म॑ । सुऽकृ॑ता । पु॒रूणि॑ ।

वृजनेन । वृजिनान् । सम् । पिपेष । मायाभिः । दस्यून् । अभि-

भूतिऽओजाः ॥ ६ ॥ 12641 B-1425

महः मंहनीयस्य महतो गुणैः महद्भस्य वा । मह पूजायाम् । क्विप् । "सावेकाचः०" इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् । महच्छब्दस्य वा । छान्दसः शतृप्रत्ययलोपः । अस्य प्रसिद्धस्य इन्द्रस्य महानि मंहनीयानि सुकृता सुकृतानि सुष्ठु संपादितानि पुरूणि बहूनि कर्म कर्माणि पनयन्ति स्तुवन्ति स्तोतारः । तेषु एकं कर्म अत्रोपवर्ण्यते । अभिभूत्योजाः अभिभूतिरभिभवः । अभिभवित्रु ओजो बलं यस्य । अथ वा शत्त्रभिभवे समर्थम् ओजो यस्य स तथोक्तः । अभिभूतिरभिभवनम् । भावे क्तिन् । "तादौ च निति०" इत्यभेः प्रकृतिस्वरत्वम् । अभिभूतौ ओजः अस्येति "सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिः" इति समासः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः । तादृश इन्द्रो वृजनेन आवर्जकेन बलेन आयुधेन वा वृजिनान् पापरूपान् असुरान् सं पिपेष सम्यक् चूर्णीकृतवान् । तथा मायाभिः स्वशक्तिभिः दस्यून् उपक्षपयितॄन् शत्रून् सं पिपेष ॥

इन पूजनीय इन्द्रदेवके प्रशंसनीय पूर्णरूपसे पूर्ण किये हुए बहुतसे कर्मोंकी स्तोता पुरुष स्तुति करते हैं । (उनमेंसे एक कर्म यहाँ वर्णन किया जाता है, कि-) जिनमें शत्रुओंको दबाने की शक्ति है ऐसे इन्द्रने अपने आवर्जक आयुधसे पापरूप असुरों को भली प्रकार चूर्ण कर डाला है । तथा अपनी शक्तियोंसे क्षीण करने वालोंको पीस डाला है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।

विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

युधा । इन्द्रः । मह्ना । वरिवः । चकार । देवेभ्यः । सत्ऽपतिः । चर्षणिऽप्राः ।

विवस्वतः । सदने । अस्य । तानि । विप्राः । उक्थेभिः । कवयः । गृणन्ति ॥ ७ ॥

इन्द्रो देवः युधा युद्धेन । ❀ युध संप्रहारे । भावे संपदादिलक्षणः क्विप् । "सावेकाचः०" इति विभक्तेरुदात्तता ❀ । मह्ना स्वमहत्त्वेन । अन्यनैरपेक्ष्येणेत्यर्थः । देवेभ्यः । दीव्यतिरत्र स्तुत्यर्थः । स्तोतृभ्यः तेषामर्थाय वरिवः । धननामैतत् । वरणीयं धनं चकार कृतवान् । ❀ वृञ् वरणे इत्यस्य यङ्लुकि रूपम् । "ऋतश्च" इति अभ्यासस्य रिगागमः । तदन्ताद् असुन् । बाहुलकाट्टिलोपः । नित्स्वरः ❀ । इन्द्रो विशेष्यते । सत्पतिः सतां कर्मानुष्ठायिनां यजमानानां पालकः चर्षणिप्राः चर्षणयो मनुष्याः तेषाम् अभिमतफलपूरकः । कुत्र वरिवश्चकारेति उच्यते । विवस्वतः । विवस्वान् आदित्यः । तस्य सदने स्थाने वृष्टिप्रतिबन्धकान् असुरान् पराजित्य वृष्टिलक्षणं धनं चकारेत्यर्थः । अथ वा एतद् उत्तरत्र संबध्यते । विवस्वतः विशेषेण अग्निहोत्रादिकर्मार्थं वसतो यजमानस्य सदने गृहे । ❀ विपूर्वाद् वस निवासे इत्यस्मात् संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । तद् अस्यास्तीति मतुप् । "मादुपधायाः०" इत्यादिना तस्य वत्वम् । प्रत्ययस्य पित्त्वाद् अनुदात्तत्वे धातुस्वर एव । अवग्रहाभावश्छान्दसः ❀ । अस्य उक्तमहिमोपेतस्य इन्द्रस्य तानि प्रसिद्धानि वृत्रवधादिलक्षणानि कर्माणि विप्रा मेधाविन ऋत्विजः । कीदृशाः । कवयः क्रान्त-

प्रज्ञाः अनूचाना वा । "ये वा अनूचानास्ते कवयः" इति [ऐ० ब्रा० २. २] श्रुतेः । उक्थेभिः । उक्थैः आज्यप्रउगादिशस्त्रैः गृणन्ति स्तुवन्ति ॥

इन्द्रदेवने किसी दूसरेकी अपेक्षा न रख अपनी ही महिमासे युद्ध करके स्तोताओंके लिये धनको किया है। यह इन्द्रदेव कर्मानुष्ठानी सज्जन यजमानोंके पालक हैं। मनुष्योंके अभिलषित फलको देने वाले हैं। (कहाँ ?) विशेषरूपसे अग्निहोत्र आदि कर्मके लिये ही बसने वाले यजमानके घरमें (यह उक्त फल करते हैं) इन महिमावान् इन्द्रके वृत्रवध आदिक प्रसिद्ध कर्मोंका विद्वान् पुरुष उक्थोंसे गान करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

सत्राऽसहम् । वरेण्यम् । सहःऽदाम् । ससऽवांसम् । स्वः । अपः । च । देवीः ।

ससान । यः । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । इन्द्रम् । मदन्ति । अनु । धीऽरणासः ॥ ८ ॥

सत्रासाहम् । सह त्रायते स्वामिनम् इति सत्रा सेना । शत्रुसेनायाः अभिभवितारम् अथ वा सत्रासहम् एकप्रयत्नेनैव शत्रुसेनाया अभिभवितारम् । ❀ षह मर्षणे । छान्दस उपधादीर्घ्यभावः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ❀ । वरेण्यम् सर्वैः स्वस्वफलार्थिभिर्वरणीयं सेवनीयं सहोदाम् । सह इति बलनाम । बलस्य दातारम् तथा स्वः स्वर्गस्य देवीः देवनशीला अपश्च ससवांसम् । ❀ वन षण संभक्तौ । अस्य क्वसौ इडभावे नका-

रलोपे रूपम् ॐ । एवंमहानुभावम् इन्द्रं धीरणासः धीरणाः धीषु स्तुतिषु कर्मसु वा रणं रमणं येषां ते तथोक्ताः तादृशस्तोतारो यजमानाश्च इन्द्रम् अनु मदन्ति अनुक्रमेण हर्षयन्ति स्तुत्या हविरादिना च । इन्द्रमेव विशिनष्टि । यं इन्द्रः पृथिवीम् विस्तीर्णा द्याम् दिवम् इमां पृथिवीं च द्यावापृथिव्यौ ससान देवेभ्यो मनुष्येभ्यश्च प्रादात् । तम् इन्द्रं मदन्तीति संबन्धः ॥

जो शत्रुसेनाको एक वार ही दवा देते हैं, सब फल चाहने वाले अपने २ लिये जिनका वरण करते हैं, जो बलदाता हैं, जो स्वर्गका और जलोंका सेवन करने वाले हैं, जिन इन्द्रदेवने इस विस्तीर्ण पृथिवीको और द्युलोकको देवता और मनुष्योंके लिये प्रदान किया है, ऐसे महानुभाव इन्द्रको स्तुतियोंमें रमण करने वाले स्तोता और यजमान स्तुति और हवि आदिसे प्रसन्न करते हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुतभोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

ससान । अत्यान् । उत । सूर्यम् । ससान । इन्द्रः । ससान । पुरुऽभोजसम् । गाम् ।
हिरण्ययम् । उत । भोगम् । ससान । हत्वी । दस्यून् । प्र । आर्यम् । वर्णम् । आवत् ॥ ९ ॥

अत्यान् अतनार्हान् अश्वान् । उपलक्षणम् एतत् । तुरग-

जोष्ट्रादिकानि वाहनानि प्राणिनां व्यवहाराय इन्द्रो देवः ससान प्रादात् । ❀ षणु दाने । लिटि रूपम् ❀ । उत अपि च सूर्यम् सर्वस्य प्रकाशकं देवं प्राणिनां व्यवहारार्थं ससान । एवं पुरुभोजसम् पयोदध्यादिलक्षणबहुप्रकारभोगसाधनां बहुविधप्राणिभोगसाधनां वा गाम् । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । गाः ससान । एतन्महिष्यादेरपि उपलक्षणम् । उत अपि च हिरण्ययम् हिरण्मयं हिरण्यविकारात्मकं भोगम् भोगसाधनं कटकमुकुटादिकं ससान। ❀ हिरण्यशब्दाद् विकारार्थे "मयड्वैतयोः०" इति विहितस्य छन्दसि विषये "ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दसि" इति निपातनाद् मयटो मकारलोपः । प्रत्ययस्वरः ❀ । किंच दस्यून् उपक्षपयितॄन् प्राणिविघातकान् असुरादीन् हत्वी हत्वा । ❀हन्तेः क्त्वार्थे "स्नात्व्यादयश्च" इति निपातितः ❀ । आर्यम् उत्तमं वर्णं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यात्मकं यजनादिकर्माधिकारवन्तं प्रावत् प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥

इन्द्रदेवने सदा गमन करने वाले घोड़े गज ऊँट आदिको प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है । और सर्वप्रकाशक सूर्यदेवको भी प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है । और घृत दुग्ध आदि बहुतसे रूपोंमें प्राणियोंके उपभोगकी साधन गौ भैंस आदिको भी प्रदान किया है और सुवर्णके बने हुए भोगसाधन मुकुट कंकण आदिको भी प्रदान किया है । और प्राणियोंका संहार करने वाले असुरोंको मार कर इन्द्रदेवने यज्ञ करनेके अधिकार वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य (आर्य) की बड़ी भारी रक्षा की है ॥ ६ ॥

दशमी ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम्।

इन्द्रः । ओषधीः । असनोत् । अहानि । वनस्पतीन् । असनोत् ।

अन्तरिक्षम् ।

बिभेद । वलम् । नुनुदे । विऽवाचः । अथ । अभवत् । दमिता ।

अभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

उक्तमहिमोपेतः स एव इन्द्रः ओषधीः व्रीहियवादिका असनोत् प्राण्युपभोगार्थं सृष्ट्वा प्रादात् । तथा अहानि असनोत् दिवसान्यपि प्राण्युपभोगार्थं कल्पयित्वा प्रायच्छत् । एवं वनस्पतीन् तरूंश्चूतपनसादीन् असनोत् सृष्ट्वा प्रायच्छत् । एवम् अन्तरिक्षम् अन्तरा क्षान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरिक्षम् आकाशः । तदपि सर्वोपकारार्थम् असनोत् । किंच वलम् एतन्नामानम् असुरं बिभेद अदारयत् । विवाचः विरुद्धा प्रतिकूला वाग् येषां ते विवाचः । तानपि नुनुदे दूरं निराचकार । अथ अनन्तरम् अभिक्रतूनाम् । क्रतवः कर्माणि । अभिगतकर्मणाम् अनुष्ठितविरुद्धकर्मणां दुष्टानां दमिता शमयिता अभवत् अभूत् । अनेन प्राणिनाम् इष्टप्राप्तिम् अनिष्टपरिहारं च कृतवान् इत्युक्तं भवति ॥

पूर्वोक्त महिमा वाले इन्द्रदेवने ही व्रीहि यव आदि ओषधियों को प्राणियोंके भोगके लिये रच कर प्राणियोंको प्रदान किया है । दिनोंको भी प्राणियोंके उपभोगके लिये रच कर प्रदान किया है आम्र आदि वनस्पतियोंको भी रच कर प्रदान किया है । और अन्तरिक्षको भी सबके उपकारके लिये दिया है । और शक्रने वलासुरको विदीर्ण कर डाला था और विरुद्ध बोलने वालोंको भी तिरस्कृत कर दिया था और विरुद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करने वालोंको भी शमन कर दिया था । [इससे यह कहा है, कि-शक्रने प्राणियोंकी इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार किया है] ॥

एकादशी ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ। शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ ।
शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् शूनम् अभिवृद्धं सर्वैर्गुणैरुत्कृष्टम् । अथ वा शुनम् इति सुखनाम । सुखकरं वा । टुओश्वि गतिवृद्ध्योः । निष्ठायां "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । यजादित्वात् संप्रसारणम् । दीर्घाभावश्छान्दसः । "ओदितश्च" इति निष्ठानत्वम् । प्रत्ययस्वरः । मघवानम् । मघम् इति धननाम । धनवन्तम् अस्मिन् एतस्मिन् भरे। भर इति संग्रामनाम भरणात् हरणाच्च। संग्रामे। यद्वा ये ये संग्रामनामानस्ते सर्वे यज्ञनामान इति व्यपदेशाद् अस्मिन् भरे अस्मिन् यज्ञे वाजसातौ । वाजः अन्नम् । तस्य सातिर्लाभः अन्नलाभे निमित्तभूते । अथ वा एतद् भरविशेषणम् । वाजस्य सातिर्यस्मिन् तस्मिन् भरे नृतमम् नेतृतमं संग्रामे पुरतो गन्तारं यज्ञस्य नेतारं वा शृण्वन्तम् आह्वानस्य श्रोतारम् उग्रम् उद्गूर्णबलं समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि आवरकान् शत्रून् घ्नन्तम् हिंसन्तं धनानाम् शत्रुसंबन्धिनां संजितम् सम्यग्जेतारम् एवंमहानुभावम् इन्द्रम् ऊतये रक्षणाय हुवेम आह्वयेम ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

सुखदायक धनवान् इन्द्रको हम इस संग्राममें बुलाते हैं (वा इस यज्ञमें बुलाते हैं) हम जिसमें अन्नकी प्राप्ति होती है उस संग्राम (वा यज्ञ) में आह्वानको सुनने वाले प्रचण्ड बली इन्द्र को रक्षाके लिये बुलाते हैं। संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करने वाले और धनोंको भली प्रकार जीतने वाले इन्द्रदेवको बुलाते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (१२७) ॥

"उदु ब्रह्माणि" इति सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥

"उदु ब्रह्माणि" इस सूक्तका विनियोग कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

उत् । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । श्रवस्या । इन्द्रम् । सऽमर्ये । महय । वसिष्ठ ।

आ । यः । विश्वानि । शवसा । ततान । उपऽश्रोता । मे । ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः यूयं श्रवस्या श्रवस्यया। श्रूयत इति श्रवः अन्नम्। तस्येच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि उदैरत प्रेरयत। हे वसिष्ठ यजमान समर्ये मर्यैर्मर्त्यैर्ऋत्विग्भिः सहिते। यद्वा मर्या मर्यादा। तत्सहिते यज्ञे इन्द्रं देवं महय पूजय। हविरादिभिः साधनैरिति शेषः। एवम् आत्मानमेव परोक्षीकृत्य निर्दिदेश। य इन्द्रः शवसा बलेन विश्वानि भूतजातानि आ ततान विस्तस्तार। स इन्द्रः ईवतः गच्छतः परिचरतः। ❀ ईङ् गतौ। क्विप्। ईर्गमनम्। "तदस्यास्त्य-

स्मिन्०" इति मतुप्। "छन्दसीरः" इति मतुपो वत्वम्। मतुपः पित्त्वाद् अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ⊛। तादृशस्य मे वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यानि उपश्रोता उपेत्य श्रोता। भवत्विति शेषः ॥

हे ऋत्विजों! तुम अन्नकी इच्छासे मन्त्रोंका (स्तोत्रोंका) उच्चारण करो। हे इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले यजमान! आप मर्त्यधर्मी ऋत्विजोंसे सम्पन्न यज्ञमें इन्द्रदेवकी हवि आदिसे पूजा करिये। जिन इन्द्रदेवने अपने बलसे सब प्राणियोंको विस्तृत किया है वह इंद्र हम सेवा करने वालोंके स्तुतिरूप वाक्योंको सुनें ॥१॥

द्वितीया ॥

अयांमि घोषं इन्द्र देवजांमिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवांचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान्

अयांमि। घोषः। इन्द्र। देवऽजांमिः। इरज्यन्त। यत्। शुरुधः। विऽवांचि।
नहि। स्वम्। आयुः। चिकिते। जनेषु। तानि। इत्। अंहांसि। अति। पर्षि। अस्मान् ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवजामिः देवा जामयो बन्धवो यस्य स तादृशो घोषः शब्दः उक्तलक्षणं स्तोत्रम् अयामि। अकारीत्यर्थः। ⊛ यम उपरमे। कर्मणि चिण् ⊛। यत् यस्मात् कारणाद् विवाचि विगतवचसि नियमस्थे। अथवा विविधा मन्त्ररूपा वाचो यस्य तादृशे यजमाने तस्मिन्निमित्तभूते सति शुरुधः शुचं रुन्धन्तीति शुरुधः। ⊛ ककारलोपश्छान्दसः ⊛। जनिमृतिलक्षणशोकनिवर्तकाः स्वर्गफलकाः सोमा इरज्यन्त अवर्धन्त। ⊛ इरज् ईर्ष्यायाम् इति

धातुरत्र वृद्ध्यर्थः । अस्मात् कण्ड्वादेर्यक् । सनादित्वाद् धातुसंज्ञायाम् अस्माल्लट् । "बहुलं छन्दसि" इति शपभावः । एकादेशस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । एवं स्तोत्रेण हविषा च इन्द्रं परितोष्य अथ स्वाभिमतं याचते नहीत्यादिना । जनेषु मनुष्येषु । मनुष्याणाम् इत्यर्थः । यद्वा जनाः जननात् जन्मानि निमित्तभूतानि । तेषु सत्सु अयं जनो यजमानः स्वम् स्वकीयम् आयुः आयुष्यं न चिकिते न ज्ञातवान् । एतावद् आयुष्यं ममास्तीति न जानातीत्यर्थः । अतस्त्वदीययागाद्यनुष्ठानोपयोगार्थं दीर्घम् आयुः प्रयच्छेति शेषः । वत्सरस्य शतसंवत्सरलक्षणस्यायुषोऽल्पीभावे अंहसां कारणत्वात् तदसंस्पर्शं प्रार्थयते । तानीत् तान्यपि आयुः क्षपणहेतुत्वेन प्रसिद्धान्यपि अंहांसि पापानि अस्मान् त्वां संभजमानान् अति अतिक्रम्य पर्षि पालय ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं देवता जिसके बंधु हैं ऐसे घोष (स्तोत्र) का उच्चारण करता हूँ, क्योंकि—इससे अनेक प्रकारकी मंत्ररूपा वाणियों से सम्पन्न यजमानके निमित्त जन्ममरणकी निवृत्तिरूप स्वर्गफलप्रद सोम (याग) बढ़ते हैं [इस प्रकार स्तोत्र और हविसे इन्द्र को संतुष्ट करके अपने अभिमत फलकी याचना करते हैं, कि—] मनुष्योंमें रहता हुआ यह यजमान मेरी इतनी आयु है, इस बात को नहीं जानता है । अतः आप इसको अपने यागके अनुष्ठानकी उपयोगी आयुः प्रदान करिये । [पापोंके ही कारण सौ वर्षकी पूर्ण आयुसे कम आयु होती है अतः पापोंसे शून्य रहनेकी प्रार्थना करते हैं, कि—] आयुका नाश करनेमें प्रसिद्ध जो पाप हैं आप अपना सेवन करने वालोंको उन पापोंसे दूर रखतेहुए पालन करिये

तृतीया ॥

युञ्जे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

वि बांधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

युजे । रथम् । गोऽएषणम् । हरिऽभ्याम् । उप । ब्रह्माणि । जुजुषाणम् । अस्थुः ।

वि । बाधिष्ट । स्यः । रोदसी इति । महिऽत्वा । इन्द्रः । वृत्राणि । अप्रति । जघन्वान् ॥ ३ ॥

य इन्द्रो गवेषणम् गवां प्रापयितारं रथम् । ❀ "अवङ् स्फोटायनस्य" इति अवङ् आदेशः ❀ । हरिभ्याम् । हरी इन्द्रस्यासाधारणावश्वौ । ताभ्यां युजे युयुजे युनक्ति । यागसदनं प्राप्तुम् इति शेषः । ब्रह्माणि अस्मदीयानि मन्त्रद्वानि स्तोत्राण्यपि जुजुषाणम् सेवमानं सर्वैः सेव्यमानं वा इन्द्रम् उपास्थुः उपतिष्ठन्ते सेवन्ते । स्यः स इन्द्रः महित्वा स्वमहत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ वि बाधिष्ट व्यबाधिष्ट । आचक्रामेत्यर्थः । किं च वृत्राणि स्वावरकान् शत्रून् अप्रति न विद्यते प्रतिगतिः पुनःप्राप्तिर्यस्मिन् कर्मणि तद् अप्रति । तद् यथा भवति तथा जघन्वान् नाशितवान् । ❀ हन्तेर्लिटः क्वसुः । अभ्यासस्य कुत्वम् । "विभाषा गमहन०" इति इडभावः ❀ ॥

इन्द्रदेव गौओंको प्राप्त कराने वाले अपने रथमें अपने असाधारण अश्व हरी नामक घोड़ोंको यागगृहमें आनेके लिये जोतते हैं । और हमारे स्तोत्र भी सबोंसे सेवनीय इन्द्रकी ही सेवा करते हैं । इन इन्द्रदेवने अपनी महिमासे द्यावापृथिवीको दबा रक्खा है । और इन इन्द्रदेवने अपने शत्रुओंको जिस प्रकार उन पर फिर न जाना पड़े, इस प्रकार नष्ट कर डाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥

आपः । चित् । पिप्युः । स्तर्यः । न । गावः । नक्षन् । ऋतम् । जरितारः । ते । इन्द्र ।
याहि । वायुः । न । निऽयुतः । नः । अच्छ । त्वम् । हि । धीभिः । दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र आपश्चित् आपोपि सोमाभिषवार्थाः स्तर्यो न गावः स्तर्यो वशा गाव इव पिप्युः अभिवृद्धा आसन् । ⊛ प्यायी वृद्धौ । "प्यायः पी" इति पीभावः ⊛ । हे इन्द्र ते तव जरितारः स्तोतार ऋत्विजः ऋतम् सत्यफलं यज्ञं नक्षन् आप्नुवन् । ⊛ नक्ष गतौ ⊛ । यत एवम् अतो नः अस्माकं नियुतः नियोजनानि स्तोत्राणि अच्छ लक्षीकृत्य याहि आगच्छ । तत्र दृष्टान्तः । वायुर्न नियुतः । नियुतो वायोरश्वाः । वायुर्देवो यथा स्वीयान् अश्वान् प्रति याति यज्ञदेशमाप्त्यर्थम् तद्वत् । त्वं हि त्वं खलु धीभिः कर्मभिस्तुष्टः सन् वाजान् । वाजः अन्नम् । अन्नानि वि दयसे । ⊛ दयतिरत्र दानार्थः ⊛ । प्रयच्छसि ॥

हे इन्द्र ! ये सोमके अभिषवके जल वशा गौ आदिकी समान बढ़ गए हैं और हे इन्द्र ! आपकी स्तुति करने वाले ऋत्विज सत्यफल वाले यज्ञमें आगए हैं, इस कारण आप हमारे स्तोत्रों

को ध्यानमें रख कर यज्ञभूमिमें इस प्रकार आइये जिस प्रकार वायुदेव यागमें जानेके लिये अपने नियुत् नामक घोड़ोंकी ओर जाते हैं। आप कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर अन्न प्रदान करते हैं॥४॥

पञ्चमी ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व

ते। त्वा। मदाः। इन्द्र। मादयन्तु। शुष्मिणम्। तुविऽराधसम्। जरित्रे।

एकः। देवऽत्रा। दयसे। हि। मर्तान्। अस्मिन्। शूर। सवने। मादयस्व॥ ५॥

हे इन्द्र ते अभिषवादिना संस्कृताः प्रसिद्धा मदा मदकराः सोमास्त्वा त्वाम् मादयन्तु मदयुक्तं कुर्वन्तु। कीदृशं त्वाम्। शुष्मिणम् बलवन्तं जरित्रे स्तोत्रे स्तोतुरर्थाय तुविराधसम् प्रभूतधनम्। किं च त्वं देवत्रा देवेषु मध्ये। ❀ "देवमनुष्य०" इत्यादिना सप्तम्यर्थे त्राप्रत्ययः ❀। त्वम् एक एव मर्तान् मनुष्यान् दयसे हि दयां करोषि रक्षसि खलु। ❀ हिशब्दयोगाद् अनिघातः ❀। मनुष्यरक्षणे त्वम् एक एव नान्यो देव इत्यर्थः। यस्माद् एवं तस्मात् हे शूर शौर्योपेत इन्द्र अस्मिन् सवने यागे माध्यंदिनसवने वा मादयस्व अभिमतप्रदानेन अस्मान् हर्षय स्वात्मानं वा सोमपानेन हर्षय॥

हे इन्द्रदेव! अभिषव आदिसे संस्कृत मद करने वाले सोम आपको हर्षित करें, आप बलवान् हैं, और स्तुति करने वालोंके लिये आपके पास बहुतसा धन है, और देवताओंमें आप एक

ही मनुष्यों पर दया करते हैं-उनकी रक्षा करते हैं। इस कारण हे शूरतासम्पन्न शक्र! आप इस माध्यन्दिनसवनमें अभिलषित फल देकर हमको हर्षित करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

एव । इत् । इन्द्रम् । वृषणम् । वज्रऽबाहुम् । वसिष्ठासः । अभि । अर्चन्ति । अर्कैः ।

सः । नः । स्तुतः । वीरऽवत् । धातु । गोऽमत् । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

उक्तां स्तुतिम् उपसंहरति । एव एवम् उक्तप्रकारेण वृषणम् वर्षकं कामानां वज्रबाहुम् वज्रं बाहौ यस्य स तादृशम् इन्द्रं वसिष्ठासः वसिष्ठा अर्कैः अर्चनीयैः स्तोत्रैः अभ्यर्चन्ति अभिपूजयन्ति। स इन्द्रः स्तुतः स्तोत्रैः पूजितः सन् नः अस्मभ्यं वीरवत् बहुभिर्वीरैः पुत्रादिभिरुपेतं गोमत् बह्वीभिर्गोभिरुपेतं धनं धातु दधातु प्रयच्छतु । ❁ "बहुलं छन्दसि" इति श्लोरभावः ❁ । हे देवा यूयं च इन्द्रम् अनुसृत्य नः अस्मान् स्वस्तिभिः क्षेमैः सदा पात रक्षत ॥

[अब इस स्तुतिका उपसंहार करते हैं, कि-] इस प्रकार कामनाओंकी वर्षा करने वाले, हाथमें वज्रको धारण करने वाले शत्रुकी इन्द्रियोंको दमन करने वाले पुरुष स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। स्तोत्रोंसे पूजित होते हुए इन्द्रदेव हमको बहुतसे पुत्र आदि

वीरों वाला, बहुतसी गौओं वाला धन प्रदान करें। और हे देवताओं ! तुम भी इन्द्रकी ओर ध्यान देकर हमारी रक्षा करो ६

पञ्चमी ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीषी । वज्री । वृषभः । तुराषाट् । शुष्मी । राजा । वृत्रऽहा । सोमऽपावा ।
युक्त्वा । हरिऽभ्याम् । उप । यासत् । अर्वाङ् । माध्यंदिने । सवने । मत्सत् । इन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीषी प्रातर्माध्यंदिनसवनाभ्याम् अभिषवेण गतसारस्तृतीयसवन उपयोक्ष्यमाणः सोम ऋजीषः । "तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषम् अभिषुण्वन्ति" इति [तै० सं० १. ६. ४] श्रुतेः । तद्वान् ऋजीषी । अनेन सवनत्रयेपि इन्द्रस्य सोमसम्बन्ध उक्तो भवति । वज्री वज्रवान् वृषभः कामानां वर्षिता तुराषाट् । तुरास्त्वरमाणाः शत्रवः । तेषाम् अभिभविता शुष्मी । शुष्मं शत्रुशोषकं बलम् । तद्वान् राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातीयः सर्वस्य स्वामी वा वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता सोमपावा यत्रयत्र सोमाभिषवोस्ति तत्रतत्र नियमेन सोमस्य पाता एवंमहानुभाव इन्द्रः हरिभ्याम् अश्वाभ्यां युक्त्वा रथं योजयित्वा अर्वाङ् अस्मदभिमुखाञ्चनः सन् उप

यासत् उपागच्छतु गत्वा च अस्मिन् माध्यंदिने सवने मत्सत् अस्माभिर्दत्तेन सोमेन माद्यतु ॥

इति द्वादशं सूक्तम् ॥

[प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवनोंके द्वारा अभिषवसे गतसार तृतीय सवनमें उपयोगमें लाया जाने वाला सोम ऋजीष कहलाता है। तैत्तिरीयसंहिता ६।१।६।४ की श्रुतिमें कहा है, कि-"तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषम् अभिषुण्वन्ति ।-इस लिये तृतीयसवनमें ऋजीषका अभिषव करते हैं" ऐसे ऋजीष भाग वाले] ऋजीषी [इससे तीनों सवनोंमें इन्द्रका सोमसंबंध बता दिया] वज्रधारी, कामनाओंकी वर्षा करने वाले, त्वरा करने वाले शत्रुओंको दबाने वाले, शत्रुशोषक बलसे सम्पन्न, देवताओंमें राजा, वृत्रासुरका संहार करने वाले, और जहाँ कहीं सोमका अभिषव हो तहाँ नियमपूर्वक सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव अपने हरि नामक अश्वोंसे रथको जोत कर हमारे अभिमुख आवें और माध्यंदिनसवनमें हमारे दिये हुए सोमसे प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६२८)॥

ज्योतिष्टोमादिषु क्रतुषु "इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते" इत्याद्यास्तिस्र ऋचस्तेषामेवर्त्विजां त्रयाणां क्रमेण तार्तीयसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः। सूत्रितं हि। "इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति प्रस्थितयाज्याः" इति [वै० ३. १२]॥

"ऐभिरग्ने" [४] इत्यनया आग्नीध्रः पात्नीवतग्रहं यजेत। सूत्रितं हि। "ऐभिरग्न इत्युपांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति" इति [वै० ३. १३]॥

ज्योतिष्टोम आदि क्रतुओंमें "इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते" इत्यादि तीन ऋचाएँ इन ही तीन ऋत्विजोंकी क्रमशः तार्तीय-

सवनिकी मरिस्थतयाज्या है । सूत्रमें भी कहा है, कि—"इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति प्रस्थितयाज्याः" (वैतानसूत्र ३ । १२) ॥

"ऐभिरग्ने" इस चौथी ऋचासे आग्नीध्र पात्नीवतग्रहका यजन करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १३ का प्रमाण है, कि—"ऐभिरग्न इत्युपांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति" ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥

इन्द्रः । च । सोमम् । पिबतम् । बृहस्पते । अस्मिन् । यज्ञे । मन्दसाना । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
आ । वाम् । विशन्तु । इन्दवः । सुऽआभुवः । अस्मे इति । रयिम् । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छतम् ॥ १ ॥

हे बृहस्पते बृहतो वेदराशेः स्वामिन् एतन्नामक देव त्वम् इन्द्रश्च युवां सोमं पिबतम् । कीदृशौ युवाम् । अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना हृष्यन्तौ वृषण्वसू वर्षितृधनौ । यजमानाय दीयमानधनावित्यर्थः । वाम् युवां स्वाभुवः सुष्ठु सर्वतो भवन्तः । कृत्स्नशरीरव्यापनसमर्था इत्यर्थः । तादृशा इन्दवः सोमाः आ विशन्तु युवयोः शरीरं प्रविशन्तु । अस्मे अस्मभ्यं रयिम् धनं सर्ववीरम् सर्वपुत्राद्युपेतं नि यच्छतम् दत्तम् ॥

हे बृहत् वेदराशिके स्वामी बृहस्पति नामक देव ! आप और

इन्द्रदेव दोनों सोमका पान करिये । आप इस यज्ञमें हर्षमें भरे हुए हैं । और यजमानके लिये धन प्रदान करने वाले हैं, ऐसे आप दोनोंके शरीरोंमें सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होसकने वाले सोम प्रवेश करें । और हमारे लिये आप पुत्र आदि सब वीर्यसे उत्पन्न होने वालों सहित धन दीजिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ वो॑ वहन्तु॒ सप्त॑यो रघु॒ष्यदो॑ रघु॒पत्वा॑नः॒ प्र जि॑गात बा॒हुभिः॑ ।
सीद॑ता ब॒र्हिरु॒रु वः॒ सद॑स्कृ॒तं मा॒दय॑ध्वं मरुतो॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ २ ॥

आ । वः॒ । व॒ह॒न्तु॒ । सप्त॑यः । र॒घु॒ऽस्यदः॑ । र॒घु॒ऽपत्वा॑नः । प्र । जि॒गा॒त॒ । बा॒हु॒ऽभिः॑ ।
सीद॑त । आ । ब॒र्हिः । उ॒रु । वः॒ । सदः॑ । कृ॒तम् । मा॒दय॑ध्वम् । म॒रु॒तः॒ । मध्वः॑ । अन्ध॑सः ॥ २ ॥

हे मरुतः रघुष्यदः लघुस्यन्दना लघुगतयः सप्तयः सर्पणशीला अश्वाः वः युष्मान् आ वहन्तु यज्ञगृहं प्रति प्रापयन्तु । यूयं च बाहुभिः शीघ्रगमनसाधनैः रघुपत्वानः लघुपतनाः । ॐ पत्लृ गतौ । "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति वनिप् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण प्रत्ययस्य पित्वाद् धातुस्वर एव ॐ । तादृशाः सन्तः प्र जिगात प्रकर्षेण गच्छत । ॐ जिगातीत्ययं गतिकर्मसु पठितः । गा स्तुतौ । जौहोत्यादिकः । लोण्मध्यमबहुवचनस्य "तप्तन०" इत्यादिना तबादेशः । तस्य पित्त्वेन ङित्त्वाभावाद् "ई हल्यघोः" इति ईत्वा-

भावः ❁ । वः युष्माकम् उरु विस्तीर्णं सदः सीदन्त्यत्रेति सदः सदनं स्थानं वेदिलक्षणं कृतम् निष्पादितम् । तत्र बर्हिः आस्तीर्णं बर्हिः सीदत बर्हिषि निषण्णा भवत । बर्हिरित्येतत् सद इत्यस्य विशेषणं वा । बर्हिरूपं सदनम् इत्यर्थः । अथ वा सदः सदनार्हं कृतं बर्हिः सीदतेति योज्यम् । निपद्य च मध्वः मधुरस्य अन्धसः सोमलक्षणस्य अन्नस्य अंशम् । यद्वा मध्वः मधु अन्धसः अन्नं सोमम् । पीत्वेति शेषः । मादयध्वम् तृप्ता भवत । ❁ मद तृप्तियोगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ❁ ॥

हे मरुत् देवताओं ! शीघ्रतासे चलने वाले, सर्पणशील घोड़े तुमको यज्ञगृहमें लावें, तुम भी शीघ्रगमनकी साधन भुजाओंसे शीघ्रतासे चलते हुए आओ । आपके लिये विशाल वेदीरूप स्थान बना दिया गया है । तहाँ कुशा बिछा दी गई है उस कुशासन पर तुम बैठो और बैठकर मधुर रस वाले सोमके अंशका पान करके तृप्त होओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया । भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥

इमम् । स्तोमम् । अर्हते । जातऽवेदसे । रथम्ऽइव । सम् । महेम । मनीषया ।

भद्रा । हि । नः । प्रऽमतिः । अस्य । सम्ऽसदि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयम् । तव ॥ ३ ॥

अर्हते पूज्याय । ❁ अर्ह मर्शंसायाम् इति धातोः लटः शत्रा-

देशः ७। जातवेदसे जातप्रज्ञाय जातधनाय वा जातानाम् उत्पन्नानां वेदित्रे वा इमम् इदानीं क्रियमाणं स्तोमम् एतत् स्तोत्रं मनीषया निशितया बुद्धया सं महेम सम्यक् पूजयेम निष्पादयेम। तत्र दृष्टान्तः। रथमिव यथा रथं रथकारः अक्षफलकाद्यवयवसंयोजनेन संस्करोति तद्वत्। महानुभावस्याग्नेः स्तोमनिष्पादने अतिशयितया बुद्धया भवितव्यम् इति प्राप्ते तत्सद्भाव दर्शयति। अस्य पूज्यस्याग्नेः संसदि संसदने उपसत्तौ तद्विषये नः अस्माकं प्रमतिः प्रकृष्टा मतिः भद्रा हि कल्याणी खलु। अतः हे अग्ने तव सख्ये बन्धुभावे सति वयं स्तोतारो मा रिषाम हिंसिता न भवेम॥

पूजनीय, उत्पन्न हुओंको जानने वाले जातवेदा अग्निके लिये हम इस स्तोत्रको अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इस प्रकार निष्पन्न करते हैं, जिस प्रकार रथको रथकार अक्षफलक आदि अवयवों से संस्कृत करता है [महानुभाव अग्निकी पूजाके लिये बड़ी बुद्धि होनी चाहिये ऐसी प्राप्ति होने पर दिखाते हैं, कि-] इन पूजनीय अग्निदेवके संसदनमें हमारी श्रेष्ठ बुद्धि कल्याणमयी है, अत एव हे अग्ने! हम स्तोता बंधुभावके होने पर हिंसित न होवें ३

चतुर्थी॥

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ४

आ। एभिः। अग्ने। सऽरथम्। याहि। अर्वाङ्। नानाऽरथम्।
वा। विऽभवः। हि। अश्वाः।
पत्नीऽवतः। त्रिंशतम्। त्रीन्। च। देवान्। अनुऽस्वधम्। आ।
वह। मादयस्व॥ ४॥

हे अग्ने एभिः वक्ष्यमाणैस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकैर्देवैः सह सरथम् समानः एक एव रथो यस्मिन्नागमनकर्मणि तत् सरथं तद् यथा भवति तथा अर्वाङ् अस्मदभिमुखम् आ याहि आगच्छ। सरथम् इति न नियम इत्याह। नानारथं वा नाना पृथग्भूता रथा यस्मिन् कर्मणि तद् नानारथम् । तत्तत्प्रतिनियतं रथम् आरुह्येत्यर्थः । सरथपक्षे बहूनां देवानाम् एकेनैव रथेन आनयनम् अतिभारत्वात् कथं घटत इति तत्राह विभवो ह्यश्वा इति। अश्वास्तव रथे नियुक्ता विभवो हि शक्ताः खलु । अतः पत्नीवतः स्वकीयाभिः पत्नीभिर्युक्तान् त्रिंशतम् त्रींश्च त्र्युत्तरत्रिंशत्संख्याकान् देवान् "ये देवा दिव्येकादश स्थ" इति [तै० सं० १. ४. १०. १] मन्त्रोक्तान् अनुष्वधम् । स्वधेत्यन्नाम । तां तां स्वधाम् अनुलक्ष्य यदा-यदा सोमो हूयते तदातदेत्यर्थः । आ वह तान् देवान् प्रापय । आवाह्य च मादयस्व सोममदानेन हर्षय ॥

इति त्रयोदशं सूक्तम् ॥

विंशे काण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

हे अग्निदेव ! आगे कहे जाने वाले तैंतीस देवताओंके साथ एक रथमें बैठ कर आइये । वा अनेक रथोंमें बैठ कर आइये (सब देवता एक रथमें बैठ कर आवेंगे तो घोड़े उस रथको कैसे खेंचेंगे तो कहते हैं, कि-) आपके रथमें जुते हुए घोड़े समर्थ हैं। अतः अपनी २ पत्नियोंसे युक्त उन तैंतीस देवताओंको जब २ उनको स्वधा (अन्न) दी जावे तब २ प्राप्त कराइये और आवाहन करके उनको सोमपदानसे हर्षित करिये ॥ ४ ॥

त्रयोदश सूक्त समाप्त (६२९)

बीसवें काण्डमें प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

द्वितीयेनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तानि च उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि। चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा शस्त्रयाज्या।

"उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः" इति मक्रम्य सूत्रितं वैताने । "वयमु त्वामपूर्व्य [२०. १४. १] यो न इदमिदं पुरा [२०. १४. ३] इति स्तोत्रियानुरूपौ । स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्यार्थोत्तमम् उत्तरेण संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुभानां स्तोत्रियानुरूपाणां मग्रथनम् । इनः पच्छः शंसति । प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये [२०. १५] इत्युक्थमुखम् । उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः [२०. १६] इति बार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः [२०. १७] इति पर्यासः । इत्यैकाहिकानाम् उत्तमया परिदधाति परया यजति" इति [वै०४.१]॥

दूसरे अनुवाकमें चार सूक्त हैं । वे उक्थ्य क्रतुमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थसूक्तकी अन्तिम ऋचा शस्त्रयाज्या है । "उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः" को कह कर वैतानसूत्र ४ । १ में कहा है, कि-"वयमु त्वामपूर्व्य (२० । १४ । १) यो न इदमिदं पुरा (२० । १४ । ३) इति स्तोत्रियानुरूपौ । स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्यार्थोत्तमं उत्तरेण संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुभानां स्तोत्रियानुरूपाणां मग्रथनम् । इनः पच्छः शंसति । प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये (२०।१५) इत्युक्थमुखम् उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः (२० । १६) इति बार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः (२०।१७) इति पर्यासः । इत्यैकाहिकानां उत्तमया परिदधाति परया यजति" (वैतानसूत्र ४ । १) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । ऊँ इति । त्वाम् । अपूर्व्य । स्थूरम् । न । कत् । चित् ।

भरन्तः । अवस्यवः ।

वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे अपूर्व्य । पूर्वम् अर्हतीति पूर्व्यः । न पूर्व्यः अपूर्व्यः । सत्यपि सर्वदा गमने नूतन इत्यर्थः । अनेन तस्य सर्वदा अनादरविषयत्वाभाव उक्तो भवति । तादृश इन्द्र चित्रम् चायनीयं पूजनीयं त्वां भरन्तः हविरादिना पोषयन्तः अवस्यवः रक्षाकामाः। ❀ अवतेरसुनि "वयाच्छन्दसि" इति उमत्ययः ❀। वाजे। वाजः अन्नम् । अन्ने निमित्तभूते सति । अथ वा वाजः संग्रामः । तस्मिन् तज्जयार्थं वयम् वयमेव हवामहे आह्वयामः । अस्मान् प्रत्येव त्वम् आगच्छ नास्मत्प्रतिपक्षान् इत्यमुम् अर्थं द्योतयितुम् उशब्दः । तत्र दृष्टान्तः स्थूरं न कच्चित् । यथा लोके कच्चित् कदाचित् स्थूरम् स्थूलं गुणाढ्यं राजादिकं भरन्तः तदभिमतप्रदानेन पोषयन्तो जनाः स्वजयार्थम् आह्वयन्ति तद्वत् ॥

हे वारम्वार गमन करने पर भी नवीन ही रहने वाले अपूर्व्य (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता) इन्द्र! आप पूजनीयको अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते है आप हमारी ओरही विजय दिलाने के लिये आइये हमारे प्रतिपक्षियोंकी ओर न जाइये, क्योंकि— हम ही आपका आवाहन कर रहे है । जैसे मनुष्य किसी परम गुणी राजाको अभिमत फलदेकर पुष्ट करते हैं उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं,इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं१

द्वितीया ॥

उग्रं त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

खलु । स्तुत्य इति शेषः । अतः उक्तगुणविशिष्टत्वात् तमेवेन्द्रं स्तुषे इत्यर्थः । यद्वा यः अमन्दत यो नरः इन्द्रदत्तेन धनेन तृप्त आसीत् स हि स्म स एव नरः उक्तलक्षणम् इन्द्रं तु ष्टुपति । स मघवा धनवान् इन्द्रः । तुशब्दो वाक्यच्छेदे । स्तोतृभ्यो नः अस्मभ्यं शतम् शतसंख्याकं गव्यम् गोसमूहम् अश्व्यम् शतसंख्याकम् अश्वसमूहं च आ वपति प्रापयतु । ❁ वीगत्यादिषु । अस्माल्लेटि अडागमः ❁ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिन इन्द्रदेवके हरि नामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्योंके पालक हैं और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ॥४॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (.६३०)

"प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये" इति सूक्तस्य उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये" सूक्तका उक्थ्य क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है, कि—

तत्र प्रथमा ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे । अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥

प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहत्ऽरये । सत्यऽशुष्माय । तवसे । मतिम् । भरे ।

अपाम्ऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरम् । राधः । विश्वऽआयु । शवसे । अपऽवृतम् ॥ १ ॥

मंहिष्ठाय अतिशयेन मंहनीयाय दातृतमाय वा बृहते महते गुणैः प्रवृद्धाय वृद्धये । रयिरिति धननाम । प्रभूतधनाय सत्यशुष्माय सत्यबलाय अवितथसामर्थ्याय तवसे । तवो बलम् । अतिशयितबलाय इन्द्राय । अथ वा तवसे बललाभाय उक्तगुणकाय इन्द्राय मतिं प्र भरे स्तोत्रं संपादयामि । यस्य उक्तगुणविशिष्टेन्द्रस्य विश्वायु । आयवो मनुष्याः । विश्वेषां मनुष्याणां पोषणसमर्थं राधः धनम् अपामिव प्रवणे । प्रवणः अवनतो देशः । तस्मिन् अपां पूर इव न यथा दुर्धरो भवति एवं दुर्धरं धनं शवसे बलाय प्रयोजनाय अपावृतम् अपगतावरणं कृतम् । तस्मा इन्द्राय मतिं भर इति संबन्धः ॥

परम दाता गुणोंमें वृद्ध, महाधनी, अमोघ सामर्थ्य वाले इन्द्र के स्तोत्रका मैं उच्चारण करता हूँ । जिन इन्द्रदेवका धनबल सम्पूर्ण मनुष्योंका पोषण करनेमें समर्थ है । और ढलवान वाले स्थानमें जलका बहला जैसे दुराधर्ष होता है ऐसे ही प्रयोजन के समय जिनका धनबल दुराधर्ष होता है, उन इन्द्रदेवके लिये मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अधं ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सर्वना हविष्मंतः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥

अध । ते । विश्वम् । अनु । ह । असत् । इष्टये । आपः । निम्ना ऽइव । सवना । हविष्मतः ।
यत् । पर्वते । न । सम्ऽअशीत । हर्यतः । इन्द्रस्य । वज्रः । श्नथिता । हिरण्ययः ॥ २ ॥

अध अथ हे इन्द्र ते तव इष्टये एषणाय यागाय वा विश्वम् सर्वं जगत् अनु हासत् । हेति प्रसिद्धौ । अनुकूलं भवेत् । तत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नेव निम्नानि स्थलानि आप इव । ता यथा अनुक्रमेण प्रवहन्ति तद्वद् विश्वम् अनु हासद् इति संबन्धः । अथ वा उत्तरत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नानीव हविष्मतः यजमानस्य सवना सवनानि त्रीण्यपि त्वाम् अनुगच्छन्ति । यत् यस्मात् हर्यतः कान्तः कमनीयः श्नथिता शत्रूणां हिंसको हिरण्ययः हिरण्मयो हिरण्येन भूषित इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न । नशब्दः अप्यर्थे । पर्वतेपि न समशीत न सक्तोभूत् किं तु व्यदारयदेव । अतो विश्वम् अनु हासद् इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टिके लिये सब जगत् इस प्रकार अनुकूल होवे, जिस प्रकार जल निम्नस्थलके अनुकूल होता है । इसी प्रकार हवि वाले यजमानके तीनों सवन आपके अनुकूल होते हैं । क्योंकि कमनीय, शत्रुओंको मसलने वाले, सुवर्णविभूषित इन्द्रका वज्र पर्वतमें भी नहीं हिलगा, किंतु उसको विदीर्ण न कर सका अत एव जगत् उनके अनुकूल होता है ॥ २ ॥

॥ तृतीया ॥

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे

अस्मै । भीमाय । नमसा । सम् । अध्वरे । उपः । न । शुभ्रे ।

आ । भर । पनीयसे ।

यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इन्द्रियम् । ज्योतिः । अकारि ।

हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥

हे शुभ्रे दीप्ते हे उपः उपोदेवते भीमाय। बिभेत्यस्माद् इति भीमः। शत्रूणां भयंकराय पनीयसे अतिशयेन स्तोतव्याय अस्मै इन्द्राय। यागः क्रियत इति शेषः। अतो नमसा न। नमः अन्नं च। नशब्दः चार्थे। चकारात् उक्तलक्षणम् इन्द्रं च. समा भर सम्यग् आहर अस्मद्यज्ञं प्रापय। अस्मदभिमतम् अन्नं यष्टव्यम् इन्द्रं च आनयेत्यर्थः। उषस्युदितायां सत्यामेव इन्द्रस्यागमनाद् उपस इन्द्राहरणव्यपदेशः। अथ वा नशब्दः अनर्थकः। उक्त लक्षणाय इन्द्राय नमसा। नमः अन्नम्। आ भर। अन्ने समृद्धे सत्येव इन्द्रम् उद्दिश्य यागप्रवृत्तेरेवम् उक्तम्। यस्य इन्द्रस्य धाम सर्वेषां धारकं पोषकम् इन्द्रियम् इन्द्रहितम् इन्द्रदत्तं वा। ❁ "इन्द्रियम् इन्द्रलिङ्गम् इन्द्रदृष्टम् इन्द्रसृष्टं०" इत्यादिना इन्द्रिय-शब्दो निपातितः ❁। उक्तलक्षणं नाम सर्वेषां नामकम् उदकं श्रवसे अन्नाय तत्समृद्धये भवति। येन च इन्द्रेण हरितो न हरितामिव दिशामिव अयसे प्राणिनां गमनाय गमनादिव्यवहाराय। ❁ अय पय गतौ इत्यस्माद् असुन् ❁। ज्योतिः अकारि क्रियते। तं समा भरेति पूर्वत्र संबन्धः॥

हे दीप्त उपा देवते! जिनसे शत्रु डरते हैं उन भीम-स्तुतिके परम पात्र इन इन्द्रदेवके लिये याग किया जारहा है अतः आपको

और इन्द्रको भी हमारे यज्ञमें ला। [उषाके उदित होने पर ही इन्द्रका आगमन होनेसे उषाका इन्द्रानयनका वर्णन किया है। अथवा मूलका न शब्द अनर्थक माना जाय तो पूर्वोक्त लक्षणों वाले इन्द्रके लिये अन्नको ला, क्योंकि-समृद्ध अन्नके होने पर ही इन्द्रके उद्देश्यसे यागकी प्रवृत्ति होसकती है] जिन इन्द्रका सबका पोषक धाम (जल) अन्नसमृद्धिके लिये होता है, जिन इन्द्रने प्राणियोंके गमन आदिके व्यवहारके लिये दिशाओंमें ज्योति की है उनको यज्ञमें ला ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

इमे । ते । इन्द्र । ते । वयम् । पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आऽरभ्य । चरामसि । प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो ।

नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीःऽइव । प्रति । नः । हर्य । तत् । वचः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त इमे । प्रसिद्धिवाचकस्तच्छब्दः । इदम् शब्दः अपरोक्षवाची । त्वदर्थकत्वेन प्रसिद्धा वयं ते तव स्वभूताः । हे पुरुष्टुत बहुभिर्बहुप्रकारं वा स्तुत । एतद् इन्द्रेत्यस्य विशेषणम् । त इत्युक्तम् कीदृशास्त इत्यत्राह । ये वयम् हे प्रभूवसो प्रभूतधन इन्द्र त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रित्य त्वामेव शरणं प्राप्य चरामसि चरामः । ते वयम् इति पूर्वत्र संबन्धः । हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय

इन्द्र त्वदन्यः त्वत्तो व्यतिरिक्तो देवः गिरः अस्मदीयानि वचांसि नहि सयत् न खलु सहते । स्तुत्यस्य तव महिम्नो निरवधित्वाद् अस्मदीयानां स्तुतिवचसाम् अत्यल्पत्वाच्च तादृग्वचस्त्वयैव सोढव्यम् इत्यर्थः । ❀ सहेर्लेटि अडागमः । वर्णविपर्ययेण हकारस्य यकारः ❀ । तत्र दृष्टान्तः क्षोणीरिव क्षोणय इव । क्षोणीशब्देनात्र प्रजा विवक्ष्यन्ते । प्रजा राज्ञो यद्यद् विज्ञापयन्ति तत् सर्वं स राजा यथा सहते तद्वद् इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्माद् नः अस्माकं तद् वचः तादृग्वचनं प्रति हर्य प्रतिकामय ॥

हे वाणियोंसे स्तुति करने योग्य ! हे बहुतसे धन वाले ! जो हम आपका ही आश्रय लेकर रहते हैं, वे हम आपके ही हैं आपके अतिरिक्त और कोई देव हमारी वाणियोंको नहीं सह सकता, क्योंकि-आप स्तुति करने वालेकी महिमा अवधिरहित है और हमारे स्तुतिवचन थोड़े ही हैं अत एव ऐसे वचन आपको सहने ही चाहियें । जैसे प्रजाएँ राजासे जो कुछ कहती हैं, राजा उनको सहन करता है, इसी प्रकार आप हमारे वचनोंकी कामना करिये॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं१ तवं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनुं ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं चं ते पृथिवी नेंम ओजंसे ॥ ५ ॥

भूरि । ते । इन्द्र । वीर्यम् । तव । स्मसि । अस्य । स्तोतुः । मघऽवन् । कामम् । आ । पृण ।

अनु । ते । द्यौः । बृहती । वीर्यम् । ममे । इयम् । च । ते । पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते तव वीर्यम् वीरकर्म वृत्रवधादिलक्षणं भूरि अतिबहु यतः अतो वयं तव स्मसि स्मः तव विधेया भवामः। ❀ "अस्तोरल्लोपः" इति अकारलोपः। "इदन्तो मसिः" ❀। अस्य स्तोतुः स्तवं कुर्वतोऽस्य यजमानस्य कामम् अभिलषितम्। हे मघवन् धनवन् इन्द्र आ पृण आपूरय। ❀ पृण प्रीणने। तौदादिकः। अत्र पूरणार्थः। "अतो हेः" इति हेर्लुक् ❀। भूरि त इन्द्र वीर्यम् इत्युक्तं वीर्यबहुत्वमेव स्पष्टयति। ते तव वीर्यं बृहती महती द्यौः महान् द्युलोकः अनु ममे अनुक्रमेण माति परिछिनत्ति। इन्द्रस्य वृत्रयुद्धकादेरास्पदत्वेन द्यौरेव ममे। अन्यः कश्चित् परिच्छेत्ता नास्तीत्यर्थः। ❀ माङ् माने। लिटादि सर्वम् ❀। न केवलं द्यौरेव इयं पृथिवी च ते ओजसे तव ओजसा बलेन निमित्तेन नेमे ननाम नम्रा भवति। त्वदोजोसंभूतेन गिरितरुगुल्ममाणमादिधारणेनेत्यभिप्रायः। अतः पृथिवी च वीर्यं ममे इति भावः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका वृत्रवध आदि वीरकर्म बहुत बड़ा है, अत एव हम आपके सेवक बनते हैं। इस स्तुति करने वाले यजमानकी अभिलाषाको हे धनी इन्द्र ! आप पूर्ण करिये आपके वीर्यको विशाल द्युलोक ही, वृत्रमिलन आदिका स्थान होनेसे मान करता है। और कोई परिच्छेत्ता नहीं है। वा—यह पृथिवी भी आपके बलमें नम्र होजाती है। अत एव यह भी मान करती है ॥ ५ ॥

पष्ठी ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ।

अवांसृजो निवृंताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

त्वम् । तम् । इन्द्र । पर्वतम् । महाम् । उरुम् । वज्रेण । वज्रिन् । पर्वऽशः । चकर्तिथ ।

अव । असृजः । निऽवृताः । सर्तवै । अपः । सत्रा । विश्वम् । दधिषे । केवलम् । सहः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् त्वं तं प्रसिद्धं महाम् महान्तं महत्त्वोपेतम् । ॐ नकारतकारयोर्लोपश्छान्दसः ॐ । उरुम् अतिप्रभूतं पर्वतम् पर्ववन्तं गिरिम् । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । गिरीन् वज्रेण आयुधेन पर्वशः अवयवशः पक्षादिक्रमेण चकर्तिथ शकलीकृतवान् असि । ॐ कृती छेदने । थलि क्रादिनियमात् इट् । गुणः ॐ । यद्वा अत्र पर्वतशब्दः उत्तरत्र वृष्टयभिधानाद्द मेघवाची । उक्तलक्षणं मेघं वज्रेण पर्वशो विदारितवान् असीत्यर्थः । अनन्तरं निवृताः नितरां मेघेन वृता अपः सर्तवै नद्यात्मना सरणाय अवासृजः अवाङ्मुखं विसृष्टवान् असि । एवमाद्यात्मकं केवलम् असाधारणं विश्वम् सर्वं बलं त्वं दधिषे धारयसि । एतत् सत्रा सत्यं न मृषा । सत्रेति सत्यनाम ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने महत्वमय परमविशाल पर्व वाले पर्वत (वा मेघ) को (पर आदिके क्रमसे) टुकड़े २ कर डाला था । तथा आपने मेघमे घिरे हुए जलको सरकनेके लिये नदीरूपसे छोड़ दिया था। ऐसे असाधारण सब बलोंको आप धारण करते हैं । यह बात सत्य है, मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३१)

"उदप्रुतः" इति सूक्तस्य उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"उदप्रुतः" सूक्तका उक्थ्य क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥ १ ॥

उदऽप्रुतः । न । वयः । रक्षमाणाः । वावदतः । अभ्रियस्यऽइव । घोषाः ।
गिरिऽभ्रजः । न । ऊर्मयः । मदन्तः । बृहस्पतिम् । अभि । अर्काः । अनावन् ॥ १ ॥

उदप्रुतः उदकेषु गच्छन्तश्चरन्तः । ❀ छान्दसत्वाद् असंज्ञायामपि उदकशब्दस्य उदादेशः ❀ । रक्षमाणाः आत्मानं व्याधादिभ्यः पालयन्तो वयो न पक्षिण इव ते यथा उच्चैर्स्वनन्ति । वावदतः भृशं शब्दं कुर्वतः । ❀ वदेर्यङ्लुकि शतरि रूपम् । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः ❀ । अभ्रियस्य मेघसमूहस्य घोषाः शब्दा इव । तथा गिरिभ्रजः । गिरिरिति मेघनाम । मेघेभ्यः सकाशाद् गच्छन्तः अधः पतन्तः मदन्तः सस्यादीँस्तर्पयन्तः । अनेन धाराध्वनिरुपलक्ष्यते । ऊर्मयो न ऊर्मयः उदकानि ते यथा अधःपतनसमये शब्दं कुर्वन्ति एवम् अर्काः अर्चनसाधना मन्त्राः । ❀ अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति निरुक्तम् [नि० ५ः ४] ❀ । अथ वा अर्काः अर्चकाः स्तोतारो बृहस्पतिम् बृहतो मन्त्रराशेः स्वामिनम् एतन्नामानं देवम् अभ्यनावन् अभिस्तुवन्ति । ❀ नोतिरछान्दसे लङि व्यत्ययेन शप् ❀ ।

जलमें विचरण करने वाले, व्याधि आदिसे बचाने वाले, पक्षियोंकी समान उच्च ध्वनि वाले, मेघोंके गड़गड़ानेकी समान शब्द करने वाले, मेघोंसे धारापातरूपसे चलने वाली शब्दायमान ऊर्मियें नीचेको गिरनेके समय शब्दको करती है, इसी प्रकार पूजा के मन्त्र मन्त्रराशिके स्वामी बृहस्पतिदेवकी स्तुति करते हैं ॥१॥

द्वितीया ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय । जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

सम् । गोभिः । आङ्गिरसः । नक्षमाणः । भगःऽइव । इत् । अर्यमणम् । निनाय ।

जने । मित्रः । न । दम्पती इति दम्ऽपती । अनक्ति । बृहस्पते । वाजय । आशून्ऽइव । आजौ ॥ २ ॥

आङ्गिरसः अङ्गिरोगोत्रोत्पन्नः एतन्नामा महर्षिः गोभिः । विकारे प्रकृतिशब्दः । गोविकारैराज्यैः । यद्वा गोभिः स्तुतिवाग्भिः नक्षमाणः व्याप्नुवन् भग इवेत् एतन्नामको देव इव स यथा वधूवरौ अर्यमणं देवं नयति विवाहसमये एवम् अर्यमणम् विवाहहोमाभिमानिनम् एतन्नामानं देवं दम्पती सं निनाय नयतु । किं च जने प्राणिसमूहे मित्रो न मित्राख्यो देव इव स यथा स्वरश्मीन् अनक्ति प्रकाशाय एवं स एव महर्षिः दम्पती वधूवरौ अनक्ति योजयति ॥ हे बृहस्पते देव त्वं च आशून् आजाविव यथा संग्रामे योद्धारः आशून् व्यापकान् अश्वान योजयन्ति एवं वधूवरौ वाजय संयोजय ॥

अंगिरागोत्रमें उत्पन्न हुए आंगिरस नामक महर्षि भगदेवता की समान गोघृत आदिसे विवाहके समय दम्पतीको जिस प्रकार अर्यमा देवकी शरणमें लेजाते हैं। इसी प्रकार विवाहहोमाभिमानी अर्यमा नामक देवको दम्पतीको प्राप्त करावें और प्राणियों में सूर्य जैसे अपनी किरणोंको प्रकाशके लिये संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार महर्षि वधूवरोंको संयुक्त करें। और हे बृहस्पति देव! आप भी संग्राममें योधा जैसे व्यापक अश्वोंको युक्त करते हैं, इसी प्रकार वधू और वरको संयुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

साधुऽअर्याः । अतिथिनीः । इषिराः । स्पार्हाः । सुऽवर्णाः । अनवद्यऽरूपाः ।
बृहस्पतिः । पर्वतेभ्यः । विऽतूर्य । निः । गाः । ऊपे । यवम्ऽइव । स्थिविऽभ्यः ॥ ३ ॥

साध्वर्याः साध्वभिगन्तव्या अतिथिनीः अतिथितर्पका अतनशीला वा इषिराः एषणीयाः स्पार्हाः सर्वैः स्पृहणीयाः सुवर्णाः शोभनशुक्लादिवर्णोपेता अनवद्यरूपाः अनिन्दितरूपाः प्रशस्तरूपाः। ⊛ "अवद्यपण्य०" इत्यादिना गर्ह्यार्थे अवद्यशब्दो निपातितः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ⊛। एवंलक्षणा गाः बृहस्पतिर्देवः पर्व-

तेभ्यः बलसंबन्धिभिरसुरैः पिहितेभ्यः पर्वतेभ्यः सकाशाद् वितूर्य निर्गमय्य निरूपे निर्वपति निष्कृष्य प्रयच्छति स्तोतृभ्यः । तत्र दृष्टान्तः । यवमिव स्थिविभ्यः । स्थिवयः स्थिरा यवकाण्डाः । तेभ्यः सकाशाद् यथा यवं निष्कृष्य वपति तद्वत् । यद्वा स्थिवयः कुसूलाः । तेभ्यः सकाशाद् यवमिव ॥

जैसे कोठियोंमेंसे यवोंको निकालते हैं इसी प्रकार बृहस्पतिदेव स्तुति करने वालोंके लिये, साधुओंके योग्य, अतिथियोंको तृप्त करने वालीं, अभिलाषा करने योग्य, सबसे स्पृहणीय, शुक्ल आदि शोभन वर्णसे सम्पन्न अनिन्दित रूप वाली बल नामक असुरोंके द्वारा छिपाई हुई गौओंको पर्वतोंसे निकाल कर प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥

आऽप्रुषायन् । मधुना । ऋतस्य । योनिम् । अवऽक्षिपन् । अर्कः । उल्काम्ऽइव । द्योः ।

बृहस्पतिः । उत्ऽहरन् । अश्मनः । गाः । भूम्याः । उद्नाऽइव ।

वि । त्वचम् । बिभेद ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्देवः मधुना । मधु इति उदकनाम । उदकेन आप्रुषायन् भूमिं सर्वतः सिञ्चन् । ® प्रष प्लुष स्नेहनसेचनपूरणेषु ।

व्यत्ययेन विकरणस्य शायजादेशः । चित्स्वरः ❀ । ऋतस्य योनिम् उदकस्य कारणभूतं मेघम् । यद्वा ऋतस्य योनिरित्युदकनाम । मेघम् उदकं वा । ❀ मधुन ऋतस्येत्यत्र संहितायाम् "ऋत्यकः" इत्यत्र हृस्व इत्यनुवर्तनात् ह्रस्वत्वम् ❀ । द्यो द्युलोकसकाशाद् अवक्षिपन् अवाङ्मुखं प्रेरयन् । तत्र दृष्टान्तः । अर्कः आदित्यः द्योः सकाशाद् उल्कामिव तां यथा अवक्षिपति तद्वत् । किं च स बृहस्पतिः अश्मनः मेघसकाशाद् गा उदकानि उद्धरन् च्यावयन् । अथ वा अश्मनः पणिभिः विहितात् पर्वताद् तदुद्वारेण गाः तैरपहृत्य स्थापिता उद्धरन् अपगमयन् उद्ने उदकेनेव तेन यथा भूम्यास्त्वचं विभिनत्ति उच्छूनां करोति एवं भूम्यास्त्वचं गोखुराग्रैः वि बिभेद विदारितवान् । सर्वत्र गाः समचारयद् इत्यर्थः ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव द्युलोकसे उल्काको अधोमुखी करके गिराते हैं, इसी प्रकार बृहस्पतिदेव जलसे भूमिको सींचते हुए मेघको नीचेकी ओर मुख वाला करके प्रेरित करते हैं, और वह बृहस्पति देव पणि नामक असुरोंके द्वारा पर्वतमें छिपाई हुई गौओंको निकाल कर भूमिकी त्वचाको गोखुरोंसे इस प्रकार विभिन्न कर डालते हैं, जिस प्रकार जलसे भूमिको फुला देते हैं अर्थात् सर्वत्र गौओंका सञ्चार कर देते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥

अप । ज्योतिषा । तमः । अन्तरिक्षात् । उद्नः । शीपालम्ऽइव । वातः । आजत् ।

बृहस्पतिः । अनुऽमृश्य । वलस्य । अभ्रम्ऽइव । वातः । आ । चक्रे । आ । गाः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिर्देवः ज्योतिषा दीप्त्या प्रकाशेन अन्तरिक्षात् आकाशाद् गिरिकुहरात् तमः अन्धकारं गवाम् आवरकम् उदाजत् उदगमयत् । तत्र दृष्टान्तः । वातः वायुः उद्नः उदकात् । ॐ "पद्न०" इत्यादिना उदकशब्दस्य उदन्नादेशः। "अल्लोपोनः" इति अकारलोपः । उदात्तनिवृत्तिस्वरः ॐ । तत्सकाशात् शीपालमिव शीपालं शैवालम् । ॐ वर्णव्यत्ययेन ऐकारवकारयोरीकारपकारौ ॐ । तद् यथा उदजति अपगमयति तद्वत् । किं च बृहस्पतिर्देवो वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गवाम् अवस्थानप्रदेशम् अनुमृश्य परामृश्य वातः वायुः अभ्रमिव स यथा मेघम् आकरोति सर्वतः प्रसारयति अन्तरिक्षे एवं गाः बलेन अपहृत्य आच्छन्नाः आ चक्रे सर्वतो व्याप्ता अकरोत् ॥

जिस प्रकार वायु जलसे सिवारको दूर कर देता है, तिसी प्रकार बृहस्पतिदेव गिरिकन्दरासे प्रकाशके द्वारा गौओंको रोकने वाले अन्धकारको हटा देते हैं । और बृहस्पतिदेव वल नामक असुरके गोस्थानको विचार कर, वायुके मेघको छितरा देनेकी समान बलके द्वारा रोकी हुई गौओंको चारों ओर फैला देते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।

दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

यदा । वलस्य । पीयतः । जसुम् । भेत् । बृहस्पतिः । अग्नितपःऽभिः । अर्कैः ।

दत्ऽभिः । न । जिह्वा । परिऽविष्टम् । आदत् । आविः । निऽधीन् । अकृणोत् । उस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिर्देवो यदा यस्मिन् काले वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य पीयतः । हिंसाकर्मैतत् । हिंसकस्य तस्य जसुम् हिंसासाधनम् आयुधं भेत् अभेद् अभिनत् । ⊛ भिदिर् विदारणे । लेट् । लघूपधगुणः । "इतश्च लोपः०" संयोगान्तलोपश्च । छान्दसत्वाद् अडभावः ⊛ । कैः साधनैरित्युच्यते । अग्नितपोभिः अग्निवत्तापकैः अर्कैः दीप्तैः स्वरश्मिभिः मन्त्रैर्वा । तदा दद्भिः दन्तैः परिविष्टम् परितः खादितं मण्टकादिलक्षणम् अन्नं जिह्वा यथा अत्ति तद्वद् वलनामानम् असुरम् आदत् अभक्षयत् । ततश्च उस्रियाणाम् गवां निधीन् आविरकृणोत् स्पष्टान् अकरोत् ॥

बृहस्पति देवने जिस समय वल नामक असुरके हिंसक आयुध को अग्निकी समान संतप्त करने वाले मन्त्रोंसे तोड़ डाला, उस समय दाँतोंसे तोड़े हुए अन्नको जिस प्रकार जिह्वा खाती है तिस प्रकार वह वल नामक असुरको खागए, फिर उन्होंने दूध देने वाली उसरिया गौओंकी निधियोंको प्रकट किया ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिः । अमत । हि । त्यत् । आसाम् । नाम । स्वरीणाम् । सदने । गुहा । यत् ।
आण्डाऽइव । भित्त्वा । शकुनस्य । गर्भम् । उत् । उस्रियाः । पर्वतस्य । त्मना । आजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिर्देवः गुहा गुहायां सदने सीदन्त्यत्रेति सदनं स्थानम्। तस्मिन् स्वरीणाम् शब्दायमानानाम् आसाम् गवां त्यत् तत् प्रसिद्धं नामधेयं यत् यदा अमत हि ज्ञातवान्। ❁ मनु अवबोधने। लुङि "तनादिभ्यस्तथासोः" इति सिचो लुक्। "हि च" इति निघातप्रतिषेधः। अडागमस्वरः ❁। तदानीं पर्वतस्य गिरेरन्तः स्थिता उस्रियाः। उस्रम् उत्स्रावणं क्षीरस्यन्दनम् अर्हन्तीत्युस्रिया गावः। ता त्मना आत्मनैव सहायनैरपेक्ष्येणैव। ❁ "मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" इति आदेराकारस्य लोपः ❁। उदाजत् पर्वत विभेदनेन उद्गमयत्। तत्र दृष्टान्तः। आण्डेव भित्त्वेति। शकुनस्य पक्षिणो मयूरादेः आण्डानि भित्त्वा तदन्तः स्थितं गर्भम् उद्गमयति तद्वत् ॥

बृहस्पतिदेवने गुहास्थानमें शब्द करती हुई इन गौओंके नाम को जब जाना, तब इन पर्वतके भीतर स्थित गौओंको अपने आप पर्वत भेद करके इस प्रकार निकाल लिया जिस प्रकार मयूर आदि पक्षियोंके अण्डोंको भेदकर उसके भीतर स्थित गर्भ को प्रकट किया जाता है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनिं क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य

अश्ना । अपिऽनद्धम् । मधु । परि । अपश्यत् । मत्स्यम् । न । दीने । उदनि । क्षियन्तम् ।
निः । तत् । जभार । चमसम् । न । वृक्षात् । बृहस्पतिः । विऽरवेण । विऽकृत्य ॥ ८ ॥

बृहस्पतिर्देवः अश्ना अश्मना पर्वतेन अपिनद्धं मधु मधुवद्भोगयोग्यं गोसमूहं पर्यपश्यत् अद्राक्षीत् । आवरणभूतपर्वतापसारणेनेति शेषः । तत्र दृष्टान्तः । दीने परिक्षीणे अल्पे उदनि उदके । ❀ उदकशब्दस्य उदन्नादेशे "विभाषा--ङिश्योः" इत्यल्लोपाभावपक्षे रूपम् ❀ । तस्मिन् क्षियन्तम् निवसन्तं मत्स्यं न मत्स्यमिव । तं यथा जनः पश्यति तद्वत् । तत् गोलक्षणं मधु चमसं न वृक्षात् । चम्यते भक्ष्यते अनेनेति चमसः सोमपात्रम् । चमसं यथा तदुपादानभूतान्निष्कृष्य हरति तद्वत् । विरवेण विविधशब्देन हम्भालक्षणेन लिङ्गेन ज्ञात्वा विकृत्य बलाख्यम् असुरं गोरूपधारिणं छित्त्वा निर्जभार बिलान्निर्जहार ॥

जिस प्रकार जलके सूखने पर अल्प जलमें मनुष्य मछलीको देख लेता है, इसी प्रकार बृहस्पतिदेवने, आवरणभूत पर्वतको हटा कर पत्थरोंसे ढके हुए मधुकी समान भोगनेयोग्य गोसमूह को देखा और जैसे चमस नामक भोजनपात्रको उपादानभूत

वृत्तसे निकालते हैं तिम प्रकार हंभा आदि विविध लिंगोंसे गौओं को जान कर गोरूपधारी बल नामक असुरको मार कर गौओं को बिलमे निकाल डाला ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सोपामविन्दत् स स्व१ः सो अग्निं सो अर्केण वि ववाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार९

सः । उपाम् । अविन्दत् । सः । स्व१रिति स्वः । सः । अग्निम् । सः । अर्केण । वि । ववाधे । तमांसि ।
बृहस्पतिः । गोऽवपुषः । वलस्य । निः । मज्जानम् । न । पर्वणः । जभार ॥ ९ ॥

स पूर्वोक्तो बृहस्पतिः पर्वतकुहरे अन्धकारावस्थितानां गवां दर्शनाय उपाम् उपासम् उपमम् । ॐ छान्दसः सकारलोपः ॐ। अविन्दत् अलभत । स एव बृहस्पतिः स्वः । स्वरादित्यः । आदित्य च प्रकाशाय अविन्दत् । एवम् असौ अग्निं च अविन्दत् । लब्ध्वा च अर्केण तेजसा तमांसि वि ववाधे विशेषेण बाधितवान् । तदनन्तरं गोवपुषः वृषभरूपधारिणो वलस्य असुरस्य हननेन मज्जानं न पर्वणः अस्थ्नः संबन्धिनं मज्जानम् पर्व धातु पर्वणः अस्थिपर्वसकाशाद्व यथा बलाद्व निर्हन्ति तद्वत् गा निर्जभार निष्कृष्य आहृतवान् ॥

इन बृहस्पतिदेवने पर्वतकी गुफामें अन्धकारमें पड़ी हुई गौओं को देखनेके लिये उषाको पाया, और इन ही बृहस्पतिदेवने सूर्य को भी प्रकाशके लिये प्राप्त किया, और अग्निको भी प्राप्त किया।

और प्राप्त करके तेजसे अन्धकारोंको विशेषरूपसे नष्ट कर डाला, तदनन्तर वृषभका रूप धारण करने वाले असुरको नष्ट करके अस्थियोंके जोड़से मज्जा नष्ट करनेकी समान बलपूर्वक गौओंको निकाल लिया ॥ ९ ॥

दशमी ॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः

हिमाऽइव । पर्णा । मुषिता । वनानि । बृहस्पतिना । अकृपयत् । वलः । गाः ।

अननुकृत्यम् । अपुनरिति । चकार । यात् । सूर्यामासा । मिथः । उत्ऽचरातः ॥ १० ॥

बृहस्पतिना देवेन हिमेव पर्णा हिमानि पर्णानीव । यथा हिमानि पर्णानि निःसाराणि कृत्वा मुष्णन्ति एवं वनानि वननीयानि धनानि गोलक्षणानि मुषिता मुषितानि आसन् । स च वलोपि गाः मुषिता अकृपयत् । मायच्छद् इत्यर्थः । किं च स बृहस्पतिः तादृक् कर्म अननुकृत्यम् अन्यैरननुकरणीयम् अन्येन कर्तुम् अशक्यं तथा अपुनः न विद्यते पुनस्तत् कर्म यस्मिन् तद् अपुनः पुनःकरणरहितं च चकार कृतवान् । अन्यकर्तव्यरहितं स्वेनापि पुनः कर्तव्यरहितं चाकरोद् इत्यर्थः । किं तत् कर्मेति उच्यते । यात् । यद् इत्यर्थः । ❀ छान्दसो दीर्घः ❀ । सूर्यामासा । मस्यते परिमीयते स्वकलावृद्धिहानिभ्याम् इति मासश्चन्द्रमाः । मातीति वा मासश्चन्द्रः । सूर्यचन्द्रमसौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे

चः" इति आनङ्। "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्। "सुपां सुलुक्०" इत्यादिना विभक्तेराकारः ॐ। तौ मिथः परस्परम् अहोरात्रयोः उच्चरातः उच्चरतः ऊर्ध्वं गच्छत इति यत् तच्चकार॥

बृहस्पति नामक देवने, हिम जैसे पत्तोंको निःसार करके ग्रहण कर लेता है तिस प्रकार, सेवनीय गोरूप धनको ग्रहण कर लिया था। और वलने भी चुराई हुई गौएँ बृहस्पतिजीको देदीं थीं। तथा बृहस्पति देवने एक और भी ऐसा कर्म किया है, कि-दूसरे उसको नहीं कर सकते और उन्हें भी उसको दूसरी वार नहीं करना पड़ा। वह कर्म यह है, कि-सूर्य और चन्द्रमा दिन और रातको करते हुए ऊपर विचरण करते रहते हैं॥ १०॥

एकादशी॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्याम-पिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः॥ ११॥

अभि। श्यावम्। न। कृशनेभिः। अश्वम्। नक्षत्रेभिः। पितरः। द्याम्। अपिंशन्।
रात्र्याम्। तमः। अदधुः। ज्योतिः। अहन्। बृहस्पतिः। भिनत्। अद्रिम्। विदत्। गाः॥ ११॥

बृहस्पतिर्देवः यदा अद्रिम् गवाम् आच्छादकं गिरिं भिनत् अभिनद् विदारितवान् विदार्य च यदा गाश्च विदत्। ॐ विद्लृ लाभे। लुङि लृदित्वाद् अङ् ॐ। तदा पितरः पालका देवा

इन्द्राद्याः श्यावं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमिव तं यथा लोके कृशनेभिः । कृशनम् इति सुवर्णनाम । कृशनैः सुवर्णमयैराभरणैः पिंशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षात् नाशात् त्रायन्तीति नक्षत्राणि न विद्यते क्षत्रं बलम् एषाम् इति वा नक्षत्राणि ग्रहतारकादीनि । तैः द्याम् द्युलोकम् अपिंशन् अलंचक्रुः । ॐ पिश अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं रात्र्याम् । निशि तमः अन्धकारम् अदधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं तेजः आदित्याख्यम् अदधुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, तिस प्रकार द्युलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने रात्रिमें अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिपाने वाले तेज सूर्यको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अकर्म । नमः । अभ्रियाय । यः । पूर्वीः । अनु । आऽनोनवीति ।
बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । सः । अश्वैः । सः । वीरेभिः । सः । नृऽभिः । नः । वयः । धात् ॥ १२ ॥

अभ्रियाय अभ्रम् अर्हतीति अभ्रियः । ❀ "०अभ्राद् घः" इति घप्रत्ययः ❀ । मेघविदारणेन जलं प्रयच्छते बृहस्पतये इदं नमः नमस्कारोपलक्षितम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अकर्म प्रयम् अकार्ष्म । ❀ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुकि कृते "छन्दस्युभयथा" इति लिङ आर्धधातुकत्वाद् ङित्त्वाभावे गुणः ❀ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीर्ऋचः अनुक्रमेण आनोनवीति अन्यर्थम् आभिमुख्येन प्रणौति साधु स्तुतवान् इति ब्रूते । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः अन्नम् प्रधात् प्रयच्छत्विति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् । स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स बृहस्पतिः वीरेभिः वीरैः पुत्रैरुपेतं वयोधात् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृभिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको विदीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके लिये हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि-जो बृहस्पतिदेव बहुतसी ऋचाओंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि-बड़ी अच्छी स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गौओं सहित अन्न प्रदान करें, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भृत्य आदिसे सम्पन्न अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६३३) ।

'अच्छा म इन्द्रम्' इति सूक्तमपि तत्रैव उक्थ्ये प्रशास्त्रे विनियुक्तम् । तत्र "बृहस्पतिर्नः परि पातु" [११] इत्येषा परिधानीया । "बृहस्पते युवमिन्द्रश्च" [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

"अच्छा म इन्द्रम्" यह सूक्त भी तहाँ ही उक्थ्यमें प्रशास्त्र में विनियुक्त होता है । तहाँ 'बृहस्पतिर्नः परि पातु" (११) यह परिधानीया है । "बृहस्पते युवमिन्द्रश्च" (१२) यह शस्त्रयाज्या है

इन्द्राद्याः श्यावं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमिव तं यथा लोके कृशनेभिः । कृशनम् इति सुवर्णनाम । कृशनैः सुवर्णमयैराभरणैः पिंशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षात् नाशात् त्रायन्तीति नक्षत्राणि न विद्यते क्षत्रं बलम् एषाम् इति वा नक्षत्राणि ग्रहतारकादीनि । तैः द्याम् द्युलोकम् अपिंशन् अलंचक्रुः । ❀ पिश अवयवे । रुधादिः ❀ । एवं रात्र्याम् । निशि तमः अन्धकारम् आदधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं तेजः आदित्याख्यम् अदधुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, तिस प्रकार द्युलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने रात्रिमें अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिपाने वाले तेज सूर्यको स्थापित किया ॥ ११ ॥

॥ द्वादशी ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अकर्म । नमः । अभ्रियाय । यः । पूर्वीः । अनु । आऽनोनवीति ।
बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । सः । अश्वैः । सः । वीरेभिः । सः । नृऽभिः । नः । वयः । धात् ॥ १२ ॥

अभिगाय अभम् अर्हनीनि अभिप्रयः । ⊛ "०अभ्याद् यः" इति यमत्ययः ⊛ । मेघविदारणेन जलं मयच्छते बृहस्पतये इदं नमः नमस्कारोपलक्षितम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अर्पयाम् अकार्ष्म । ⊛ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुकि कृते "छन्दस्युभयथा" इति तिङ आर्धधातुकत्वाद् ङित्त्वाभावे गुणः ⊛ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीर्ऋचः अनुक्रमेण आनोननीनि अत्यर्थम् आभिमुख्येन प्रणौति साधु स्तुतवान् इति मन्ये । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः अन्नम् अधात् प्रयच्छत्विति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् । स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स बृहस्पतिः वीरेभिः वीरैः पुत्रैरुपेतं वयोधात् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृभिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको विदीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके लिये हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि—जो बृहस्पतिदेव बहुतसी ऋचाओंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि—बड़ी अच्छी स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गौओं सहित अन्न प्रदान करें, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भृत्य आदिसे सम्पन्न अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६२४) ।

'अच्छा म इन्द्रम्" इति सूक्तमपि तत्रैव उक्थ्ये ब्रह्मशस्त्रे विनियुक्तम् । तत्र "बृहस्पतिर्नः परि पातु" [११] इत्येषा परिधानीया । "बृहस्पते युवमिन्द्रश्च" [१२] इत्येषा शस्यायाज्या ॥

"अच्छा म इन्द्रम्" यह सूक्त भी तहाँ ही उक्थ्यमें ब्रह्मशस्त्र में विनियुक्त होता है । तहाँ 'बृहस्पतिर्नः परि पातु" (११) यह परिधानीया है । "बृहस्पते युवमिन्द्रश्च" (१२) यह शस्त्रयाज्या है

तत्र प्रथमा ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥

अच्छ । मे । इन्द्रम् । मतयः । स्वःऽविदः । सध्रीचीः । विश्वाः उशतीः । अनूषत ।
परि । स्वजन्ते । जनयः । यथा । पतिम् । मर्यम् । न । शुन्ध्युम् । मघऽवानम् । ऊतये ॥ १ ॥

इन्द्रं देवम् अच्छ अभिमुखीकृत्य मे मम सुहस्त्यस्य घोषेयस्य मतयः स्तुतयः अनूषत स्तुवन्ति । ❀ णु स्तुतौ । च्लेः सिच् । "लिङ्सिचावात्मनेपदेषु" इति किद्वद्भावाद् गुणाभावः ❀ । मतयो विशेष्यन्ते । स्वर्विदः स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयित्र्यः सध्रीचीः सहाञ्चनाः परस्परं संगताः । ❀ अञ्चु गतिपूजनयोः । "ऋत्विग्दधृक्स्रग्०", इत्यादिना नकारलोपः । सहस्य सध्र्यादेशः । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । भसंज्ञायाम् "अचः" इत्यकारलोपः ❀ । विश्वाः व्याप्ता उशतीः इन्द्रं कामयमानाः । आदरातिशयद्योतनाय उक्तमेवार्थं सदृष्टान्तं पुनराह परि ष्वजन्त इति । जनयः जनयन्ति उत्पादयन्ति अपत्यम् इति जनयो योषितः । ता यथा पतिं परि ष्वजन्ते दृढम् आलिङ्गन्ति । किं च शुन्ध्युम् शोधकं मर्यं न मर्त्यमिव यथा पित्रादिकं दूराद् आगतं पुत्रादयो मघवानम् ऊतये स्वरक्षणाय परिष्वजन्ते तद्वत्

मघवानम् मघवन्तं धनवन्तम् इन्द्रम् ऊतये रक्षणाय मे मतयः परिष्वजन्ते । निर्धनस्य रक्षाकरणायोगाद् मघवन्तम् इत्युक्तम् ॥

इन्द्रदेवको लक्ष्यमें रख कर शुभ्र सुन्दर हाथ और घोष वाले की स्तुतियें स्तुति करती हैं । यह स्तुतियें स्वर्गकी प्राप्ति कराने वालीं हैं,परस्पर मिली हुई हैं,व्याप्त हैं और इन्द्रकी कामना करती रहती हैं । जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करने वालीं स्त्रियें पतिका दृढ़तासे आलिंगन करती हैं और जिस प्रकार शोधक पिता आदिको दूरसे आते देख कर पुत्र आदि बांधव अपनी रक्षाके लिये उससे लिपट जाते हैं । इसी प्रकार धनवान् इन्द्रको रक्षाके लिये मेरी स्तुतियें आलिंगन करती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घा त्वद्रिगपं वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेवपानमस्तु ते ॥ २ ॥

न । घ । त्वद्रिक् । अप । वेति । मे । मनः । त्वे इति । इत् । कामम् । पुरुऽहूत । शिश्रय ।
राजाऽइव । दस्म । नि । सदः । अधि । बर्हिषि । अस्मिन् । सु । सोमे । अवऽपानम् । अस्तु । ते ॥ २ ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र त्वद्रिक् त्वां गच्छत् मे मम मनः न घ न खलु अप वेति अपगच्छति कदाचिदपि त्वत्तो नापसरति किं तु त्वे इत् त्वय्येव कामम् अभिलाषं शिश्रय श्रयनि आश्र-

यति । ❀ श्रिञ् सेवायाम् । छान्दसे लिटि "णलुत्तमो वा" इति वृद्ध्यभावे रूपम् ❀ । यस्माद् एवं तस्मात् हे दस्म शत्रूणाम् उपक्षपयितः दर्शनीय वा इन्द्र त्वं राजेव यथा राजा सिंहासने निषीदति । एवम् अधि बर्हिषि । ❀ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀। आस्तीर्णे दर्भे नि षदः निषीद । निषीदतेऽत्र को लाभ इति उच्यते । अस्मिन् सोमे सोमयागे संस्कृते वा सोमे ते तव अवपानम् अवनतं पानम् अस्तु भवतु ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आपको प्राप्त होता हुआ मेरा मन, कभी भी आपसे अलग नहीं होता है, किंतु आपमें ही अभिलाषा रखता है । इस कारण हे शत्रुओंका संहार करने वाले इन्द्र ! जिस प्रकार राजा सिंहासन पर बैठता है, तिस प्रकार कुशासन पर बैठिये । इस संस्कृतसोमयागमें आपका अवपान होवे ॥२॥

तृतीया ॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

विषुऽवृत् । इन्द्रः । अमतेः । उत । क्षुधः । सः । इत् । रायः । मघऽवा । वस्वः । ईशते ।

तस्य । इत् । इमे । प्रवणे । सप्त । सिन्धवः । वयः । वर्धन्ति । वृषभस्य । शुष्मिणः ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः अस्माकम् अमतेः दारिद्र्यस्य शून्याया मतेर्वा

वर्ततेः विपूवृत् विष्वग् वर्तयिता मच्यावयिता भवतु । ❀ विपु-शब्दोपपदाद् वर्ततेः क्विप् ❀ । उत अपि च इन्द्रः क्षुधः बुभुक्षाया विपूवृद् भवतु । सत्स्वन्येषु देवेषु इन्द्र एव कथं प्रार्थ्यत इति तत्राह । स इत् स एव मघवा धनवान् इन्द्रः रायः दानार्हस्य वस्वः वसुनो वासकस्य धनस्य ईशते ईष्टे स्वामी भवति । ❀ "तिङां तिङो भवन्ति" इत्येकवचनस्थाने बहुवचनम् ❀ । किं च वृषभस्य वर्षकस्य शुष्मिणः बलवतः तस्येत् तस्यैवेन्द्रस्य संबन्धिनः इमे प्रसिद्धाः सप्त सिन्धवः स्यन्दनशीलाः "इमं मे गङ्गे" [ऋ० १०. ७५. ५] इतिमन्त्रोक्ता गङ्गाद्याः सप्त सिन्धवः प्रवणे अवनते देशे वयो वर्धन्ति अन्नं समर्धयन्ति । ❀ वृधु वृद्धौ । णिच् । "छन्दस्युभयथा" इत्यार्धधातुकसंज्ञायां णिलोपः ❀ ॥

इन्द्रदेव हमारी दरिद्रताको भली भाँति नष्ट करने वाले बनें, और इन्द्रदेव हमारी भूखको दूर करें (और देवताओंके होने पर भी इन्द्रदेवकी ही प्रार्थना क्यों की जाती है तो कहते हैं, कि–)यह धनी इन्द्र ही वासक धनके स्वामी हैं । औरइन वर्षक बली इन्द्रदेवकी ही गंगा आदि सात नदियें अवनत स्थानमें अन्नको बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

वयः । न । वृक्षम् । सुऽपलाशम् । आ । असदन् । सोमासः । इन्द्रम् । मन्दिनः । चमूऽसदः ।

प्र । एषाम् । अनीकम् । शवसा । दविद्युतत् । विदत् । स्वः ।
मनवे । ज्योतिः । आर्यम् ॥ ४ ॥

वयो न वृक्षम् यथा वयः पक्षिणः सुपलाशम् शोभनपर्णोपेतं पल्लवितं वृक्षम् आसीदन्ति तद्वद् मन्दिनः मदकराः चमूषदः चम्वोरधिषवणफलकयोरवस्थिताः सोमासः सोमा इन्द्रम् आसदन् । एषां सोमानाम् अनीकम् समूहो मुखं वा शवसा दविद्युतत् द्योतते । ❀ "दाधर्ति दर्धर्ति" इत्यादिना यङ्लुगन्ताद् द्युतेः शतरि अभ्यासस्य संप्रसारणाभावः अभ्यासस्य अत्वं विगागमश्च निपात्यते । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः ❀ । किं च तद् अनीकं स्वः आदित्याख्यम् आर्यम् अर्यम् अरणीयम् अभिगमनीयं ज्योतिः मनवे मनुष्याय मनुष्याणां प्रकाशाय विदत् अविदत् प्रायच्छद् इत्यर्थः ॥

जैसे पक्षी सुन्दर पत्तों वाले पल्लवित वृक्ष पर बैठते हैं, इसी प्रकार मद करने वाले अधिषवणके फलकों पर स्थित सोम इन्द्र का आश्रय लेते हैं । इन सोमोंका मुख दमकता रहता है । उस मुखने आदित्य नाम वाली सेवनीय ज्योतिको मनुष्योंके प्रकाश के लिये दिया है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥ ५ ॥

कृतम् । न । श्वऽघ्नी । वि । चिनोति । देवने । सम्ऽवर्गम् ।
यत् । मघऽवा । सूर्यम् । जयत् ।

न । तत् । ते । अन्यः । अनु । वीर्यम् । शकत् । न । पुराणः ।
मघऽवन् । न । उत । नूतनः ॥ ५ ॥

कृतं न श्वघ्नी । वर्णव्यत्ययेन सकारस्य शकारः । स्वम् आत्मानं हन्त्यनेनेति श्वघ्नं द्यूतम् । तद् अस्यास्तीति श्वघ्नी । यद्वा स्वम् आत्मानं हतवान् श्वघ्नी कितवः । स यथा देवने द्यूते कृतम् कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं विचिनोति विचयं करोति एवम् इन्द्रम् अस्मदीया स्तुतिः देवने क्रीडने प्रमोदे वा निमित्तभूते सति वि चिनोति । ⊛ श्वघ्नीति । स्वशब्दोपपदात् हन्तेः "घञर्थे कविधानम्" इति कप्रत्ययः । "अत इनिठनौ" इति इनिप्रत्ययः । यद्वा "बहुलं छन्दसि" इति वचनाद् ब्रह्मादिव्यतिरिक्तेष्युपपदे हन्तेः क्विप् । "ऋन्नेभ्यः०" इति ङीप् । "अल्लोपोनः" इत्यकारलोपः । "हो हन्तेः०" इति घत्वम् । व्यत्ययेन स्त्रीलिङ्गता ⊛ । यत् यस्मात् कारणाद्ध मघवा धनवान् इन्द्रः संवर्गं रसस्य तमसो वा संवर्जकं सूर्यं देवं जयत् अजयत् । सकलजगत्प्रकाशनाय दिवि स्थापितवान् इत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः । हे मघवन् इन्द्र ते तव तत् उक्तलक्षणं वीर्यम् अन्यस्त्वत्तोऽपरो नानु शकत् अनुकर्तुं न शक्नोति । अन्यमेव विशिनष्टि । त्वत्तोऽन्यः पुराणः पूर्वकालीनः नानु शकत् । उत अपि च नूतनः आधुनिकोपि नानु शक्त् ॥

जैसे जुआरी जुएमें लाभ देनेवाले कृत नामक फाँसेका वरण करता है, इसी प्रकार हमारी स्तुति प्रमोदके लिये इन्द्रका वरण करती है, क्योंकि– इन्द्रदेवने अंधकारको दूर करनेवाले संवर्जक सूर्यको सकल जगत्को प्रकाशित करनेके लिये द्युलोकमें स्थापित कर दिया है । हे इन्द्रदेव ! आपके ऐसे वीर्यकी और कोई अनुकृति (नकल) नहीं कर सकेगा, और आपसे प्राचीन भी कोई

ऐसा काम नहीं कर सका था और आज कलका भी कोई नहीं कर सका है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥

विशम्ऽविशम् । मघऽवा । परि । अशायत । जनानाम् । धेनाः । अवऽचाकशत् । वृषा ।
यस्य । अह । शक्रः । सवनेषु । रण्यति । सः । तीव्रैः । सोमैः । सहते । पृतन्यतः ॥ ६ ॥

वृषा कामानां वर्षिता मघवा धनवान् । अभिमतप्रदानं धनवत एव युज्यत इत्यस्य प्रकृष्टधनवत्त्वाभिधानाय अत्र मघवेत्युक्तम् । उक्तगुणक इन्द्रो विशंविशम् तंतं यजमानं पर्यशायत परिशेते । ये ये यष्टारः सन्ति तांस्तान् सर्वानपि स्वविभूत्या समकाल एव प्राप्तवान् इत्यर्थः । किं च जनानाम् स्तोतॄणां धेनाः प्रीणयित्रीः स्तुतीरेककाल एव अवचाकशत् । ❁पश्यतिकर्मैतत् ❁। अभिपश्यति । स्तोत्रं शृणोतीत्यर्थः । एवं शक्रः शक्त इन्द्रो यस्य यजमानस्य सवनेषु त्रिष्वपि रण्यति रमते । ❁ रणतिः क्रीडाकर्मा । व्यत्ययेन श्यन् । यच्छब्दयोगाद् अनिघातः ❁ । स यजमानः तीव्रैः अत्यन्तमदकरैः सोमैः सोमरसैः । ❁ सवनत्रयापेक्षया बहुवचनम् ❁ । सोमपानेन पृतन्यतः संग्रामम् इच्छतः शत्रून् सहते अभिभवति ॥

कामनाओंकी वर्षा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव जो २ पूजा करने वाले हैं उन सबके पास अपनी विभूतिसे एक समयमें ही प्राप्त होजाते हैं। और स्तोता मनुष्योंकी प्रसन्न करनेवाली स्तुतियों को एक समयमें ही सुनते हैं ऐसे समर्थ इन्द्रदेव जिस यजमानके तीनों सवनोंमें रमण करते हैं वह यजमान बड़ा मद करने वाले सोमपानके प्रभाववश सेना लेकर संग्राम करना चाहने वाले शत्रुओंको दबा देता है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥

आपः । न । सिन्धुम् । अभि । यत् । सम्ऽअक्षरन् । सोमासः । इन्द्रम् । कुल्याःऽइव । ह्रदम् ।
वर्धन्ति । विप्राः । महः । अस्य । सदने । यवम् । न । वृष्टिः । दिव्येन । दानुना ॥ ७ ॥

यत् यदा सोमासः सोमाः आपो न सिन्धुम् आपः सिन्धुम् समुद्रमिव कुल्याः अल्पाः सरितश्च ह्रदमिव इन्द्रं देवं प्रति अभि समक्षरन् अभिक्षरन्ति तदा विप्राः मेधाविनः स्तोतारः सदने यज्ञगृहे अस्य इन्द्रस्य महः माहात्म्यं वर्धन्ति वर्धयन्ति । स्तुतिभिरिति शेषः। अभिवर्धने दृष्टान्तः।यवं न वृष्टिरिति । वृष्टिः। वर्षतीति वृष्टिर्मेघः । स यथा दिव्येन दिवि भवेन दानुना उदकदानेन वृष्टिरेव वा दिव्येन स्वकीयेन दानेन यवं न यवमिव तं यथा वर्धयति तद्वत्

जब सोम, जलके सिंधुमें प्रवेश करनेकी समान, छोटी २ नदियोंके सरोवरमें प्रवेश करनेकी समान, इंद्रदेवकी ओर अभिसरण करते हैं, तब स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुष यज्ञगृहमें इन इंद्रदेवके माहात्म्यको स्तुतियोंसे बढ़ाते हैं। जैसे मेघ दिव्य जलदान से यवको बढ़ाते हैं इसी प्रकार स्तोता स्तुतियोंसे इंद्रको बढ़ाते हैं७

अष्टमी ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

वृषा । न । क्रुद्धः । पतयत् । रजःऽसु । आ । यः । अर्यऽपत्नीः । अकृणोत् । इमाः । अपः ।
सः । सुन्वते । मघऽवा । जीरऽदानवे । अविन्दत् । ज्योतिः । मनवे । हविष्मते ॥ ८ ॥

य इन्द्रः अर्यपत्नीः अर्येण अभिगन्त्रा आदित्येन पालिता इमाः समिद्धा अपः उदकानि अकृणोत् करोति भूमिष्ठानि करोति स इन्द्रो वृषा न क्रुद्धः यथा क्रुद्धः क्रोधेन अन्धीभूतो वृषा वृषभः सर्वतः पतति गच्छति स्वप्रतिमल्लं वृषभं पराभवितुम् एवं स इन्द्रो रजःसु लोकेषु आ सर्वतः पतयत् पतति गच्छति । मेघं दारयितुम् इति शेषः । अनन्तरं मघवा धनवान् इन्द्रः सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते जीरदानवे क्षिप्रदानाय शीघ्रं हविः प्रयच्छते हविष्मते हविर्भिः सोमादिभिस्तद्वते मनवे मननवते यजमानाय ज्योतिः प्रकाशकं तेजः अविन्दत् अलभत प्रापयत् प्रयच्छति ॥

—जो इंद्रदेव मूर्धसे पालित इन जलोंको भूमिष्ठ करते हैं, वह इन्द्रदेव क्रोधमें भरा हुआ, बैल जैसे अपने प्रतिभेट मल्ल का पराभव करनेके लिये सर्वतो भावसे जाता है; इसी प्रकार लोकों पर मेघको विदीर्ण करनेके लिये पूर्णरीतिसे गमन करते हैं, इसके अतिरिक्त वह धनी इंद्र सोमाभिषव करने वाले; श्रीव्रतासे हवि प्रदान करने वाले हविष्मान् यजमानके लिये तेज प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

॥ नवमी ॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥

उत् । जायताम् । परशुः । ज्योतिषा । सह । भूयाः । ऋतस्य । सुऽदुघा । पुराणऽवत् ।
वि । रोचताम् । अरुषः । भानुना । शुचिः । स्वः । न । शुक्रम् । शुशुचीत । सत्ऽपतिः ॥ ९ ॥

परशुः इन्द्रस्य वज्रः ज्योतिषा स्वतेजसा सह उज्जायताम् ऊर्ध्वं प्रादुर्भवतु मेघविदारणार्थम् । किं च ऋतस्य उदकस्य संबन्धिनी सुदुघा सुष्ठु दोहयित्री माध्यमिका वाक्—[❀ "दुहः कब्घश्च" इति कप् । हकारस्य घकारः ❀] पुराणवत् पूर्वं यथा इदानीमपि एवं भूयाः भूयात् । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । किं च अरुषः आरोचमानो भानुना स्वतेजसा शुचिः प्रज्वलन् वि रोच-

तीम् प्रकाशतीम् । उक्तमेवार्थं सदृष्टान्तं पुनराह । स्वर्न शुक्रम् स्वः आदित्यः स यथा शुक्रम् दीप्तं तेजः प्रकाशयति । स्वेनसा स्वयं दीप्यत इत्यर्थः । एवं सत्पतिः सतां पालक इन्द्रः शुशुचीत अत्यन्तं दीप्यताम् । ॐ शुच शोके । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । लिङि "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । सीयुडादि ॐ ॥

इंद्रदेवको वज्र मेघका विदारण करनेके लिये अपने तेजके साथ ऊपरको प्रकट होवे । और जलको दुहने वाली माध्यमिका वाणी पहिलेकी समान इस समय भी प्रकट होवे । और अपने तेजसे दमकती हुई प्रकाशित होवे और जैसे दमकता हुआ सूर्य अपने तेजसे अपने आप ही दमकता है, इसी प्रकार सज्जनोंके पालक इंद्रदेव परम प्रदीप्त होवें ॥ ६ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम

गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःऽएवाम् । यवेन । क्षुधम् । पुरुऽहूत । विश्वाम् ।

वयम् । राजऽभिः । प्रथमाः । धनानि । अस्माकेन । वृजनेन । जयेम ॥ १० ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र वयं धीपेयाः सुहस्त्या यजमानाः स्त्वयानुगृहीताः सन्तो गोभिः त्वया दत्ताभिः दुरेवाम् दुर्गमनाम् अमतिम् दारिद्र्यं तरेम निस्तरेम । किं च यवेन उपलक्षणम् एतत् त्वया दत्तैर्व्रीह्यादिभिः विश्वाम् सर्वां पुत्रभृत्यादिविषयां क्षुधम् अशनेच्छाम् तरेमेति शेषः । किं च प्रथमाः

तवानुग्रहेण समानानां मध्ये मुख्यभूता वयं राजभिः क्षत्रियैर्भूपालैर्धनानि बहूनि । लभेमहीति शेषः– एषु संपन्नेषु सत्सु अस्माकेन अस्मत्सम्बन्धिना । ❀ संबन्धार्थे अणि विहिते "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ" इति अस्माकादेशः । वृद्ध्यभावश्छान्दसः ❀ । वृजनेन बलेन जयेम । शत्रून् इति शेषः ॥ हे पुरुहूत इन्द्र ! हम यजमान आपका अनुग्रह पाते हुए आप की दी हुई गौओंसे दुर्दशामें डालने वाले दरिद्रके पार जावें । और आपके दिये हुए जौ धान आदिसे पुत्र भृत्य आदिकी भूख को दूर कर सकें । और आपके अनुग्रहसे समान पुरुषोंमें मुख्य हुए हम राजाओंसे बहुतसे धनको प्राप्त करें, इन सबके होनेपर हम अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्ऽतरस्मात् । अधरात् । अघऽयोः । इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः । वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चिमप्रदेशाद् आगच्छतः अघायोः अघं पापं परेषाम् इच्छतो हिंसकात् । ❀ "छन्दसि परेच्छायाम्" इति क्यच्प्रत्ययः । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः । "अश्वाघस्यात्" इति आत्त्वम् । प्रत्ययस्वरः ❀ । तस्माद् नः अस्मान् परि पातु

सर्वतो रक्षतु । उत अपि च उत्तरस्माद् अधराच्च देशाद् आगच्छतः अघायोः नः अस्मान् परि पातु । एवम् इन्द्रोपि देवः पुरस्ताद् आगच्छतः अघायोः परि पातु । मध्यतः मध्यमाद् देशादप्यागच्छतः परि पातु । एवं सर्वतो रक्षां कृत्वा सखा मित्रभूत इन्द्रः सखिभ्यः सखिभूतेभ्यः अस्मभ्यं वरिवः । धननामैतत् । धनं कृणोतु करोतु प्रयच्छतु । हविःप्रदानवरप्रदानाभ्यां परस्परं सखिभावो द्रष्टव्यः ॥

बृहस्पतिदेव हमको, दूसरेके लिये हिंसारूपी पापको चाहने वाले हिंसक-अघायुसे सर्वत्र बचावें। और उत्तर तथा अधर दिशा से आते हुए अघायुसे हमको बचावें। इंद्रदेव सामनेसे आतेहुए मध्यदेशसे आते हुए हिंसकसे भी हमारी रक्षा करें। इस प्रकार चारों ओरसे रक्षा करके मित्रभूत इन्द्र हम मित्र बने हुओंको धन प्रदान करें। [यहाँ हविः प्रदान और वरदानसे मित्रभाव समझना चाहिये] ॥ ११ ॥

द्वादशी

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

बृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशाथे इति । उत । पार्थिवस्य ।

धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

हे बृहस्पते त्वं च इन्द्रश्च युवम् युवाम् । ※ "प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्" इति विहितम् आत्वं छन्दसि न भवति ※ ।

दिव्यस्य दिवि भवस्य वस्वः वसुनः ईशाथे स्वामिनौ भवथः। उत अपि च पार्थिवस्य पृथिवीसंबन्धिनो वस्व ईशाथे। यस्माद् एवं तस्मात् स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कीरये स्तोत्रे मह्यम्। चिद् इति पूरणः। रयिम् धनं धत्तम् प्रयच्छतम्। गतम् अन्यत् ॥

द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इति विंशे काण्डे द्वितीयोनुवाकः ॥

हे बृहस्पते! आप और इन्द्रदेव! दोनों द्युलोकके धनके स्वामी हो और पृथिवीलोकके धनके भी स्वामी हो, इस कारण मुझ स्तुति करने वालेको धन प्रदान करो और आप अपनी रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६३३)
बीसवें काण्डमें द्वितीय अनुवाक समाप्त

तृतीयेनुवाके त्रयोदश सूक्तानि। तत्र आद्यानि चत्वारि सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ प्रथमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि। चतुर्थसूक्तस्य अन्तिमा "य इद्धचीन्द्र" इत्येषा परिधानीया। "अतिरात्रेहोरात्रादिभ्यः" इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने। "वयमु त्वा तदिदर्थाः [१] वयमिन्द्र त्वायवः [४] इति स्तोत्रियानुरूपौ। ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि। अन्त्यं पच्छः पर्यासः। य इद्धचि [२०. २१. ११] इति परिधानीया। अप्सु धूतस्य [२०. ३३. १] इति याज्या"। इति [वै० ४. ३] ॥

स्तोत्रियानुरूपाणां शंसनप्रकारस्तत्रैव उक्तः। "स्तोत्रियानुरूपयोः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायम् अर्धर्चशस्यं पच्छंसनि। मध्यमे पर्याये मध्यमानि। उत्तमे उत्तमानि" इति [वै० ४. २] ॥

तीसरे अनुवाकमें तेरह सूक्त हैं। इनमें पहिले चार सूक्त अतिरात्र क्रतुके प्रथम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनि-

युक्त होते हैं। चौथे सूक्तकी अंतिम "य उद्दृचीन्द्र" ऋचा परिधानीया है। "अतिरात्रेऽहोरात्रादिभ्यः" को आरम्भ करके वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वयमु त्वा तदिदर्थाः (१७) वय-मिन्द्र त्वायवः (४) इति स्तोत्रियानुरूपौ। ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि। अन्त्यं पच्छः पर्यासः। य उद्दृचि (२०।२१।११) इति परिधानीया। "अप्सु धूतस्य" (२०।३३।१) इति याज्या" (वैतानसूत्र ४।२ का०)।

"स्तोत्रियानुरूपोंका शंसनप्रकार भी वहाँ ही कहा है, कि–"स्तो-त्रियानुरूपयोः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायं अर्धर्च-शस्यवच्छंसति। द्वितीये पर्याये मध्यमानि। तृतीये उत्तमानि। वैतानसूत्र २।४

तत्र प्रथमा ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

वयम्। ऊँ इति। त्वा। तदित्ऽअर्थाः। इन्द्र। त्वाऽयन्तः। सखायः। कण्वाः। उक्थेभिः। जरन्ते ॥ १ ॥

हे इन्द्र तदिदर्थाः तदेव स्तोत्रम् अर्थः प्रयोजनं येषां ते तदि-दर्थाः त्वायन्तः त्वाम् आत्मन इच्छन्तो वयं सखायः तव सखि-भूताः। अथवा त्वां यन्तः सखायो वयं कण्वाः तदिदर्थाः तदेक-मनस्त्वं गम्यते ॥

महर्षयः कण्वाः

शब्दार्थः। ❁ अशूप्रुषीत्यादिना [उ० १, १४९] क्वन् प्रत्ययः। निरनात्रि आद्यु दात्तः। "कण्वादिभ्यो गोत्रे" इति अणो तस्य यहुषु लुक्। स एव स्वरः ❁। उक्थेभिः उक्थैः। उच्यन्त इत्यु-

क्यानि स्तोत्राणि । तैर्जरन्ते स्तुवन्ति । ॐ जरतिर्निरुक्तो धातुः स्तुत्यर्थे वर्तते ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! बहु स्तोत्र ही है प्रयोजन जिनका ऐसे, आपको चाहते हुए, आपके मित्रभूत हम कण्वगोत्री उक्थों (स्तोत्रों) से आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥

न । घ । ईम् । अन्यत् । आ । पपन । वज्रिन् । अपसः । नविष्टौ । तव । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । चिकेत ॥ २ ॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निन्द्र अपसः कर्मणो यागात्मनो नविष्टौ नवनस्य स्तुतेरेषणायां सत्यां नवोयाम् इष्टौ वा नूतने यागे कर्तव्ये सति । ॐ शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वम् ॐ । ईम् इदानीम् अन्यत् त्वद्विषयाद् अपरम् अन्यदेवताविषयं स्तोत्रं न घ नैव आ पपन अभिष्टौमि । ॐ पनतेः स्तुतिकर्मणः उत्तमे णलि रूपम् ॐ । किंतु तवेदु तवैव स्तोमम् स्तोत्रं चिकेत जानामि ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अपरम नवीन यज्ञके समय में आपके अतिरिक्त दूसरे देवताकी स्तुति नहीं करता हूँ किंतु आपके ही स्तोत्रको जानता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥

इच्छन्ति । देवाः । सुन्वन्तम् । न । स्वप्नाय । स्पृहयन्ति ।

यन्ति । प्रऽमादम् । अतन्द्राः ॥ ३ ॥

देवाः इन्द्राद्याः सुन्वन्तम् सोमाभिषवं कुर्वन्तम् यजमानम् इच्छन्ति रक्षितुम् इच्छां कुर्वन्ति । स्वमाय । स्वमशब्देन अनादरो लक्ष्यते । तद्विषयानादराय न स्पृहयन्ति नेच्छन्ति । औदासीन्यं न कुर्वन्तीत्यर्थः । ❀ "स्पृहेरीप्सितः" इति कर्मणि चतुर्थी ❀ । किं तु प्रमादम् प्रकर्षेण मादयितारं तं तस्य मदकरं सोमं वा उद्दिश्य अतन्द्राः अनलसाः सन्तो यन्ति गच्छन्त्येव । ❀ स्पृहयन्तीति । स्पृह ईप्सायाम् । चुरादिरदन्तः ❀ ।

इन्द्र आदि देवता सोमका अभिषव करने वाले यजमान की इच्छा करते हैं-अर्थात् उसकी रक्षा करना चाहते हैं उसके विषय में उदासीनता नहीं करते हैं, किंतु प्रकृष्टतासे मदमें भरने वाले सोमको हृदयमें रख आलस्यशून्य हो जाते ही हैं ॥ ३ ॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥ ४ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वाऽयवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृषन् ।
विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ४ ॥

हे वृषन् कामानां वर्षक इन्द्र त्वायवः त्वाम् इच्छन्तो वयम् । ❀ "सुप आत्मनः क्यच्" । "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" इति त्वादेशः । क्यजन्तस्मात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो लुक् । "छन्दसि" इति उप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेण प्रत्ययोदात्तः ❀ । अभि प्र णोनुमः आभिमुख्येन प्रकर्षेण स्तुमः । तु अपि च हे वसो वासक इन्द्र त्वमपि नः अस्मदीयम् अस्य एतत् स्तोत्रं विद्धि जानीहि ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्रदेव ! आपको चाहते हुए हम अभिमुख होकर आपकी स्तुति करते हैं, और हे वासक इन्द्र ! आप भी हमारी स्तुतिकी कामना करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

मा । नः । निदे । च । वक्तवे । अर्यः । रन्धीः । अराव्णे ।
त्वे इति । अपि । क्रतुः । मम ॥ ५ ॥

अर्यः स्वामी त्वम् हे इन्द्र नः अस्मान् निदे च निन्दकाय च मा रन्धीः वशं मा नैषीः ॥ रधेर्लुङि सिचि "इट्ईटि" इति सिज्लोपे "रधिजभोरचि" इति नुमि कृते "नमाङ्योगे" इत्यडभावे रूपम् ॥ वक्तवे च परुषभाषिणे च मा रन्धीः । अराव्णे अदात्रे शत्रवे मा रन्धीः ॥ अपि अपि च मम क्रतुः मदीयः संकल्पः स्तुतिलक्षणं कर्म वा त्वे त्वयि यत एवम् अतो निन्दकादिभ्योऽस्मान् मा रन्धीरिति संबन्धः ॥

हे स्वामी इन्द्र ! आप हमें निन्दकके वशमें न डालिये, कठोर भाषण करने वालेके वशमें न डालिये, दान न देने वाले शत्रुके वशमें न डालिये, मेरा संकल्प वा स्तुतिरूप कर्म आपके लिये ही है अतः मुझको निंदक आदिके वशमें न डालिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

त्वम् । वर्म । असि । सऽप्रथः । पुरःऽयोधः । च । वृत्रऽहन् ।

त्वया । प्रति । ब्रुवे । युजा ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तरिन्द्र समर्यः सर्वतः पृथुः सर्वत्र महान् पुरोयोधश्च संग्रामे अग्रतो योद्धा त्वं मम वर्मासि कवचं भवसि । शत्रुभिर्मुक्तानाम् इष्वादीनां पुरत एव निवारणाद् वर्मत्वव्यपदेशः । तादृशेन युजा सहायभूतेन त्वया प्रति ब्रुवे शत्रून् प्रति ब्रवीमि भर्त्सयामि । प्रतिहन्मीत्यर्थः ॥ १ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! सर्वत्र महान् और आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले आप मेरे कवचरूप होजाते हैं अर्थात् शत्रुओंके छोड़े हुए बाण आदिको पहिलेसे ही निवारण कर देनेके कारण आप मुझको कवचका काम देते हैं । ऐसे सहायक आपके कारण मैं शत्रुओंको धमकाता हूँ ॥ १ ॥

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६२४)

"वार्त्रहत्याय शवसे" इति सूक्तस्य अतिरात्रे प्रथमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोगः उक्तः ॥

"वार्त्रहत्याय शवसे" सूक्तका अतिरात्रके प्रथम पर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

वार्त्रऽहत्याय । शवसे । पृतनाऽसह्याय । च ।
इन्द्र । त्वा । आ । वर्तयामसि ॥ १ ॥

वार्त्रहत्याय वृत्रहननं निमित्ताय । "वृत्रेहन्" इति अत्र

द्रष्टव्यः । वृत्रघ्नः कर्म इत्यर्थे वा ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । नित्त्वादाद्युदात्तः ❀ । शवसे बलाय अपि च पृतनाषाह्याय परकीयसेनाभिभवाय । ❀ षह अभिभवे इत्यस्माद् भावे "शकिसहोश्च" इति यत् । संहितायां "सहेः पृतनर्ताभ्यां च" इति षत्वम् । छान्दसो दीर्घः ❀ । तदर्थं त्वा त्वाम् आवर्तयामसि आवर्तयामः । अस्मदभिमुखं कुर्मः ॥

इम वृत्रहननरूप कर्मके लिये, बल दिखानेके लिये, शत्रुओं की सेनाओंका तिरस्कार करनेके लिये आपको अपने अभिमुख करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्वाचीनम् । सु । ते । मनः । उत । चक्षुः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । इन्द्र । कृण्वन्तु । वाघतः ॥ २ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्निन्द्र ते तव मनः वाघतः यज्ञनिर्वाहका ऋत्विजः सु सुष्ठु अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं कृण्वन्तु । ❀ "विभाषाऽश्वेरदिक्स्त्रियाम्" इति खप्रत्ययः । खस्य ईनादेशः । प्रत्ययस्वरः ❀ । उत अपि च ते चक्षुः तव दृष्टिमपि अस्मदभिमुखाम् अस्मासु कृपावतीं कुर्वन्तु ॥

हे अनेक कर्मोंसे सम्पन्न शतक्रतो इन्द्र ! यज्ञके निर्वाहक ऋत्विज आपको भली प्रकार हमारे अभिमुख करें आपकी दृष्टि को भी हमारी ओर कृपा भरी करें ॥ २ ॥

तृतीया

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।

इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

नामानि। आ। ते। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। विश्वाभिः। गीःऽभिः। इन्द्र। अभिमातिऽसह्ये ॥ ३ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्न् इन्द्र अ...

...तेषां सहनयोग्ये संग्रामे। अथ... अभिमातिः इति श्रुतेः [तै०सं०२.१.३.५]। तस्य सहनयोग्ये पापक्षयनिमित्तभूते कर्मणि ते तव नामानि सहस्राक्ष पुरन्दरादिरूपाणि। अथ वा नमनीयानि वृत्रवधादिकर्माणि विश्वाभिः ... याचापदे संकीर्त... अदादित्वात् शपो लुक् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! शत्रुओंको दबानेके स्थलसंग्राममें वा पापक्षयके निमित्तभूत यज्ञमें हम आपके सहस्राक्ष पुरन्दर आदि नामोंका सकल स्तुतिरूप वाणियोंसे संकीर्तन करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि ।

इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

पुरुऽस्तुतस्य। धामऽभिः। शतेन। महयामसि। इन्द्रस्य। चर्षणिऽधृतः ॥ ४ ॥

पुरुष्टुतस्य पुरुभिर्बहुभिः स्तोतृभिः स्तुतस्य। "स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि" इति षत्वम्। शतेन शतसंख्याकैः धामभिः तेजोभिः पुरुरूपैर्वा ... । "षष्ठ्यर्थे तृतीया"।

भ्राम्रां स्थानानां शतेन युक्तस्य । असंख्यातस्थानवत इत्यर्थः । चर्षणीधृतः। चर्षणयो मनुष्याः । तान् धारयति रक्षतीति चर्षणीधृत् । तस्य उक्तलक्षणस्येन्द्रस्य । उक्तलक्षणम् इन्द्रम् इत्यर्थः । महयामसि महयामः पूजयामः स्तुमः । यद्वा शतेन शतसंख्याकेन स्तोत्रेण उक्तलक्षणम् इन्द्रं महयामसीति योज्यम् ॥

बहुतसे स्तोत्राओंसे स्तुत, सैंकड़ों तेजोंसे सम्पन्न और मनुष्यों की रक्षा करने वाले इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

इन्द्रम् । वृत्राय । हन्तवे । पुरुऽहूतम् । उप । ब्रुवे ।
भरेषु । वाजऽसातये ॥ ५ ॥

पुरुहूतम् बहुभिर्यजमानैराहूतं संग्रामे वा स्वस्वजयार्थं बहुभिराहूतम् इन्द्रं वृत्राय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वम् ❀ । वृत्रनामानम् असुरं पापं वेत्यर्थः । हन्तवे हन्तुम् । ❀ "तुमर्थे०" तवेन् प्रत्ययः । नित्स्वरः ❀ । किं च भरेषु । संग्रामनामैतत् । संग्रामेषु वाजसातये । वाजः अन्नम् । "अन्नं वै वाजः" इति श्रुतेः [तै०सं० ५, ४, ६, ६] । अन्नलाभाय । शत्रुजयम् अन्तरेण तदीयस्यान्नस्य लाभाभावात् तज्जयापेत्युक्तम् भवति । उक्तलक्षणोभयविषययोजनाय इन्द्रम् उप ब्रुवे उपेत्य स्तौमि ॥

यज्ञमें बहुतसे यजमानोंसे और संग्राममें अपनी २ विजयके लिये बहुतसे योधाओंसे आह्वान किये हुए इन्द्रदेवको मैं पापको

नष्ट करनेके लिये और संग्राममें वाज अर्थात् अन्न ‡ पानेके लिये इंद्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

॥ षष्ठी ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।

इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

वाजेषु । ससहिः । भव । त्वाम् । ईमहे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

इन्द्र । वृत्राय । हन्तवे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र त्वं वाजेषु संग्रामेषु सासहिः शत्रूणाम् अभिभविता भव । ❀ सहेर्यङन्तात् किप्रत्ययः ❀ । तदर्थम् हे शतक्रतो बहुकर्मेन्द्र त्वाम् ईमहे याचामहे ॥ अथ परोक्षवादः । किं च इन्द्रं देवं वृत्राय हन्तवे वृत्रम् असुरं पापं वा हन्तुम् ॥ स्तौमीति शेषः । अथ वा इन्द्रशब्दो यौगिकोत्र द्रष्टव्यः । इन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तं त्वा वृत्राय हन्तवे ईमहे इति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राममें शत्रुओंके तिरस्कारक बनें, इसके लिये हे शतक्रतो ! हम आपकी प्रार्थना करते हैं । हे इंद्रदेव ! मैं पापका संहार करनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

॥ सप्तमी ॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।

इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

द्युम्नेषु । पृतनाज्ये । पृत्सुतूर्षु । श्रवःऽसु । च ।

‡ तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । ६ । ६ में अन्नको वाज कहा है, यथा "अन्नं वै वाजः" ॥

इन्द्र । सास्व । अभिऽमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र पृतनाज्ये । संग्रामनामैतत् । पृतनानाम् अजनं जयो वाऽत्रेतितद्य त्पत्तिः संग्रामे । ❀ पृतनाशब्दोपपदाद् अजतेर्जयतेर्वा "अघ्न्यादयश्च" [उ० ४. १११] इति यक् प्रत्ययः । अजतिपक्षे "वा यति" इति वीभावविकल्पः । जयतेस्तु टिलोपो निपातनात् ❀ । धम्नेषु द्योतमानेषु धनेषु माप्तव्येषु पृत्सुतूर्षु पृतनासु तर्तव्यासु च । ❀ पृतनाशब्दस्य सौ परतो "मांस्पृतस्नूनाम् उपसंख्यानम्" इति पृदादेशः। त्विरा संभ्रमे इति संपदादिलक्षणः क्विप् । "ज्वरत्वर०" इत्यादिना ऊठ् । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर. ❀ । तथा श्रवःसु च । अन्ननामैतत् । ❀ श्रव इत्यन्ननाम श्रूयत इति सत निरुक्तम् [नि० १०. ३] ❀ । अन्नेषु च लब्धव्येषु एवम् अभिमातिषु शत्रुषु पापेषु वा । हन्तव्येष्विति शेषः । एतेषु फलेषु निमित्तभूतेषु सास्व अस्मान् सचस्व अनुसर । ❀ षह अभिभवे । लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् कुत्वपत्वे । दीर्घश्छान्दसः ❀ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इंद्रदेव ! संग्रामके समय, दमकते हुए धनोंको प्राप्त करते समय सेनाओंको तरनेके समय, अन्नप्राप्तिके अवसर पर और शत्रु वा पापोंको नष्ट करनेके अवसरों पर आप हमारा अनुसरण करिये ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३५)

— "शुष्मिन्तमं न ऊतये" इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रथमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"शुष्मिन्तमं न ऊतये" सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसी के प्रथमपर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

शुष्मिन्ऽतमम् । न । ऊतये । द्युम्निनम् । पाहि । जागृविम् ।
इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ १ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्निन्द्र नः अस्माकं संबन्धिनं शुष्मिन्तमम् अतिशयेन बलवन्तम् । ❀ "नाद्घस्य" इति नुडागमः ❀ । द्युम्निनम् द्योतनवन्तं जागृविम् जागरणशीलं स्वप्ननिवारकम् । न हि सोमं पीतवतः स्वप्नप्रसङ्गोऽस्ति अस्वप्नत्वसाधनत्वात् तस्य । उक्तमहिमोपेतं सोमम् ऊतये अस्माकं रक्षणाय पाहि पिब ॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव ! आप हमारे परमबलप्रद, दमकते हुए, स्वप्ननिवारक सोमका हमारी रक्षाके लिये पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चऽसु ।
इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ २ ॥ ॥ ७ ॥

हे शतक्रतो हे इन्द्र ये तव संबन्धीनि यानि प्रसिद्धानि इन्द्रियाणि इन्द्रसृष्टानि इन्द्रदत्तानि वा वीर्याणि दर्शनश्रवणादिलक्षणानि पञ्चसु जनेषु देवमनुष्यपितृसुररक्षःसु निषादपञ्चमेषु चतुर्षु वर्णेषु वा विद्यन्ते ते तव स्वभूतानि तानि आ वृणे संभजेय । ❀ वृङ् संभक्तौ इत्यस्य लटि रूपम् ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे शतक्रतो ! आपके जो दर्शन श्रवण आदि रूप वीर्य, देव मनुष्य पितर असुर और राक्षसोंमें है उन सबको मैं प्राप्त करूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।

उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व । दुस्तरम् ।

उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र तव संबन्धि बृहत् महत् प्रभूतं श्रवः अन्नम् अगन् अस्मान् गच्छतु । यद्वा उक्तरूपं सोमलक्षणम् अन्नं त्वाम् अगन् प्राप्नोतु । ❀ गमेर्लिङि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । "हल्ङ्याo" इत्यादिना तिलोपः । "मो नो धातोः" इति मकारस्य नकारः । अडागमः । स्वरः ❀ । त्वं च दस्तरम् शत्रुभिस्तरीतुम् अयोग्यं द्युम्नम् द्योतमानं यशो . . . . स्थापय । वयं तु ते शुष्मम् बलम् उत् तिरामसि सोमेन स्तोत्रेण च वर्धयामः । ❀ तॄ प्लवनतरणयोः । लटि व्यत्ययेन शः । "ऋत इद्धातोः" इति इत्वम् । "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

हे इंद्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे और आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकते हुए धनको हममें स्थापित करिये, और हम तो आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं

चतुर्थी ॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥

अर्वाऽवतः। नः। आ। गहि। अथो इति। शक्र। पराऽवतः।
ऊं इति। लोकः। ते। अद्रिऽवः। इन्द्र। इह। ततः। आ। गहि

हे शक्र बलवन्निन्द्र अर्वावतः अर्वाचीनात् समीपाद् देशाद् अथो अपि च परावतः अतिदूराद् देशाद् ॥ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः। प्रत्ययस्वरः ॥ नः अस्मान् अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ। उ इति वाक्यालंकारे। अद्रिवः। अत्ति भक्षयति शत्रून् इति अद्रिर्वज्रः। आद्रणातीति वा। तद्वन् ते तव यो लोकः उत्तमो लोकोऽस्ति हे इन्द्र ततस्तस्मादपि लोकाद् इह अस्मिन् देवयजने देशे सोमपानार्थम्-आ गहि आगच्छ। ॥ गम्लृ सृप्लृ गतौ। "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक्। सेर्हिरादेशः। हेरपित्वाद् ङित्वद्भावेन "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः ॥

हे बलवान् इंद्र! आप समीपके स्थलमें हो तो समीपके स्थल से और दूरके स्थलमें हो तो दूरसे हमारे पास आइये, हे वज्रधारिन् इंद्र! आपका जो उत्तम लोक है उस स्थानसे भी आप सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमी ॥

इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग म॒हद्भ॒यम॒भी षदप॑ चुच्यवत् ।
स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ ५ ॥

इन्द्रः। अङ्ग। महत्। भयम्। अभि। सत्। अप। चुच्यवत्।
सः। हि। स्थिरः। विऽचर्षणिः ॥ ५ ॥

अङ्गेति आत्मानम् ऋत्विजं वा अभिमुखीकृत्य ब्रूते। इन्द्रो देवः अस्माकम् उत्पन्नं महत् प्रभूतम् अन्यैः परिहर्तुम् अशक्यं

भयम् अमी पद अभिभवति परिहरति। ⊛ अभिपूर्वात् सदेर्लङ्। बहुलवचनाद् अडभावः। "इतश्च" लोपः। संयोगान्तलोपः। "स्सदिरप्रतेः" इति षत्वम्। "निपातस्य च" इति दीर्घः ⊛। किं भयस्य अभिभवमात्रम् नेत्याह अप चुच्यवद् इति। भयम् अपच्यावयति अस्मत्तः पृथक्कृत्य दूरतोपसारयति। ईदृशः सामर्थ्यस्य संभावनाम् आह। स हि स खल्विन्द्रः स्थिरः स्वयम् अन्येन न च्याव्यः विचर्षणिः विरवस्य द्रष्टा। भयकृतः प्रच्छन्नान् प्रकाशांश्च रक्षणीयान् अस्मांश्च जानातीत्यर्थः। ⊛ अप चुच्यवद् इति। च्युङ् प्लुङ् गतौ इत्यस्मात् लुङि णिलोपे उपधाह्रस्वत्वे "स्रवतिशृणोति०" इत्यादिना अभ्यासस्य विकल्पेन इत्वम्। "बहुलं छन्दसि०" इति अडभावः ⊛॥

हे आत्मा वा ऋत्विज! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं। और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इंद्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनको च्युत नहीं कर सकता और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देने वालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं॥ ५॥

षष्ठी॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः॥ ६॥

इन्द्रः। च। मृळयाति। नः। न। नः। पश्चात्। अघम्। नशत्। भद्रम्। भवाति। नः। पुरः॥ ६॥

इन्द्रश्च। च शब्दश्चेदर्थे। अस्माभिः शरणं गन्तव्यो देवः इन्द्रश्चेत् परमैश्वर्यगुणविशिष्टः सर्वभूतस्य रक्षकश्चेद् नः अस्मान्

सुखयानि सुखयतु । ❀ मृडयतेर्लेटि आटि कृते रूपम् ❀ । स तादृशश्चेत् पश्चात् पृष्ठतो नः अस्मान् अघम् दुःखं न नशत् न प्राप्नोतु । ❀ नशोर्लेट् ❀ । किं च नः अस्माकं पुरः पुरस्तात् भद्रम् मङ्गलं च प्रजाति भवतु । ❀ भवतेर्लेट् ❀ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख देवें, यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे, और हमारे सामने मङ्गल होवे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

इन्द्रः । आशाभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । करत् ।
जेता । शत्रून् । विऽचर्षणिः ॥ ७ ॥

स इन्द्रः सर्वाभ्य आशाभ्यस्परि ❀ परीति पञ्चमीद्योतकः ❀ । दिग्भ्यो विदिग्भ्यः उपर्यधोदिग्भ्यां च अस्माकम् अभयम् भयराहित्यं क्षेमं करत् करोतु । सकलदिग्गतभयपरिहारसामर्थ्यं तस्य संभावयति । स इन्द्रः शत्रून् जेता सर्वास्वपि दिक्षु अस्माकं ये भयकारिणः शत्रवः सन्ति तेषां सर्वेषाम् अभिभविता विचर्षणिः तेषां विद्रष्टा च ॥ ॥ ७ ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु होंगे उनको मृदमनासे देखने वाले हैं ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीयसूक्त समाप्त (१२६)

"न्यूषु वाचम्" इति सूक्तस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रथमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः। अत्र "य उदृचि" इत्येषा अन्तिमा परिधानीया॥

"न्यूषु वाचम्" सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसीके प्रथम शास्त्रपर्यायमें विनियोग कहा है। यहाँ "य उदृचि" यह अंतिम ऋचा परिधानीया है।

तत्र प्रथमा॥

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते॥ १॥

नि। ऊं इति। सु। वाचम्। प्र। महे। भरामहे। गिरः। इन्द्राय। सदने। विवस्वतः।

नु। चित्। हि। रत्नम्। ससताम्ऽइव। अविदत्। न। दुःऽस्तुतिः। द्रविणःऽदेषु। शस्यते॥ १॥

महे महते। ❀ महच्छब्दस्य छान्दसो लोपश्छान्दसः ❀। इन्द्राय देवाय सु वाचम् शोभनां स्तुतिं नि प्र भरामहे नितरां प्रयुञ्ज्महे। उ इति पदपूरणः। ❀ न्यूष्विति। "उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य" इति स्वरितत्वम्। तच्च उदात्तपरस्वात् संहितायां कम्पते। "इकः सुञि" इति दीर्घत्वम्। "सुञः" इति षत्वम् ❀। यतो विवस्वतः परिचरतो यजमानस्य सदने यज्ञगृहे इन्द्राय गिरः स्तुतयः क्रियन्ते। हि यस्मात् स इन्द्रः नू चित् क्षिप्रमेव रत्नम् रमणीयम् असुराणां धनम् अविदत् विन्दति। तत्र दृष्टान्तः। ससतामिव यथा ससताम् स्वपतां पुरुषाणां धन

चोरः क्षिप्रं लभते तद्वत् । अतोऽस्मभ्यं धनं दातुं शक्त इति भावः । द्रविणोदेषु धनस्य दातृषु पुरुषेषु दुष्टुतिः असमीचीना स्तुतिः न शस्यते नाभिधीयते न युज्यते वा । अतः सुवाचं प्रभरामहे इति पूर्वेण संबन्धः ॥

महान् इंद्रदेवके लिये हम सुन्दर वाणी वाली स्तुतिका पूर्ण रीतिसे प्रयोग करते हैं, क्योंकि-सेवा करने वाले यजमानके यज्ञगृहमें इन्द्रके लिये स्तुतियें उच्चारण की जारही हैं, क्योंकि-वह इन्द्रदेव, चोर जैसे सोने वालोंके धनको शीघ्रतासे लेलेता है इसी प्रकार असुरोंके धनको शीघ्रतासे प्राप्त कर लेते हैं [तात्पर्य यह है, कि-तब हमको धन देसकते हैं] और धनको प्रदान करने वाले पुरुषोंके लिये ओछी स्तुति उपयुक्त नहीं होती अतः एव मैं सुन्दर वाणी वाली स्तुतिका पूर्णरीतिसे प्रयोग करता हूँ ॥१॥

द्वितीया ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥

दुरः । अश्वस्य । दुरः । इन्द्र । गोः । असि । दुरः । यवस्य । वसुनः । इनः । पतिः ।

शिक्षाऽनरः । प्रऽदिवः । अकामऽकर्शनः । सखा । सखिऽभ्यः । तम् । इदम् । गृणीमसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वम् अश्वस्य । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । अश्वानाम्

एतद् गजादीनामपि उपलक्षणम् । अश्वगजादिवाहनानां दुरः दाता असि । ❀ दाव् दाने । मन्दिवाशीत्यादिना [उ० १. ३८] विधीयमान उरच् प्रत्ययो बहुलवचनादृ अस्मादपि भवति। अत एव आकारलोपः ❀ । तथा गोः । एतद् उपलक्षणं महिष्यादेः । गोमहिष्यादीनां दुरोसि । तथा यवस्य । एतद् व्रीह्यादिधान्यजातस्य उपलक्षणम् । तस्य दुरोसि । एवं वसुनः धनस्य हिरण्यमणिमुक्तादिरूपस्य इनः स्वामी पतिः पालकश्चासि। शिक्षानरः । ❀ शिक्षतिर्दानकर्मा ❀ । शिक्षाया दानस्य नेतासि । यद्वा शिक्षाविषयभूता नरो मनुष्या यस्य स शिक्षानरः प्रदिवः प्रगता दिवो दिवसा यस्य स तथोक्तः । पुराण इत्यर्थः । अकामकर्शनः कामानां कर्शकः कामकर्शनः स न भवतीत्यकामकर्शनः । स्वसेविनां कामवर्धक इत्यर्थः । एवं सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः सखिभूतेभ्य ऋत्विग्भ्यः सखा मित्रभूतः एवंमहिमा य इन्द्रोस्ति तं तादृशम् इन्द्रम् इदं स्तोत्रं गृणीमसि गृणीमः उच्चारयामः कुर्मः । ❀ गृ शब्दे । क्र्यादिकः । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् । "इदन्तो मसिः" इति मस इकारः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्व गज आदि वाहनोंको प्रदान करने वाले हैं, गौ भैंस आदिके प्रदान करने वाले हैं, औ धान आदि के दाता हैं तथा हिरण्य मुक्ता आदि धनके स्वामी और रक्षक हैं, मनुष्योंको शिक्षा देने वाले हैं, आपको बहुत दिन बीत गए हैं अर्थात् आप प्राचीन हैं, आप अपने सेवकोंके कामोंको बढ़ाने वाले हैं और आप समान ख्याति वाले ऋत्विजोंके मित्ररूप हैं, ऐसे इन्द्रदेवके लिये हम इस स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु

अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

शचीऽवः । इन्द्र । पुरुऽकृत् । द्युमत्ऽतम । तव । इत् । इदम् । अभितः । चेकिते । वसु ।

अतः । सम्ऽगृभ्य । अभिऽभूते । आ । भर । मा । त्वाऽयतः । जरितुः । कामम् । ऊनयीः ॥ ३ ॥

हे शचीवः । प्रज्ञानामैतत् । प्रज्ञानवन्निन्द्र । ❀ "मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि" इति रुत्वम् । पाष्ठिकम् आमन्त्रिताद्युदात्तत्वम् ❀ । हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट पुरुकृत् बहूनां कर्तः द्युमत्तम दीप्तिमत्तमः । ❀ एषाम् इन्द्रादीनाम् आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । न च "आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इत्यविद्यमानवत्त्वम् । "नामन्त्रिते समानाधिकरणे०" इति निषेधात् ❀ । एवंमहानुभाव इन्द्र अभितः सर्वत्र यद् वसु धनं विद्यते तद् इदं सर्वं तवेत् तवैव स्वम् । धनजातस्य सर्वस्यापि त्वमेव स्वामीत्यर्थः । इत्थं चेकिते भृशम् अस्माभिर्ज्ञायते । ❀ कित ज्ञाने । अस्माद् यङन्ताद् वर्तमाने लिटि "०अमन्त्रे०" इति निषेधाद् आम्प्रत्ययाभावे सति लिट आर्धधातुकत्वाद् अतोलोपयलोपौ ❀ । हे अभिभूते शत्रूणाम् अभिभवितरिन्द्र अतः अस्मात् कारणात् संगृभ्य सर्वं धनं संगृह्य आ भर आहर अस्मभ्यं प्रयच्छ । त्वायतः त्वाम् आत्मन इच्छतो जरितुः स्तोतुर्मम कामं मा ऊनयीः ऊनं मा कार्षीः । पूरयेत्यर्थः । ❀ ऊन परिहाणे । लुङि "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः०" इति च्लेश्चङादेशस्य "नोनयतिध्वनयति०" इत्यादिना प्रतिषेधे "ह्म्यन्तक्षण०" इति सिचि वृद्धिप्रतिषेधः ❀ ॥

हे महानवान्, परमैश्वर्यविशिष्ट, बहुतसे कर्मोंको करने वाले, परम प्रदीप्त इन्द्रदेव! चारों ओर जो धन है वह सब आपका ही है अर्थात् उस सब धनके आप ही स्वामी हैं, इस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं। हे शत्रुओंको दवाने वाले इन्द्र! इस कारण आप सब धनको संग्रह करके हमें प्रदान करिये, अपने लिये आपकी इच्छा करने वाले मुझ स्तोताको आप काम पूर्ण करिये, पूर्ण करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।

इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि

एभिः । द्युऽभिः । सुऽमनाः । एभिः । इन्दुऽभिः । निऽरुन्धानः । अमतिम् । गोभिः । अश्विना । इन्द्रेण । दस्युम् । दरयन्तः । इन्दुऽभिः । युतऽद्वेषसः । सम् । इषा । रभेमहि ॥ ४ ॥

॥ हे इन्द्र एभिः अस्माभिर्दत्तैः द्युभिः दीप्तैश्चरुपुरोडाशादिभिः एवम् एभिः अस्माभिर्दत्तैः इन्दुभिः सोमैश्च प्रीतस्त्वम् अस्माकम् *अमतिम् दारिद्रयम् गोभिर्बह्वीभिः अश्विना अश्ववता धनेन च* निरुन्धानः निवर्तयन् सुमनाः शोभनमनाः भवेति शेषः। वयम् इन्दुभिः अस्माभिर्दत्तैः सोमैः प्रीतेन इन्द्रेण दस्युम् उपक्षपयितारं शत्रुं दरयन्तः दारयन्तो हिंसन्तः अत एव युतद्वेषसः। अत्र यौतिरमिश्रणार्थः। पृथग्भूतद्वेषाः अपगतशत्रवः सन्तः इषा अन्नेन इन्द्रदत्तेन सं रभेमहि संरब्धा भवेम। संगता भवेमेत्यर्थः ॥

एणपि त्वाम् अमदन् । ते प्रसिद्धाः सोमासः सोमा अपि त्वाम् अमदन् । पं त्वम् यदा कारवे । स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रे बर्हिष्मते याग-वते यजमानाय दश सहस्राणि वृत्राणि आवरकाणि पापानि अमित्राणि वा अमनि मेतिः इतं यथा भवति तथा । नि बहेय: अन्य-वधीः । तदानीम् इति पूर्वेण संबन्धः । बर्हयतिर्हिंसाकर्मा । लङि "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इत्यडभावः । शपः पित्वाद् अनुदात्तत्वे णिचः स्वरः शिष्यते । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः ॥

हे सज्जनोंके पालक इन्द्रदेव ! शत्रुओंके नाश करनेके अव-सरों पर मदकारी घृत पुरोडाश आदि आपको हर्ष देवें और फलोंकी वर्षा करने वाले आपके स्तोत्र भी आपको हर्ष दें, और वह प्रसिद्ध सोम भी आपको हर्षित करें । जिस समय आप स्तुति करने वाले कुश वाले यजमानके लिये दश हजार घेरने वालों को अपुनर्भवरूपमें मारें तब ये सोम आदि आपको आनंद देवें ६

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

युधा । युधम् । उप । घ । इत् । एषि । धृष्णुऽया । पुरा । पुरम् । सम् । इदम् । हंसि । ओजसा ।

... । यत् । इन्द्र । सख्या । पराऽवति । निऽबर्हयः । नमुचिम् । नाम । मायिनम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वं युधा प्रहरणसाधनेन वज्रेण आयुधेन । अथवा

योधनं युध् तेन । प्रहरणेनेत्यर्थः । ❀ संपदादिलक्षणः क्विप् ❀ । कीदृशेन । धृष्णुया धर्षकेण युधम् शत्रोरायुधं प्रहरणं वा उप वेदेषि । वेति पूरणः । उपेत्येन उपगच्छस्येव । अनेनास्य द्वन्द्व-युद्धकुशलत्वम् उक्तं भवति । एवं पुरा नगरेण । अत्र पूर्शब्देन तत्रस्था भटा लक्ष्यन्ते । पुरस्थैः स्वकीयैर्योद्धृभिर्मरुतप्रभृतिभिः इदम् इदानीं पुरम् शत्रुनगरं पुरस्थान् योद्धृन् वा ओजसा बलेन सं हंसि सम्यग् नाशयसि । यत् यस्मात् कारणात् नम्या नम्यया सर्वैः प्रह्वीभवितुम् अर्हया सख्या सखिभूतया शक्त्या आयुधेन परावति दूरदेशे नमुचिं नाम नमुचिनामधेयम्, असुरं मायिनम् मायावन्तं निबर्हयः निरगमः अहिंसीः । अतस्त्वम् एवं स्तुयस इत्यर्थः ॥

हे इंद्रदेव ! आप धर्षक प्रहारके साधन आयुधसे शत्रुके आयुध पर टूट ही पड़ते हैं, (इससे इंद्रदेवका द्वन्द्वयुद्धमें कुशल होना कहा) और अपने पुरमें स्थित मरुत् आदि भटोंसे शत्रुनगर-निवासी योधाओंको बलपूर्वक मरवा देते हैं । क्योंकि–आपने सबसे नमनीय मित्ररूपा शक्ति आयुधसे दूरदेशमें मायावी नमुचि को मार डाला है अत एव आपकी स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी । त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

त्वम् । करञ्जम् । उत । पर्णयम् । वधीः । तेजिष्ठया । अतिथि-ऽग्वस्य । वर्तनी ।

त्वम् । शता । वङ्गृदस्य । अभिनत् । पुरः । अननुऽदः । परिऽसूताः । ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वं करञ्जम् एतन्नामानम् असुरं वधीः अवधी हतवान् असि । ⊛ हन्तेर्लुङि सिपि "लुङि च" इति वधादेशः । तस्य अदन्तत्वाद् वृद्ध्यभावः । अत एव अनेकाच्त्वाद् इडागमप्रतिषेधाभावः । "इट ईटि" इति सिचो लोपः ⊛ । उत अपि च पर्णयम् एतत्संज्ञकम् असुरं वधीः । किमर्थम् अवधीरिति तदाह । अतिथिग्वस्य अतिथ्यर्था गावो यस्यासौ अतिथिग्वः तस्य राज्ञः प्रयोजनाय । केन साधनेनेति उच्यते । तेजिष्ठया अतिशयेन तेजोवत्या । ⊛ तेजःशब्दाद् "अस्मायामेधास्रजो विनिः" इति मत्वर्थीयो विनिः । तस्माद् आतिशायनिक इष्ठन् । "विन्मतोर्लुक्" इति विनो लुक् । ("टेः" इति टिलोपः ।) नित्त्वाद् आद्युदात्तत्वम् ⊛ । तादृश्या वर्तनी वर्तन्या शक्त्या प्रतन्नामकेन(आयुधेन)। किं च त्वम् ऋजिश्वना एतन्नामकेन राज्ञा निमित्तेन परिषूताः परितोऽवष्टब्धाः शता शतानि शतसंख्याकाः वङ्गृदस्य एतत्संज्ञकस्य असुरस्य पुरः पुराणि नगराणि अभिनत् नाशितवान् । कीदृशस्त्वम् । अननुदः नुदति शत्रून् अपसारयतीति नुदः न तादृशोऽनुदः अप्रेरकः। तादृशो न भवतीत्यननुदः । सर्वदा शत्रूणां प्रेरक इत्यर्थः । अथ वा अनु पश्चाद् द्यति खण्डयतीत्यनुदः अनुचरः । स यस्य नास्ति सोऽननुदः । असहायभूत इत्यर्थः । ⊛ दो अवखण्डने । "आतश्चो०" इत्याप्रत्ययः । "आतश्चोपसर्गे" इति कप्रत्ययः । नास्ति अनुदोऽस्य इति बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ⊛ ॥

हे इंद्रदेव ! आपने अतिथिग्व नाम वाले राजाके कारण परम तेजोमयी वर्तनी नामक शक्तिसे करञ्ज नाम वाले असुरको मार

डाला था, और पर्णय नामक असुरको भी आपने मार डाला था और आपने किसीकी सहायता न लेकर सुश्रवन् नामक राजाके लिये वङ्गृद नामक असुरके सौ रक्षित पुरोंको नष्ट कर डाला था ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः। षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

त्वम्। एतान्। जनऽराज्ञः। द्विः। दश। अबन्धुना। सुऽश्रवसा। उपऽजग्मुषः।

षष्टिम्। सहस्रा। नवतिम्। नव। श्रुतः। नि। चक्रेण। रथ्या। दुःऽपदा। अवृणक् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र श्रुतः विख्यातस्त्वम् अबन्धुना बन्धुरहितेन सहायवर्जितेन सुश्रवसा एतन्नामकेन राज्ञा इतिमितेन एतान् प्रसिद्धान् उपजग्मुषः उपगतान् निरोधं कृतवतः द्विर्दश द्विगुणितान् दशसंख्याकान्। विंशतिसंख्याकान् इत्यर्थः। तथा षष्टिं सहस्रा सहस्राणां षष्टिम् षष्टिसहस्रसंख्याकान् तथा नवतिं नव नवोत्तरनवतिसंख्याकान् जनराज्ञः जनानां भटानां स्वामिनः उक्तसंख्याकान् सेनानायकान् दुष्पदा दुष्पदनेन शत्रुभिर्गन्तुम् अशक्येन रथ्या रथार्हेण। "रथाद्यत्" इति यत्। चक्रेण न्यवृणक् न्यवर्जयः अनाशयः। वृजी वर्जने। रौधादिकः। लङि मध्यमैकवचने "हल्ङ्याब्भ्यः०" इति सिपो लोपः। "चोः कुः" इति कुत्वम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रसिद्ध हैं आपने सहायकरहित सुश्रवा राजाके कारण उसको घेरने वाले बीस, साठ हजार और निन्यानवे सेनानायकोंको चक्रसे मार डाला था शत्रु उस चक्रको पहुँच नहीं सकते थे ॥ ९ ॥

दशमी ॥

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम् ।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः

त्वम् । आविथ । सुऽश्रवसम् । तव । ऊतिऽभिः । तव । त्रामऽभिः । इन्द्र । तूर्वयाणम् ।

त्वम् । अस्मै । कुत्सम् । अतिथिऽग्वम् । आयुम् । महे । राज्ञे । यूने । अरन्धनायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वम् सुश्रवसम् पूर्वमन्त्रे अबन्धुना सुश्रवसेत्युक्तम् असहायं दुर्बलम् एतन्नामानं राजानं तव ऊतिभी रक्षाभिः आविथ ररक्षिथ । तथा तस्यैव राज्ञोर्थाय तूर्वयाणम् एतत्संज्ञकं राजानं तव त्रामभिः पालनैः । आविथेति संबन्धः । ❁ त्रैङ् पालने । "आदेचः०" इति आत्वम् । "आतो मनिन्०" इति मनिन् । नित्त्वाद् आद्युदात्तत्वम् ❁ । एवं त्वम् अस्मै सुश्रवसे राज्ञे । कीदृशाय । महे महते यूने वयस्थाय युवराजभूताय सुश्रवसे कुत्सम् अतिथिग्वम् आयुं च अरन्धनायः वशम् अनैषीः । ❁ रन्धनं वशीकरणं करोति । "तत् करोति०" इति णिच् । "इष्ठवण्णौ प्रातिपदिकस्य" इति इष्ठवद्भावाट्टिलोपः । लङि सिपि दीर्घश्छान्दसः ❁ ॥

हे इन्द्रदेव आपने सुश्रवा नामक राजाकी अपनी रक्षक शक्तियोंसे रक्षा की है और उसी राजाके लिये तूर्वयाण नामक राजाका पालकशक्तियोंसे पालन किया है। इस युवराज सुश्रवा राजाको कुत्स अतिथिग्व और आयुको सौंप दिया था ॥ १० ॥

एकादशी ॥

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम। त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

ये। उत्ऽऋचि। इन्द्र। देवऽगोपाः। सखायः। ते। शिवऽतमाः। असाम। त्वाम्। स्तोषाम। त्वया। सुऽवीराः। द्राघीयः। आयुः। प्रऽतरम्। दधानाः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ये वयम् उदृचि उदर्के यज्ञसमाप्तौ वर्तमाना देवगोपाः देवेन त्वया पालिताः ते तव सखायः सखिवद् अत्यन्तप्रियाः अत एव शिवतमाः असाम अतिशयेन कल्याणा भूम। असेर्लेटि। लुङर्थे लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इति पिद्वद्भावात् "विच्छिन्न" इति ङित्त्वाभावे "श्नसोरल्लोपः" इत्याकारलोपाभावः। पित्त्वादेव तिङोनुदात्तत्वम्। धातुस्वरः शिष्यते। ते वयं यज्ञसमाप्त्युत्तरकालमपि त्वां स्तोषाम स्तवाम। स्तौतेर्लोटि "सिब्बहुलं लेटि" इति बहुलग्रहणात् लोट्यपि सिप्। तस्य पित्त्वाद् गुणः। अस्माभिः स्तुतेन त्वया सुवीराः शोभनपुत्रवन्तः सन्तः द्राघीयः अतिशयेन दीर्घम् आयुः जीवनं प्रतरम् प्रकृष्टतरं यथा भवति तथा दधानाः धारयन्तो भूयास्म ॥

इति तृतीयेऽनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

... हे इन्द्र ! जो हम हैं वह इस यज्ञकी समाप्तिके समय आपसे देवतासे रक्षित रहें हम आपके मित्रकी समान परम प्रिय हैं अत एव हम परम कल्याणको प्राप्त होवें। हम यज्ञसमाप्तिके अनंतर भी आपकी स्तुति करते रहें। आपकी स्तुति करनेसे आपकी दया पानेके कारण हम शोभन पुत्रोंसे सम्पन्न रहें, दीर्घायु पावें और श्रेष्ठतासे तरने योग्य आयुको पावें ॥ ११ ॥

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६३)

अतिरात्रे क्रतौ मध्यमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शास्त्रे "अभि त्वा वृषभा सुते" इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि विनियुक्तानि। चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा "बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय" इत्येषा परिधानीया। सूत्रितं हि। "मध्यमे त्रिष्टुदसि" इति प्रक्रम्य "अभि त्वा वृषभा सुते [१.] अभि प्र गोपतिं गिरा [४.] इति स्तोत्रियानुरूपौ। बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय [२०. २५. ६] इति परिधानीया। मोषु पीतिम् [२०. ४१. ७] इति "याज्या" इति [वै० ८.२] ॥

"ऊर्ध्वं स त्र्यीणि सूक्तानि अन्त्यः पच्छः पर्यासः" इति [वै० ४. २] सूत्रितत्वात् सर्वत्र त्रिषु पर्यायेषु स्तोत्रियानुरूपाभ्याम् ऊर्ध्वं सूक्तत्रयं शंसनीयम्। अतः "आ तू न इन्द्र मद्र्यक्" [२०. २३] इत्यादिसूक्तत्रयस्य मध्यमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥ अत एव "अश्वावति" [२०. २५] इत्यस्य तृतीयसूक्तस्य अन्तिमा परिधानीयात्वेन सूत्रकृता सूत्रिता ॥

अतिरात्र क्रतुके मध्यम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमें "अभि त्वा वृषभा सुते" आदि चार सूक्तोंका विनियोग है। चतुर्थसूक्तकी अन्तिम ऋचा "बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय" ऋचा परिधानीया है। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"मध्यमे त्रिष्टुदसि" इति प्रक्रम्य "अभि त्वा वृषभा सुते (१) अभि प्र

गोवर्ति गिरा (१४) इति स्तोत्रियानुरूपौ । उद्विदीर्यत्स्वपत्याय (२०। २५। ६) इति परिधानीया प्रोग्रां पीतिम् (२०।२५।७) इति याज्या ' (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

"ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः । पहिले सर्वत्र तीन सूक्तोंको कहे, फिर अन्त्य पच्छः पर्यासको कहे" इस प्रकार वैतानसूत्र ४ । २ में सूचित होनेके कारण सर्वत्र तीनों पर्यायोंमें स्तोत्रियानुरूपोंमे पहिले तीनों सूक्तों को कहना चाहिये। अतः "आ तू न इन्द्र मद्र्यक्" (२०। २३) आदि तीन सूक्तों का मध्यमपर्यायशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है। अत एव "अश्वावति" (२०। २५) इस तृतीयसूक्तकी अन्तिम ऋचाको सूत्रकारने परिधानीया बताया है।

तत्र प्रथमा ॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

अभि । त्वा । वृषभ । सुते । सुतम् । सृजामि । पीतये ।

तृम्प । वि । अश्नुहि । मदम् ॥ १ ॥

हे वृषभ वर्षक इन्द्र सुते सोमे अभिषुते सति सुतम् अभिषवादिना संस्कृतं सोमं पीतये पानाय त्वा त्वाम् अभि सृजामि संयोजयामि तेन सृष्टेन सोमेन तृम्प प्रीतो भव । तृम्प तृप्तौ तुदादित्वात् शः । हलोपः । विकरणस्वरेण अन्तोदात्तः । तं च मदम् मदकरं सोमं व्यश्नुहि विशेषेण व्याप्नुहि । अशू व्याप्तौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ॥

हे वर्षक इन्द्रदेव ! हम सोमके अभिषुत होने पर अभिषव आदिसे संस्कृत सोमका पान करनेके लिये आपको संयुक्त करते

हैं। आप उस सोमसे तृप्त हूजिये और आप उस मदकर सोमको व्याप्त कर लीजिये॥ १॥

॥ द्वितीया ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

मा। त्वा। मूराः। अविष्यवः। मा। उपहस्वानः। आ। दभन्।
माकीम्। ब्रह्मऽद्विषः। वनः ॥ २॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् अविष्यवः अवि रक्षणम् इच्छन्तः अथ वा आत्मानं पालयितुं कामयमानाः त्वदनुग्रहम् अन्तरेण आत्मानं रक्षन्तः। ® अविशब्दात् क्यच् "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः। प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ®। अत एव मूराः मूढाः आत्महितोपायम् अजानन्तः। ® मूरशब्दस्य मूढशब्दपर्यायतां यास्क आह। 'मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से' [नि० ६. ८] ®। मा दभन् मा हिंसन्तु। तथा उपहस्वानः उपहसनकर्तारोपि त्वां मा दभन्। ® उपपूर्वात् हसतेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति वनिप्। कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ®। त्वं च ब्रह्मद्विषः ब्राह्मणद्वेष्टॄन् माकीम्। माशब्दपर्यायो माकीशब्दः। मा वनः मा भजेथाः। ® वन षण संभक्तौ। लङ्। मध्यमैकवचनम्। "न माङ्योगे" इति अडभावः ® ॥

हे इन्द्रदेव! आपके बिना अपनी रक्षा करना चाहने वाले मूढ पुरुष आपका हनन न कर सकें, तथा हँसी उड़ाने वाले भी आपको न दबा सकें, आप ब्रह्मद्वेषियोंका सेवन न करिये।२।

॥ तृतीया ॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।

सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

इह । त्वा । गोऽपरीणसा । महे । मन्दन्तु । राधसे ।

सरः । गौरः । यथा । पिब ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् इह यागे गोपरीणसा । ⊛ विकारे प्रकृतिशब्दः ⊛ । गोविकारेण पयसा मिश्रितेन सोमेन । ⊛ परिपूर्वाद् व्याप्तिकर्मणो नसतेः क्विप् । "अन्येषामपि दृश्यते" इति दीर्घः ⊛ । महे महते राधसे धनाय मन्दन्तु ऋत्विजो मादयन्तु । त्वं च सरः सरणशीलम् उदकं सरःस्थं वा गौरः गौरमृगो यथा अत्यन्ततृषितः सन् निकामं पिबति तथा पिब ॥

हे इन्द्र ! इस यागमें ऋत्विज आपको गोदुग्ध मिले हुए सोम से महाधनकी प्राप्तिके लिये हर्षित करें और आप भी प्यासा गौरमृग सरोवरके जलको जैसे पीता है तिस प्रकार सोमको पीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अभि । प्र । गोऽपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

सूनुम् । सत्यस्य । सत्ऽपतिम् ॥ ४ ॥

हे स्तोतः गोपतिम् स्वर्गस्य गवां वा स्वामिनम् इन्द्रम् यथा येन प्रकारेण विदे अस्मान् स्वीयतया जानाति । ⊛ विदेर्लट्येन लिडात्मनेपदम् । द्विर्वचनप्रकरणे "छन्दसि वेति वक्तव्यम्" इति द्विर्वचनाभावः । "यावयथाभ्याम्" इति निघातप्रतिषेधः ।

प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॥ तथा गिरा अभि प्रार्च गिर्वणम् अभ्यर्च पूजय । कीदृशम् इन्द्रम् । सत्यस्य सत्यफलस्य यज्ञस्य सत्यस्यैव वा सूनुम् पुत्रस्थानीयम् । यत्र यज्ञस्तत्रेन्द्र इति पितृपुत्रवद् अव्यवहितसंबन्धात् सूनुत्वोपचारः । सत्पतिम् सतां सत्सेवकानां पालयितारम् ॥

हे स्तोताओ ! स्वर्गके स्वामी इन्द्रदेव जिस प्रकार हमको अपना समझें तैसी वाणीसे आप उनकी पूजा करिये । यह इन्द्रदेव सत्यफल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं [जहाँ यज्ञ होता है वहाँ इन्द्र होते हैं, इस प्रकार पिता पुत्रकी समान अव्यवहित सम्बंध होनेसे पुत्रत्वका उपचार है] और यह इन्द्रदेव सज्जन सेवकोंका पालन करने वाले हैं ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमी ॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥

आ । हरयः । ससृज्रिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि ।
यत्र । अभि । सम्ऽनवामहे ॥ ५ ॥

अरुषीः अरुण्यः । अरुषम् इति रूपनाम । आरोचमानाः । ॥ आङ् पूर्वाद् रुचेर्बाहुलकाद् उषच् । टिलोपः । आकारह्रस्वश्च । "अन्येनो ङीप्" । शार्ङ्गरवादित्वाद् आद्युदात्तः ॥ । रक्तरूपा हरयः अधि बर्हिषि । ॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॥ । बर्हिषि आस्तीर्णे आ ससृज्रिरे आससृज्रिरे आसृज्यन्ताम् । इन्द्ररथम् इति शेषः । यत्र यस्मिन् बर्हिषि इन्द्रम् अभि संनवामहे अभिसंस्तुमः । ॥ णु स्तुतौ । "आदन्तस्य चिच्च" इति चित्त्वाद् धातुस्वरेण आद्युदात्तः ॥

रूपवान् घोड़े कुशाओंके बिछाने पर इन्द्रके रथको उन कुशाओं पर लावें जहाँ कि हम स्तुति कर रहे हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥

इन्द्राय । गावः । आऽशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ।
यत् । सीम् । उपऽह्वरे । विदत् ॥ ६ ॥

वज्रिणे वज्रयुक्ताय इन्द्राय गावो मधु मधुरम् आशिरम् आश्रयणसाधनं पयः दुदुहे दुहते । दुह प्रपूरणे । "बहुलं छन्दसि" इति लिटि रुट् । वचनव्यत्ययः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः । यद्वा इरेच इकारलोपश्छान्दसः । चित्त्वाद् अन्तोदात्तः । यत् यदा उपह्वरे समीपे वर्तमानं मधु मधुवत् स्वादुभूतं सोमं सीम् सर्वतः विदत् स इन्द्रो लभते । विद्लृ लाभे । लृदित्वाद् अङ् । "बहुलं छन्दसि०" इति अडभावः । "निपातैर्यद्यदि०" इत्यादिना निघातप्रतिषेधः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॥

इति तृतीयेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

जब इन्द्रदेव समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादु सोमको सब ओरसे पाते हैं तब वज्रधारी इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (३३८)

"आ तू न इन्द्र मद्र्यक्" इति सूक्तस्य अतिरात्रे मध्यमे रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"आ तू न इन्द्र मद्र्यक्" सूक्तका अतिरात्रके मध्यम रात्रिपर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

आ । तु । नः । इन्द्र । मद्र्यक् । हुवानः । सोमऽपीतये ।
हरिऽभ्याम् । याहि । अद्रिऽवः ॥ १ ॥

हे अद्रिवः । अद्रिरिति वज्रनाम इन्द्र हुवानः हूयमानस्त्वं मद्र्यक् मदभिमुखः सन् नः अस्मदीये यज्ञे सोमपीतये सोमपानार्थम् हरिभ्याम् आ याहि आगच्छ । ❀ मद्र्यग इति । माम् अञ्चतीति "ऋत्विग्दधृक्०" इत्यादिना क्विन् प्रत्ययः। "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" इति अस्मच्छब्दस्यैकवचने मपर्यन्तस्य मादेशः । "विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये" इति टेः अद्रि इत्यादेशः। अद्रिसध्र्योरन्तोदात्तनिपातनं कृत्स्वरनिवृत्त्यर्थम्" इति वचनाद् अद्र्यादेशोऽन्तोदात्तः। यणादेशे कृते "उदात्तस्वरितयोर्यणः०" इति यणः स्वरितत्वम् । "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इति कुत्वम् ❀ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आह्वान किये जाते हुए आप हमारे अभिमुख होकर, हमारे यज्ञमें सोमपान करनेके लिये हरि नामक घोड़ोंके द्वारा आइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

सत्तः । होता । नः । ऋत्वियः । तिस्तिरे । बर्हिः । आनुषक् ।
अयुज्रन् । प्रातः । अद्रयः ॥ २ ॥

हे इन्द्र नः अस्मदीये यज्ञे होता एतन्नामक ऋत्विक् ऋत्वियः प्राप्तकालः सन् । ❀ "छन्दसि घस्" इति घस् । यणादेशः । प्रत्ययस्वरः ❀ । सत्तः निषण्णोभूत् । ❀ कर्तरि क्तः । सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् निष्ठानत्वाभावः ❀ । तथा बर्हिः वेद्याम् आनुषक् अनुषक्तं परस्परसंबद्धं यथा भवति तथा तिस्तिरे स्तीर्णम् अभूत् । ❀ स्तृञः कर्मणि लिटि रूपम् । "ऋत इद्धातो" इति इत्वम् । द्विर्वचनम् । "शर्पूर्वाः खयः" इति तकारस्य शेषः । "लिटस्तझयोरेशिरेच्" इति एश् इत्यादेशः ❀ । एवं प्रातः प्रातःसवने अद्रयः ग्रावाणः सोमाभिषवार्थम् अयुज्रन् संगता अभूवन् ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञमें होतानामक ऋत्विज समय आने पर उपस्थित हैं तथा वेदीमें कुशा भी परस्पर मिले हुए बिछे हुए हैं। इसी प्रकार प्रातःसवनमें सोमाभिषवके पत्थर भी सोमका अभिषव करनेके लिये संगत होगए हैं ॥ २ ॥

॥ तृतीया ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद। वीहि शूर पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

इमा । ब्रह्म । ब्रह्मऽवाहः । क्रियन्ते । आ । बर्हिः । सीद । वीहि । शूर । पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मवाहः । ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्ररूपेण प्राप्यत इति ब्रह्मवाहाः । तस्य संबोधनम् । तादृश इन्द्र तुभ्यम् इमा इमानि ब्रह्म ब्रह्माणि स्तोत्राणि अस्माभिः क्रियन्ते । अतस्तदर्थं बर्हिः आ सीद उपविश । हे शूर शौर्योपेत इन्द्र आसनस्त्वं पुरोलाशम् अस्माभिर्दीयमानं वीहि भक्षय ॥

हे मन्त्रोंसे प्राप्त होने योग्य वज्रधारी इन्द्र ! हम आपके लिये इन स्तोत्रोंको कर रहे हैं, अत एव आप कुशाओं पर विराजिये। हे शूरतासम्पन्न इन्द्र ! विराजमान हुए आप हमारे दिये हुए पुरोडाशका भक्षण करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ररन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

ररन्धि । सवनेषु । नः । एषु । स्तोमेषु । वृत्रऽहन् ।
उक्थेषु । इन्द्र । गिर्वणः ॥ ४ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिर्वननीय इन्द्र हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तः हे इन्द्र नः अस्माकं सवनेषु त्रिष्वपि एषु क्रियमाणेषु स्तोमेषु स्तोत्रेषु उक्थेषु शस्त्रेषु च ररन्धि रमस्व । रमतेर्लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः ॥ "वा छन्दसि" इति हेः पित्त्वेन

. . . र करने वाले इन्द्र ! आप तीनों सवनोंमें कहे जाने वाले स्तोत्रोंमें और शस्त्रों में भी रमण करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥

मतयः । सोमऽपाम् । उरुम् । रिहन्ति । शवसः । पतिम् ।
इन्द्रम् । वत्सम् । न । मातरः ॥ ५ ॥

मतयः-अस्माभिः क्रियमाणाः स्तुतयः । ❀ मन ज्ञाने इत्यस्मात् कर्मणि "मन्त्रे वृष०" इत्यादिना क्तिन्नुदात्तः ❀ । उरुम् महान्तं सोमपाम् सोमस्य पातारं शवसः बलस्य पतिम् स्वामिनम् इन्द्रं रिहन्ति लिहन्ति प्राप्नुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः । वत्सं न मातरः यथा वत्सं मातरो गावो लिहन्ति तद्वत् ॥

हमारी की हुई स्तुतियें सोमका पान करनेवाले बलके स्वामी महान् इन्द्रदेवको इस प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार बछड़ेको गौएँ चाटती हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

सः । मन्दस्व । हि । अन्धसः । राधसे । तन्वा । महे । न । स्तोतारम् । निदे । करः ॥ ६ ॥

— हे इन्द्र स तथाविधस्त्वं तन्वा तव शरीरेण निमित्तेन शरीरबलाय अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य पानेन मन्दस्व हृष्टो भव । ❀ मदेर्मोदार्थस्य लोटि रूपम् । नात्र हिशब्दयोगाद् निघातप्रतिषेधः । हिरत्र समुच्चयार्थत्वात् ❀ । महे राधसे धनाय प्रभूतधनाय च । हर्षणस्य प्रयोजनद्वयम् । हृष्टस्येन्द्रस्य शरीरवृद्धिः हविःप्रदातुर्यजमानस्य धनलाभश्च हि । किंच ते स्तोतारं मां निदे परकृतनिन्दायै । ❀ संपदादिलक्षणः क्विप् । आगमानुशासनस्य अनित्यत्वान्नुमभावः ❀ । न करः नाकार्षीः । ❀ करोतेर्लुङि च्लेरङ् ❀ ॥

हे इंद्रदेव ! ऐसे आप शारीरक बलके लिये सोमरूपी अन्न के पानसे हर्षमें भरिये, बहुतसे धनके लिये भी हर्षमें भरिये ।

[हर्षमें भरनेके दो प्रयोजन हैं, १ हर्षमें भरे हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ हविःप्रदाता यजमानको धनकी प्राप्ति] और मुझ स्तोताको दूसरेकी निंदामें न लगाइये ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वाऽयवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।
उत । त्वम् । अस्मऽयुः । वसो इति ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना वयं हविष्मन्तः हविस्तैन सोमलक्षणेन हविषा तद्वन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः । ❀ त्वायव इति । इन्द्रार्थे क्यचि मपर्यन्तस्य त्वादेशः "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्यये त्वायव इति भाषी । "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति अविभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । प्रत्ययस्वरः ❀ । उत अपि च हे वसो सर्वस्य वासक इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमतप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कामना करते हुए हम, दी जाने वाली सोममयी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करते हैं । और हे वासक इन्द्रदेव ! आपको हमें अभिमत फल देना चाहिये ७

अष्टमी ॥

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ्याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मा । आरे । अस्मत् । वि । मुमुचः । हरिऽप्रिय । अर्वाङ् । याहि ।

इन्द्र । स्वधाऽवः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिप्रिय । हरी एतन्नामानावश्वौ प्रियौ यस्य स तथोक्तः । तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः आरे दूरे मा वि मुमुचः । हरिप्रियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावश्वौ मा विमोचय किं तु रथारूढ एव अर्वाङ् अस्मदभिमुखं याहि आगच्छ । आगत्य च हे स्वधावः हविर्लक्षणेनान्नेन तद्वन्निन्द्र इह अस्मिन् देवयजने मत्स्व सोमपानेन हृष्टो भव । ※ यदि स्तुतीत्यादि । अस्य लोटि "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वाद् अनिघातः ※ ॥

हे हरि नामक अश्वोंको प्रिय समझने वाले इन्द्र ! आप अपने रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरूढ़ ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके पात्र इन्द्र ! इस देवयागमें सोमपानसे प्रसन्न हूजिये ॥ ८ ॥

॥ नवमी ॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुऽखे । रथे । वहताम् । इन्द्र । केशिना । घृतस्नू इति घृतऽस्नू । बर्हिः । आऽसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सुखे शरीरापीडनेन सुखकरे रथे केशिना केशवन्तौ स्कन्धप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्तौ घृतस्नू श्रमजनितस्वेदोदकस्राविणावश्वौ आसदे आसदनीयं बर्हिः अर्वाञ्चम् अभिमुखं वहताम् प्रापयताम् । ※ घृतस्नू इति । घृतशब्दात् स्नु प्रस्रवणे इत्यस्मात् संपदादिलक्षणः क्विप् । घृतस्य स्नु स्नवतौ

[हर्षमें भरनेके दो प्रयोजन हैं, १ हर्षमें भरे हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ हविःप्रदाता यजमानको धनकी प्राप्ति] और मुझ स्तोताको दूसरको निंदामें न लगाइये ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वाऽयवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।
उत । त्वम् । अस्मऽयुः । वसो इति ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना वयं हविष्मन्तः दिक्षितेन सोमलक्षणेन हविषा तद्वन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः । ❀ त्वायव इति । इन्द्रार्थे क्यचि मपर्यन्तस्य त्वादेशो "वयात्छन्दसि" इति उप्रत्यये त्वायव इति भाष्ये । "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति अविभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । मन्ययस्वरः ❀ । उत अपि च हे वसो सर्वस्य वासक इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमतप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कामना करते हुए हम, दी जाने वाली सोमरूपी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करते हैं । और हे वासक इन्द्रदेव ! आपको हमें अभिमत फल देना चाहिये ७

अष्टमी ॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मा । आरे । अस्मत् । वि । मुमुचः । हरिऽप्रिय । अर्वाङ् । याहि ।

इन्द्र । स्वऽपाः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिप्रिय । हरी एतन्नामानावश्वौ प्रियौ यस्य स तथोक्तः । तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः आरे दूरे मा वि मुमुचः । हरिप्रियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावश्वौ मा विमोचय किं तु रथारूढ एव अर्वाङ् अस्मदभिमुखं याहि आगच्छ । आगत्य च हे स्वपावः हविर्लक्षणेनान्नेन तद्वन्निन्द्र इह अस्मिन् देवयजने मत्स्व सोमपानेन हृष्टो भव । ॐ मदि स्तुतीत्यादि । अस्य लोटि "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविद्यमानवत्वाद् अनिघातः ॐ ॥

हे हरि नामक अश्वोंको प्रिय समझने वाले इन्द्र ! आप अपने रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरूढ़ ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके पात्र इन्द्र ! इस देवयागमें सोमपानसे प्रसन्न हूजिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुऽखे । रथे । वहताम् । इन्द्र । केशिना । घृतस्नू इति घृतऽस्नू । बर्हिः । आऽसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सुखे शरीरापीडनेन सुखकरे रथे केशिना केशवन्तौ स्कन्धप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्तौ घृतस्नू श्रमजनितस्वेदोदकस्राविणावश्वौ आसदे आसदनाय बर्हिः अर्वाञ्चम् अभिमुखं वहताम् प्रापयताम् । ॐ घृतस्नू इति । घृतशब्दात् स्नु प्रस्रवणे इत्यस्मात् सत्सूद्विषेत्यादिना क्विप् । घृतस्य स्नु स्नवत्

ययोस्ताविति बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः । आसदे । कृत्यार्थे केन् प्रत्य ... ॥

हे इन्द्रदेव ! शरीरको सुख देने वाले रथमें विराजमान आपको लम्बे अयाल वाले, श्रमकी बूंदोंको बहाने वाले घोड़े, बैठने योग्य कुशासन पर हमारे अभिमुख लावें ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (१३९)

"उप नः सुतमा गहि" इति सूक्तस्य अतिरात्रे एव मध्यमे रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"उप नः सुतमागहि" इस सूक्तका अतिरात्रमें ही मध्यम रात्रिपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

उप । नः । सुतम् । आ । गहि । सोमम् । इन्द्र । गोऽआशिरम् । हरिऽभ्याम् । यः । ते । अस्मऽयुः ॥ १ ॥

हे इन्द्र नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतं गवाशिरम् गव्यं पयः आश्रयणसाधनं यस्य तम् । ... आङ्पूर्वात् श्रीणातेः क्विपि "अपस्पृधेथाम् आनृचुः०" इत्यादिना शिर् इत्यादेशः । बहुव्रीहौ पूर्वपदस्वरः ... । तं सोमं प्रति उप आ गहि समीपे आगच्छ । यतः हरिभ्याम् अश्वाभ्यां युक्तः ते तव रथः अस्मयुः अस्मान् कामयमानो वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे अभिषुत गवाशिर (गौके दूधमें औटे हुए) सोमके समीप आइये, क्योंकि-हरि नामक अश्वोंसे जुता हुआ आपका रथ हमारी कामना कर रहा है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।
कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥

तम् । इन्द्र । मदम् । आ । गहि । बर्हिःऽस्थाम् । ग्रावऽभिः । सुतम् ।
कुवित् । नु । अस्य । तृष्णवः ॥ २ ॥

हे इन्द्र तं प्रसिद्धं मदम् मदकरं बर्हिष्ठाम् बर्हिषि स्थितं ग्रावभिः पाषाणैः सुतम् अभिषुतं सोमम् अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ । नु क्षिप्रम् अस्य सोमस्य पानेन कुवित् । बहुनामैतत् । प्रभूतं यथा भवति तथा तृष्णवः तृप्तो भव । ❀ तृप प्रीणने इत्यस्य लेटि अडागमः । व्यत्ययेन श्नुविकरणः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुशाओं पर स्थित, मदकारी, पाषाणोंसे अभिषुत सोमको लक्ष्यमें रख कर आइये और शीघ्र ही इस सोमके पानसे अतितृप्त हूजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः ।
आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । इत्था । गिरः । मम । अच्छ । अगुः । इषिताः । इतः ।
आऽवृते । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् अच्छ इन्द्रम् अभिलक्ष्य मम गिरः स्तुतिरूपा वाचः इषिताः अस्माभिः प्रेरिताः सत्यः इतः अस्माद् देवयजनसकाशाद् इत्था इत्थम् उच्चार्यमाणप्रकारेण अगुः प्राप्ताः । ❀ इदम्-शब्दात् "था हेतौ च च्छन्दसि" इति व्यत्ययेन थाप्रत्ययः । इदम

"एतेतौ रथोः" इति इत् इत्यादेशः । प्रत्ययस्वरः ॐ । किमर्थम् । आवृते आवर्तनाय अस्मद्यज्ञं प्रति आगमनाय । ॐ इतु वर्तने । अस्य संपदादिलक्षणः क्विप् । मादिसमासः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । आवृत्तिरपि किमर्थेति तत्राह । सोमपीतये सोमपानाय ॥

इन्द्रको आचर्यमें रत्न कर इससे प्रेरित हुई इस देवयज्ञस्थलसे उच्चारण की हुई स्तुतिरूपा वाणियें हमारे यज्ञमें लानेके लिये और सोमपानके लिये इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये । स्तोमैः । इह । हवामहे ॥ ४ ॥
उक्थेभिः । कुवित् । आऽगमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रं देवं सोमस्य पीतये पानाय इह अस्मिन् यज्ञे स्तोमैः त्रिवृत्पञ्चदशादिस्तोमसाध्यैः स्तोत्रैः उक्थेभिः उक्थैः आज्यप्रउगादिशस्त्रसाध्याभिः स्तुतिभिश्च हवामहे आह्वयामः । स च आहूत इन्द्रः कुवित् बहुवारम् आगमत् अस्मद्यज्ञं प्रति आगच्छतु । ॐ गमेः लेटि अडागमः । कुवियोगाद् अनिघातः । "आगमा अनुदात्ताः" इति अटोनुदात्तत्वाद् धातुस्वरः । "तिङि चोदात्तवति" इति गतेः निघातः ॐ ॥

हम इन्द्रदेवको सोमपानके लिये इस यज्ञमें त्रिवृत् पञ्चदश आदि स्तोमसाध्य स्तोत्रोंसे और आज्य, प्रउगादि शस्त्रसाध्य स्तुतियोंसे भी आह्वान करते हैं । वह बुलाये हुए इन्द्रदेव हमारे यज्ञमें बहुत बार आवें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तान् । दधिष्व । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।
जठरे । वाजिनीवसो इति वाजिनीऽवसो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र इमे ग्रहचमससंस्थिताः सोमाः सुताः त्वदर्थम् अभिषवादिना संस्कृताः हे शतक्रतो बहुकर्मन् हे वाजिनीवसो अन्नधन । यद्वा वाजः अन्नं फलरूपम् आसिवति वाजिन्यः क्रियास्तासां वासक इन्द्र । ⊛ वाजशब्दान्मत्वर्थीय इनिः । "ऋन्नेभ्यः०" इति ङीप् ⊛ । तासां वसो । ⊛ "संबुद्धौ च" इति गुणः ⊛ । तान् त्वदर्थम् अभिषुतान् सोमान् जठरे दधिष्व धारय ॥

हे इन्द्र ! ये ग्रह चमस आदिमें स्थित सोम अभिषव आदि से आपके लिये संस्कृत किये गए हैं, हे अन्नधने इन्द्र ! इनको आप अपने उदरमें धारण करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

विद्म । हि । त्वा । धनम्ऽजयम् । वाजेषु । दधृषम् । कवे ।
अध । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥ ६ ॥

हे कवे क्रान्तप्रज्ञ इन्द्र त्वां त्वां वाजेषु संग्रामेषु दधृषम् अतिशयेन शत्रुधर्षकं धनंजयम् शत्रुधनस्य जेतारं विद्म जानीमः । अध अतः कारणात् ते तव सुम्नम् सुखं सुखकरं धनं वा ईमहे याचामहे ।

❀ धनंजयम् इति । जि जये इत्यस्माद् धन उपपदे "संज्ञायां भृतॄवृजि०" इति खच् । "अरुर्द्विषदजन्तस्य०" इति मुम् आगमः । दधृषम् इति । धृषेर्यङ्लुगन्तात् पचाद्यचि "यङोऽचि च" इति यङो लुक् । लघूपधगुणे प्राप्ते "न धातुलोपे०" इति तस्य प्रतिषेधः ❀॥

हे बुद्धिमान् इंद्र ! आपको हम संग्राममें शत्रुओंको दबाने वाला और शत्रुओंके धनको जीतने वाला जानते हैं । इस कारण हम आपके सुखकर धनकी याचना करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

इमम् । इन्द्र । गोऽआशिरम् । यवऽआशिरम् । च । नः । पिब । आऽगत्य । वृषऽभिः । सुतम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र गवाशिरम् । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । गव्यास्त्र्या-शीर्द्रव्योपेतं तथा यवाशिरं च यवैलक्षणमिश्रणद्रव्योपेतं वृषभिः वर्षकैर्ग्रावभिः सुतं नः अस्मदीयम् इमं सोमम् आगत्य अस्मदभिमुखं प्राप्य पिब पानं कुरु । ❀ गवाशिरं यवाशिरम् इत्युभयत्र आङ्पूर्वस्य श्रीणातेः क्विपि "अपस्पृधेथाम् आनृचुः०" इत्यादिना शिर् इत्यादेशः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ ॥

हे इंद्र ! आप गव्य और जौ मिले हुए, वर्षक पत्थरोंसे निचोड़े हुए इस सोमको आकर पीजिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

तुभ्य । इत् । इन्द्र । स्वे । ओक्ये । सोमम् । चोदामि । पीतये । एषः । ररन्तु । ते । हृदि ॥ ८ ॥

हे इन्द्र तुभ्य इत् तुभ्यमेव । ❀ "सुपां सुलुक्" इति सुपो लुक् ❀ । पीतये पानार्थं स्वे स्वीये ओक्ये ओकसि स्थाने जठरे । ❀ वस्वादित्वात् स्वार्थिको यत् ❀ । सोमं पीतये पानाय चोदामि प्रेरयामि । स एष पीतः सोमः ते तव हृदि हृदये ररन्तु अत्यर्थं रमताम् । ❀ रमु क्रीडायाम् इत्यस्य यङ्लुकि लोटि सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् अभ्यासस्य नुगभावः । संहितायाम् "अन्येषामपि दृश्यते" इति अभ्यासस्य दीर्घः ❀ ॥

हे इंद्रदेव ! मैं आपको ही पान करनेके लिये अपने जठररूप स्थानमें सोमको धारण करनेके लिये प्रेरणा करता हूँ, वह पिया हुआ सोम आपके हृदयमें वारम्बार रमण करता रहे ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

त्वाम् । सुतस्य । पीतये । प्रत्नम् । इन्द्र । हवामहे । कुशिकासः । अवस्यवः ॥ ९ ॥

हे इन्द्र प्रत्नम् पुरातनं त्वां सुतस्य अभिषुतस्य सोमस्य पीतये पानाय कुशिकासः कुशिकगोत्रोत्पन्ना वयम् अवस्यवः रक्षाकामाः सन्तो हवामहे आह्वयामः । ❀ कुशिकासो अवस्यवे इत्यत्र संहितायाम् "अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च" इति एङः प्रकृतिभावः ❀ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे इंद्रदेव ! कुशिकगोत्रमें उत्पन्न हुए रक्षा चाहते हुए हम आप प्राचीन देवताको अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (६४०)

"अश्वावति प्रथमः" इति सूक्तस्य अतिरात्रे क्रतौ मध्यमे

स्तवोतिभिः ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥

अश्वऽवति । प्रथमः । गोषु । गच्छति । सुऽप्रावीः । इन्द्र । मर्त्यः । तव । ऊतिऽभिः ॥

तम् । इत् । पृणक्षि । वसुना । भवीयसा । सिन्धुम् । आपः । यथा । अभितः । विऽचेतसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र यो मर्त्यस्तवोतिभिः रक्षाभिः सुप्रावीः सुष्ठु रक्षितो भवति स मर्त्यः अश्वावति बहुभिरश्वैस्तद्वति युद्धे यद्वा महदश्वोपेते जने । षष्ठ्यर्थे सप्तमी इत्यर्थः । तेषु प्रथमः मुख्यः सन् गच्छति

मुख्यो भवति । तथा गोषु गोमत्सु प्रथमो गच्छति । बहुपशुको भवतीत्यर्थः । त्वमपि भवीयसा बहुतरेण भवितृतमेन वा । बहुभावं प्राप्नुवता । ॐ भवितृशब्दात् "तुरछन्दसि" इति ईयसुन् । "तुरिष्ठेमेयःसु" इति तृलोपः ॐ । वसुना धनेन अभितः तमित् तमेव पुरुषं पृणक्षि संपृक्तं करोषि । ॐ पृची संपर्के । रौधादिकः ॐ । तत्र दृष्टान्तः । यथा विचेतसः विशिष्टज्ञानसाधना आपः यथा अभितः सिन्धुम् समुद्रं पूरयन्ति तद्वत् ॥

हे इन्द्र ! जो पुरुष आपकी रक्षाओंसे भली प्रकार रक्षित होता है, वह पुरुष बहुतसे अश्वों वाले युद्धमें या बहुतसे घुड़सवारोंमें मुख्य होजाता है । तथा गौओं वालोंमें भी मुख्य होता है अर्थात् बहुतसे पशुओं वाला होता है, और विशिष्ट ज्ञानके साधन जल चारों ओरसे समुद्रको भरते हैं, इसी प्रकार आप भी बहुतसे रूपोंको प्राप्त होनेवाले धनसे उसी पुरुषको सम्पन्न बनाते हैं

द्वितीया ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥

आपः । न । देवीः । उप । यन्ति । होत्रियम् । अवः । पश्यन्ति । विऽततम् । यथा । रजः ।
प्राचैः । देवासः । प्र । नयन्ति । देवऽयुम् । ब्रह्मऽप्रियम् । जोषयन्ते । वराःऽइव ॥ २ ॥

हे इन्द्र होत्रियम् होत्राहं त्वाम् आपो न देवीः द्योतमाना आपो यथा उपयन्ति उपगच्छन्ति निम्नं प्रदेशं समुद्रादिकं वा एवम् उप यन्ति त्वाम् उपगच्छन्ति। सामर्थ्यात् स्तुतयः स्तोतारो वेति लभ्यते। तथा अवः पश्यन्ति अवः अवस्तात् पश्यन्ति। तव स्वरूपं द्रष्टुम् अशक्ता इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः। यथा विततम् विस्तृतं रजः। "ज्योती रज उच्यत इति" निरुक्तम् [४। १६]। सर्वतो व्याप्तं सावित्रं तेजो यथा द्रष्टुम् अशक्ता अवस्तात् पश्यन्ति तद्वत्। किं च देवासः स्तोतार ऋत्विजः त्वां प्राचैः प्राचीनं प्र णयन्ति वेद्यभिमुखं गमयन्ति। यद्वा त्वदर्थं सोमम् अग्निं च प्राञ्चं प्र णयन्ति। प्रियम् इति प्रियम्। प्रज परिवृढं स्तोत्रं कर्म वा। तत् प्रियं यस्य स तादृशं त्वां वरा इव यथा वराः कन्या जोषयन्ते एवम् ऋत्विजो जोषयन्ते सेवन्ते ॥

हे इन्द्रदेव ! दमकते हुए जल जैसे निम्नस्थलमेंको वा समुद्र मेंको जाते हैं, इसी प्रकार स्तुतियें, होत्राहं आपको ही प्राप्त होती हैं। जैसे विस्तृत सूर्यके प्रकाशको देखनेमें असमर्थ हुए पुरुष नीचेको देखने लगते हैं, इसी प्रकार आपके स्वरूपसे चौंधाये हुए पुरुष भी नीचेको देखने लगते हैं। और स्तुति करने वाले ऋत्विज आप प्राचीनको वेदीके अभिमुख भेजते हैं, जैसे वर कन्याओंका सेवन करते हैं इसी प्रकार ऋत्विज आपका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अधि । द्वयोः । अदधाः । उक्थ्यम् । वचः । यतऽस्रुचा । मिथुना । या । सपर्यतः ।
असम्ऽयत्तः । व्रते । ते । क्षेति । पुष्यति । भद्रा । शक्तिः । यज-मानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् द्वयोर्हविर्धानयोरस्मदिष्टयोरधि उपरि उक्थ्यं उक्थं स्तोत्रं तद्योग्यं वचः "युजे वां ब्रह्म" [१८. ३. ३६] इत्यादि रूपम् उभयोर्मध्यवर्ति तृतीयच्छदिःस्थानीयं वचः वचनम् अध्यदधाः निहितवान् असि । उभे हविर्धाने विशेष्येते । यतस्रुचा यताः संबद्धाः स्रुचः ग्रहचमसादिलक्षणा यज्ञसाधनानि पात्राणि ययोस्ते तादृग्रूपे मिथुना युगलरूपेण वर्तमाने या ये हविर्धाने । ❀ सर्वत्र "सुपां सुलुक्"-इति विभक्तेराकारः ❀ । तादृशे हविर्धाने सपर्यतः इन्द्रं पूजयतः । सोमपानोचितपात्रधारणद्वारेणेति भावः । तयोरधीति पूर्वत्रान्वयः ॥ किं च हे इन्द्र ते व्रते तव कर्मणि त्वदुद्देश्ये यागे यजमानः असंयत्तः व्यापान्तरेष्वसंबद्धः सन् क्षेति निवसति पुष्यति आत्मानं प्रजापश्वादिना । सुन्वते त्वदर्थम् अभिषवं कुर्वते यजमानाय । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । तस्य भद्रा कल्याणी शक्तिः बलम् अस्तु । त्वदनुग्रहादु इति शेषः ॥ अयं मन्त्र ऐतरेयब्राह्मणे व्याख्यातः । "अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वच इति । द्वयोर्ह्येतत् तृतीयं छदिरधिनिधीयते ॥ उक्थ्यं वच इति यदाह यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यं वचो यज्ञमेवैतेन समर्धयति ॥ यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ॥ असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यतीति । यदेवादः पूर्वं यत्तत् पदम् आह तदेवैतेन शान्त्या शमयति ॥ भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वत इत्याशिषम् आशास्ते" इति [ऐ० ब्रा० १. २९]॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् ! जिनमें ग्रह चमस आदि आदिक यज्ञके

भावुन पात्र रखे हुए और जो युगलरूपसे वर्तमान दोनों हविर्धान सोमपानके योग्य पात्रधारणके द्वारा इन्द्रकी पूजा करते हैं उनके ऊपर स्तोत्रके योग्य आपने ("युजे वां ब्रह्म" १८ । ३ । २६ आदिक) तृतीयच्छदिस्थानीय उक्थ्य वचन स्थापित किया है । और हे इन्द्रदेव ! आपके उद्देशसे किये जाने वाले यागमें अनन्यभावसे लगा हुआ यह यजमान अपनेको भी पशु आदिसे पुष्ट करे और आपके अनुग्रहसे इसको कल्याणी शक्ति प्राप्त हो ३

चतुर्थी ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया । सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

आत् । अङ्गिराः । प्रथमम् । दधिरे । वयः । इद्धऽअग्नयः । शम्या । ये । सुऽकृत्यया । सर्वम् । पणेः । सम् । अविन्दन्त । भोजनम् । अश्वऽवन्तम् । गोऽमन्तम् । आ । पशुम् । नरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र अङ्गिराः अङ्गिरसः ("सुपां सुलुक्०" इत्यादिना जसः सुः) । प्रथमम् अग्नौ वयः हविर्लक्षणम् अन्नम् आत् अनन्तरमेव यदा पणिभिर्गावोऽपहृतास्तदानीमेव दधिरे अधारयन् त्वदर्थं संपादितवन्तः । कीदृशा अङ्गिरसः । ये सुकृत्यया कृतिः करणं व्यापारः शोभनं व्यापारो येषां तेन शम्या कर्मनामैतत् । कर्मणा अग्निष्टोमादिलक्षणेन निमित्तेन इद्धाग्नयः प्रज्वलिताग्न-

नीयायग्निमन्तस्ते नरः नेतारः अङ्गिरसः पणेः। एतन्नामकस्यासुरस्य सर्वम् यत्द् अपहृतम् आसीत् तत् सर्वं भोजनम् धनं सम विन्दन्त समलभन्त। भोजनं विशिनष्टि। अश्वावन्तम् बहुभिरश्वैर्युक्त गोमन्तम् बह्वीभिर्गोभिर्युक्तम्। आ इति चार्थे। पशुम् आ यक्ताश्वगोव्यतिरिक्तम् अजाव्यादि अन्यत् पशुजातं च समविन्दन्त ॥ –हे इन्द्र! अगिरा गोत्र वालोंने जब पणियोंने गौएँ छीनी थी उस समय पहिले ही आपके लिये हवीरूप अन्नको सम्पादन किया था। ये अंगिरावंशी अग्निष्टोम आदि शोभन कर्मोंसे आहवनीय अग्निको प्रज्वलित रखते हैं और इन नेता आंगिरसोंने पणि नामक असुरका छीना हुआ बहुतसे अश्वोंवाला और गौओं-वाला तथा भेड़ बकरी आदि वाला धन पाया था॥ ४॥

॥ पञ्चमी ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५॥

यज्ञैः। अथर्वा। प्रथमः। पथः। तते। ततः। सूर्यः। व्रतऽपाः। वेनः। आ। अजनि।

आ। गाः। आजत्। उशना। काव्यः। सचा। यमस्य। जातम्। अमृतम्। यजामहे॥ ५॥

अथर्वा एतन्नामा महर्षिः यज्ञैः इन्द्रम् उद्दिश्य क्रियमाणैर्यागैः साधनैः प्रथमः सूर्यादिभ्य पूर्वभूतः सन् पथः अपहृतानां गवां मार्गान् तते विस्तारितवान्। ज्ञातवान् इत्यर्थः। ततः अनन्तरं वेनः कान्तः सूर्यो व्रतपाः गवानयनकर्मणः पालयिता आजनि

प्रादुरभूत् । अन्धकाराद्विप्रहतां गवां प्रकाशकोऽभूद् इत्यर्थः । अनन्तरं काव्यः कवेः पुत्र उशना मृग्या सुचा इन्द्रसहायभूतः सन् गाः आयत् आभिमुख्येन प्रापत् । यमस्य सर्वनियन्तुः सूर्यस्य प्रयोजनाय जातम् प्रादुर्भूतम् अथ वा यमस्य यमात् नियन्तुरीश्वरात् जातम् अमृतम् अमरणधर्माणम् इन्द्रं यजामहे पूजयामः ॥

अथर्वा नामक महर्षिने इन्द्रके निमित्त किये हुए यागोंसे सूर्य आदिकसे पहिले होकर चुराई हुई गौओंके मार्गको जान लिया था । तदनन्तर गवायन कर्मके पालयिता कमनीय सूर्यदेव प्रादुर्भूत हुए थे अर्थात् उन्होंने अंधकारसे आवृत गौओंको प्रकाशित किया था । तदनन्तर कविके पुत्र उशनाने इन्द्रकी सहायता पाकर गौओंको अभिमुख होकर पाया था, नियन्ता ईश्वरसे प्रकट हुए अमरणधर्मी इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

बर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकम् । आऽघोषते । दिवि ।

ग्रावा । यत्र । वदति । कारुः । उक्थ्यः । तस्य । इत् । इन्द्रः । अभिऽपित्वेषु । रण्यति ॥ ६ ॥

यत् यस्य यज्ञस्य संबन्धि बर्हिः स्वपत्याय शोभनापत्याय फलाय यज्ञपात्राणां शोभनापतनाय वा वृज्यते छिद्यते । आस्तीर्यत इत्यर्थः । ❀ यच्छब्दयोगाद् अनिघातः ❀ । अर्को वा अर्च-

नसाधनमन्त्रोपेनो होता च श्लोकम् । वाङ्नामैतत् । वागात्मकं शास्त्रादिकं यत् यत्र दिवि द्योतमाने यज्ञे आघोषते उच्चारयति । ❀ अत्रापि यच्छब्दोऽनुवर्तते । यद्योगाद् अनिघातः ❀ । यत्र च यज्ञे ग्रावा अभिषवसाधनः पाषाणः कारुरवध्यः । लुप्तोपमम् एतत् । उक्थाहः स्तोतेव वदति शब्दं करोति । तस्येत् तादृशस्यैव यज्ञस्य अभिपित्वेषु समीपदेशेषु इन्द्रो देवः रणयति रमते । उक्त लक्षणो यागः अस्मदर्थं भविष्यतीति हर्षशब्दं करोति वा ❀ रमु क्रीडायाम् । व्यत्ययेन श्यन् परस्मैपदं च । अन्त्यविकारश्छा न्दसः । यद्वा रण शब्दार्थः । व्यत्ययेन श्यन् ❀ ॥

– जो यज्ञकी कुशा शोभन सन्तानरूप फलको पानेके लिये बिछाई जाती है, पूजाके साधनसे सम्पन्न होता भी जिस वागात्मक शास्त्र आदिका द्योतमान यज्ञमें उच्चारण करता है और जिस यज्ञमें अभिषवका साधन पाषाण उक्थाह स्तोताकी समान शब्द करता है, उस यज्ञके समीपके स्थानोंमें इन्द्र रमण करते है ६

सप्तमी ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ७ ॥

प्र । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयर्मि । सत्याम् । प्रऽयै । सुतस्य । हरिऽअश्व । तुभ्यम् ।
इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्या । गृणानः ॥ ७ ॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमतफलवर्षित्रे प्रयै शङ्कृष्टगमनाय तुभ्यं सुतस्य अभिषुतस्य सोमरसस्य उग्राम् उद्गूर्णबलां सत्याम् अवितथसामर्थ्यां पीतिम् पानं मेयमि प्रेरयामि। हे इन्द्र त्वं च इह अस्मिन् यज्ञे धेनाभिः प्रीणयित्रीभिः विश्वाभिः सर्वाभिः धीभिः स्तुतिभिस्तदात्मकैः कर्मभिः। यद्वा धेनेति वाङ्नाम। धीपूर्विकाभिः स्तुतिभिः शच्या। कर्मणामेतत्। कर्मणा यागेन निमित्तेन बलेन वा गृणानः स्तूयमानो मादयस्व हृष्टो भव ॥

इति तृतीयेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! अभिलषित फलकी वर्षा करने वाले और श्रेष्ठ गमन वाले आपके लियेमैं अभिषुत सोमरसकी उद्गूर्ण बलशालिनी पीति (पान) को प्रेरित करता हूँ। और हे इन्द्रदेव ! आप भी इस यज्ञमें प्रसन्न करने वाली सकल स्तुतियोंसे और कर्मसे स्तुति पाते हुए प्रसन्न हूजिये ॥

तृतीय अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त (६४१)

"योगेयोगे तवस्तरम्" इति चत्वारि सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ तृतीये रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्तानि। तत्र आद्या तृचो स्तोत्रियानुरूपौ। "उत्तम आरोहोसि" इत्यारभ्य सूत्रितं वैताने। "योगेयोगे तवस्तरम् [२०. २६. १] युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम् [२०. २६. ४]" इति स्तोत्रियानुरूपौ। अपाः पूर्वेषाम् [२०. ३२. ३] इति परिधानीया। ऊती शचीवः [२०.३३.३] इति याज्या" इति [वै० ४. २] ॥

अत्रापि "ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि। अन्त्यं पङ्क्तः पर्यासः" इति [वै० ४. २] सूत्रितत्वाद् "यदिन्द्राहम्" इत्युत्तरेषां त्रयाणां सूक्तानाम् अत्रैव तृतीयपर्याये ब्रह्मशस्त्रे विनियोग उपपन्नः। अत एव "प्र ते महे" इति सूक्तस्य अन्तिमा "अपाः पूर्वेषाम् [२०, ३२. ३] इत्येषा ऋक् परिधानीया" इति सूत्रितम् [वै० ४.२] ॥

-"योगे योगे तवस्तरम्" ये चार सूक्त अतिरात्र क्रतुके तृतीय रात्रिपर्यायमें -ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियुक्त होते हैं। इनमें पहिले दो तृच स्तोत्रियानुरूप हैं। "उत्तम आरोहोऽसि" का आरम्भ करके वैतानसूत्रमें सूचित किया है, कि-"योगे योगे तवस्तरम् (२० । २६ । १) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम् (२० । २६ । ४) इति स्तोत्रियानुरूपौ । अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इति परिधानीया । ऊती शचीवः (२० । ३३ । ३) इति याज्या" (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

यहाँ भी "ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः" इस प्रकार वैतानसूत्र ४ । २ में सूचित होनेसे "यदिन्द्राहम्" आदि अगले तीन सूक्तोंका यहाँ ही तृतीयपर्यायके ब्रह्मशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है। अत एव "प्र ते महे" सूक्तकी अन्तिम ऋचा परिधानीया है "अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इत्येषा ऋक् परिधानीया' वैतानसूत्र ४ । २

तत्र प्रथमा ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

योगेऽयोगे । तवःऽतरम् । वाजेऽवाजे । हवामहे ।

सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ १ ॥

योगेयोगे शत्रुसेनादेः संगमेसंगमे सति सत्त्वगाणकर्मणः संग्रामे मत्या वा । ॐ युजिर् योगे । 'हलश्च' इति घञ् । "चजोः कु घिण्ण्यतो." इति कुत्वम् । आद्युदात्तत्वम् । "नित्यवीप्सयो." इति वीप्सायां द्विर्भावे सति आम्रेडितानुदात्तत्वम् ॐ । तवस्तरम् अतिशयेन बलवन्तम् इन्द्रम् । ॐ तवस्शब्दात् "अस्मायामेधा०"

इति मत्वर्थीयो विनिः। तस्य छान्दसो लोपः ॐ। सखायः सखिभूता वयम् ऊतये रक्षणाय हवामहे आह्वयामः। तथा वाजेवाजे अन्नेऽन्ने यदायदा अन्नं लब्धव्यं भवति तदातदा उक्तमहिमोपेतम् इन्द्रं हवामहे ॥

शत्रुसेना आदिका योग होने पर वा प्रत्येक यागकर्मकी प्राप्ति होने पर मित्रभूत हम बली इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा जब २ अन्नप्राप्तिका अवसर आता है तब हम २ इन्द्रदेवका आह्वान किया करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ घा गमद् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

आ। घ। गमत्। यदि। श्रवत्। सहस्रिणीभिः। ऊतिऽभिः। वाजेभिः। उप। नः। हवम् ॥ २ ॥

स इन्द्रः यदि नो हवम् आह्वानं श्रवत् शृणुयात्। ॐ शृणोतेर्लेट्यडागमः ॐ। तर्हि सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यायुक्ताभिः ऊतिभिः वाजेभी रक्षाभिः वाजैरन्नैश्च सह। घेति प्रसिद्धौ। उपागमत् उपागच्छेदेव। ॐ गमेर्लेट्यडागमः। "इतश्च लोपः" इति इकारलोपः। यद्वा छान्दसे लुङि "पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु" इति च्लेः अङ् आदेशः। "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इति अडभावः ॐ ॥

वह इन्द्रदेव यदि आह्वानको सुनें तो सहस्रों रक्षाओं और अन्नोंके साथ समीपमें अवश्य आवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।

यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

अनु । प्रत्नस्य । ओकसः । हुवे । तुविऽप्रतिम् । नरम् ।

यम् । ते । पूर्वम् । पिता । हुवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र प्रत्नस्य पुरातनस्य ओकसः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य अधिपतिं तुविप्रतिम् बहूनां योद्धॄणां प्रतिनिधिभूतं नरम् नेतारं त्वाम् अनु आनुलोम्येन हुवे आह्वयामि । यं ते त्वां पूर्वम् पूर्वकाले पिता मदीयस्तातः स्वाभिमतसिद्ध्ये हुवे आहूतवान् । तम् इन्द्रं हुवे इति पूर्वत्र संबन्धः । ॐ ह्वेञो लिटि "बहुलं छन्दसि" इति संप्रसारणपरपूर्वत्वे । द्विर्वचनप्रकरणे "छन्दसि वेति वक्तव्यम्" इति द्विर्वचनाभावः । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । प्रत्ययस्वरः । पूर्वस्य तु पादादित्वाद् अनिघातः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! पुरातन स्वर्ग नामक स्थानके अधिपति और बहुतसे योधाओंके प्रतिनिधिरूप आपका मैं आह्वान करता हूँ । पूर्वकालमें मेरे पिताने अभिमतसिद्धिके लिये आपका आह्वान किया था, ऐसे आपको ही मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नम् । अरुषम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ।

रोचन्ते । रोचना । दिवि ॥ ४ ॥

ब्रध्नम् महान्तम् । महन्नामैतत् । अरुषम् आरोचमानं तस्थुषः स्थावरान् परि । चतङ्गमानाम् अपि उपलक्षणम् । स्थावरजङ्ग-

मानाम् उपरि चरन्तम् स्वर्गनिस्थान् सूर्यात्मना वा परिचरन्तम् एवंमहानुभावम् इन्द्रं युञ्जन्ति रथे योजयन्ति । अत्र सामर्थ्यात् हरिनामकान् अश्वान् इति गम्यते । रोचना रोचनानि रथयुक्तानाम् अश्वानां रथस्य च रश्मयो दिवि रोचन्ते दीप्यन्ते ॥ अयं मन्त्रः उत्तरमन्त्रे "युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी" इति हर्यो रथयोजनाभिधानात् तदनुसारेण केवलेन्द्रपरतया व्याख्यातः । तदनन्तरमन्त्रे "केतुं कृण्वन्नकेतवे" इति केतूपाधिकस्य इन्द्रस्याभिधानात् तदनुसारेणायं सूर्यात्मकेन्द्रपरतयापि व्याख्येयः । ब्रध्नशब्दः सूर्यपर्यायः । बध्नाति नियमयति सर्वं जगद् इति ब्रध्नः सूर्यः । तं रथे युञ्जन्ति हरितोऽश्वाः । अरुषं चरन्तं परितस्थुष इत्येतद् समानम् । तस्य रोचना रोचनानि रश्मिजालानि दिवि रोचन्त इति ॥ अयं मन्त्रो ब्राह्मणे

"

। आग्निर्वा अरुषः ।

वायुर्वै चरन् । वायुमेवास्मै युनक्ति । परि तस्थुष इत्याह । इमे वै लोकाः परि तस्थुषः । इमान् एवास्मै लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवीत्याह । नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । नक्षत्राण्येवास्मै रोचयति" इति [तै० ब्रा० ३. ९. ४. २] ॥

महान्, दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह दमकते हुए अश्व द्युलोकमें दमकते हैं । [तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । ९ । ४ । २ में इस मंत्रकी आदित्य अग्नि वायु और लोकपरक व्याख्या भी की है] ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणां धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विऽपक्षसा । रथे । शोणा । धृष्णू इति । नृऽवाहसा ॥ ५ ॥

अस्य उक्तलक्षणेन्द्रस्य रथे हरी एतन्नामानावश्वौ युञ्जन्ति रथे योजयन्ति सारथयः। कीदृशौ। काम्या काम्यौ कामयितव्यौ विपक्षसा विविधे पक्षसी स्वीये रथसंबन्धिनी वा ययोस्तौ तादृशौ। रथोभयपार्श्वस्थिनावित्यर्थः। शोणा रक्तवर्णौ धृष्णू धर्षकौ नृवाहसा नृणां सारथिप्रभृतीनां वोढारौ ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते है। ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करवटोंमें रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।

समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

केतुम् । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे । सम् । उषत्ऽभिः । अजायथाः ॥ ६ ॥

हे मर्याः मरणधर्माणो मनुष्याः। अयं सूर्यात्मकम् इन्द्रो परेय तेति शेषः। अकेतवे प्रज्ञानरहिताय जनाय केतुम् प्रज्ञानं कृण्वन् कुर्वन् तथा अपेशसे अन्धकारावृतत्वेन रूपरहिताय पदार्थाय पेशः रूपं कृण्वन् उषद्भिः ओषकैः रश्मिभिः उषोभिर्वा सह सम् अजा-

यथाः । ❀ व्यत्ययेन मध्यमः ❀ । समजायत संभूतः ॥ एवं सूर्यात्मना संभूतम् हे मर्ताः पश्यतेत्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे मरणधर्मा मनुष्यों ! अज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (६४८)

"यदिन्द्राहम्" इति सूक्तस्य अतिरात्रे तृतीये पर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ।

"यदिन्द्राहम्" सूक्तका अतिरात्रके तृतीयपर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । अहम् । यथा । त्वम् । ईशीय । वस्वः । एकः । इत् ।
स्तोता । मे । गोऽसखा । स्यात् ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त यथा त्वम् एक इत् देवानां मध्ये एक एव वस्वः वासकस्य धनस्य ईशिषे तथा यत् यदि अहमपि एक एव वस्वः वसुनो धनस्य ईशीय ईश्वरः स्याम् , तर्हि यथा तव स्तोता गोषखा स्यात् एवं मे मम स्तोतापि गोषखा स्यात् । बह्वीनां गवां स्वामी भवेत् । दानलक्षणम् एतत् । सर्वैश्वर्ययुक्तो भवतीत्यर्थः । तस्मात् तव स्तोतारं मां त्वत्सदृशं कुर्वित्यभिप्रायः । ❀ गोषखेत्यत्र सुषामादित्वात् षत्वम् । दासीभारादित्वात् पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण आद्युदात्तः ❀ ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न इन्द्र ! जैसे आप देवताओंमें धनके अनुत्तम स्वामी हैं, इसी प्रकार मैं भी धनका एक ही ईश्वर रहूँ ! जैसे आपका स्तोता गौओं का सखा होता है। इसी प्रकार मेरा स्तोता गौ आदि सब वस्तुओंका स्वामी होवे। तात्पर्य यह है कि मुझ स्तोता को भी आप अपनी समान कर लीजिये ॥१॥

द्वितीया

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । अस्मै । दित्सेयम् । शचीऽपते । मनीषिणे ।
यत् । अहम् । गोऽपतिः । स्याम् ॥ २ ॥

हे शचीपते इन्द्र! अस्मै मनीषिणे मनस ईशित्रे स्तोत्रे दित्सेयम् दानानि दातुम् इच्छेयम् । ॐ दा दाने । सन् । "सनि मीमा०" इत्यादिना इस् भावः । "अत्र लोपोऽभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः । वाक्यभेदाद् अनिघातः "सस्यार्धधातुके" इति सकारस्य तत्वम् । "खरि च" इति त्वत्वम् ॐ। तथा शिक्षेयमपि प्रार्थितं धनं दद्यां च । ॐ शिक्षतिर्दानकर्मा ॐ । कदैतं स्याम् इति तत्राह । यत् यदा अहं तव स्तोता त्वदनुग्रहाद् गोपतिः स्यां तदा दित्सेयं शिक्षेयं च। तस्मान्मां तादृक्सामर्थ्यं कुर्विति भावः ॥

हे शचीपते इन्द्र ! मैं स्तोता जब आपके अनुग्रहसे गोपति हो जाऊँ तब इस विद्वान् स्तोताको धन देना चाहूँ और प्रार्थित धन दे भी सकूँ । तात्पर्य यह है कि इस लिये आप मुझमें ऐसी शक्ति दीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।

गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

धेनुः । ते । इन्द्र । सूनृता । यजमानाय । सुन्वते ।
गाम् । अश्वम् । पिप्युषी । दुहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र सूनृता वाङ्नामैतत् । अस्मदीया प्रियसत्यात्मिका वाक् ते तव धेनुः दोग्ध्री गौर्भूत्वा गोवत् प्रीणयित्री भूत्वा सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय पिप्युषी तमेव यजमानं वर्धयित्री सती गाम् अश्वं च । उपलक्षणम् एतत् । गवाश्वादिकं सर्वम् अभिलषितं दुगे दुग्धे । ॐ छान्दसे लिटि द्विवचनप्रकरणे "छन्दसि वेति वक्तव्यम्" इति वचनात् द्विवचनाभावः । पिप्युषी । स्फायी ओप्यायी वृद्धौ । अस्माल्लिट् । "प्यायः पी" । "लिड्यङोश्च" इति परत्वेन द्विवचनात् पूर्वमेव पीभावः । पुनःप्रसङ्गविज्ञानाद् द्विर्वचनम् अभ्यासस्य ह्रस्वः । "क्वसुश्च" इति लिटः क्वसुरादेशः । "उगितश्च" इति ङीपि कृते "वसोः संप्रसारणम्" इति संप्रसारणम् । "आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वम् । मत्वर्थस्वरेण मध्योदात्तः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी सत्य और प्रिय वाणी आपको गौकी समान तृप्त करती हुई, सोमाभिषव करनेवाले यजमानके लिये बढ़ोतरी करती हुई सब गौ और घोड़े आदि अभिलषित पदार्थों को दुहती है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

न । ते । वर्ता । अस्ति । राधसः । इन्द्र । देवः । न । मर्त्यः ।
यत् । दित्ससि । स्तुतः । मघम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! ते तव राधसः धनस्य वर्ता निवारको नास्ति नास्त्येव। निवारणनिषेधस्य उपयोगसिद्धये निषेध्यान् संभावितान् निर्दिशति देवो न मर्त्य इति। वर्ता देवो नास्ति। वर्ता मर्त्यो मनुष्योपि नास्ति। यत् यदि स्तुतः अस्माभिः स्तुतिं प्राप्तः मघ्यापितगुणः सन् मघम् मंहनीयं धनं दित्ससि दातुम् इच्छसि। तर्हि वर्ता न कोप्यस्ति॥

हे इंद्र! आपके धनका निवारक कोई नहीं है। देवता आपके धनको नहीं हटा सकते, मनुष्य भी आपके धनको नष्ट नहीं कर सकते, यदि आप हमसे स्तुति पाकर प्रशंसनीय धनको देना चाहें तो उस धनको हटाने वाला कोई नहीं होसकेगा॥४॥

पञ्चमी

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि॥ ५॥

यज्ञः। इन्द्रम्। अवर्धयत्। यत्। भूमिम्। वि। अवर्तयत्। चक्राणः। ओपशम्। दिवि॥ ५॥

यज्ञः अस्माभिरनुष्ठीयमानः इन्द्रं देवम् अवर्धयत्। हविषा स्तुत्या वा अभिवृद्धम् अकरोत्। कदेत्युच्यते। यत् यदा दिवि अन्तरिक्षे मेघम् ओपशम् सर्वत उपशयानं चक्राणः कुर्वन् भूमिं व्यवर्तयत्। वृष्ट्या वृष्ट्युदकेन उच्छूनाम् अकरोत्। वृष्टिद्वारा सस्यादिसमृद्ध्या भूमिं पुष्टाम् अकरोत् तदेति संबन्धः। ॐ ओपशम् इति। आङ्पूर्वात् शीङः "अन्येष्वपि दृश्यते" इति डः ॐ॥

जब अन्तरिक्षमें इन्द्र मेघको चारों ओर लेटने वाला और पृथ्वीको वृष्टिजलसे फूलने वाली करते हैं अर्थात् वृष्टिके द्वारा

धान्यसमृद्धिसे भूमिको पुष्ट करते हैं, उस समय हमारा अनुष्ठित यज्ञ हवि वा स्तुतिसे इंद्रको बढ़ाता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

वबृधानस्य । ते । वयम् । विश्वा । धनानि । जिग्युषः ।
ऊतिम् । इन्द्र । आ । वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र वव्धानस्य वर्धमानस्य स्तुत्या वर्धमानस्य विश्वा विश्वानि धनानि शत्रुसंबन्धीनि जिग्युषः जितवतः । ◎जि जये । लिट्द्विर्वचने । "सन्लिटोर्जेः" इति कुत्वम् । लिटः क्वसुरादेशः । भसंज्ञायां "वसोः संप्रसारणम्" इति संप्रसारणम् । "एकानुबन्धकग्रहणे न व्यनुबन्धकस्य" इति न्यायात् । क्वसोः संप्रसारणम् इति चेद् उकारोच्चारणसामर्थ्याद् यथा वसुग्रहणं सिद्धं तथैव क्वसोरपि ग्रहणम् इष्यते । प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तः ◎। तादृशस्य ते तव ऊतिम् रक्षाम् आ वृणीमहे आभिमुख्येन संभजामहे ॥

हे इंद्रदेव ! स्तुतिसे बढ़ते हुए, शत्रुसम्बंधी सकल धनोंको जीते हुए आपकी रक्षाका हम अभिमुख होकर वरण करते हैं ६

सप्तमी ॥

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ।

इन्द्रः । यत् । अभिनत् । वलम् ॥ १ ॥

इन्द्रो देवः रोचना रोचमानं दीप्यमानम् अन्तरिक्षं व्यतिरत् व्यवर्धयत् । वृष्ट्युदकेन अभिवृद्धम् अकरोत् । कस्मिन् सहाये सतीति उच्यते । सोमस्य सोमरसस्य पानेन मदे संजाते सति । कदेत्युच्यते । यत् यदा इन्द्रो वलम् सर्वम् आवृत्य वर्तमानम् एतन्नामकम् असुरम् वक्तलक्षणं मेघं वा अभिनत् सोमपानजनितेन मदेन व्यदारयत् । तदेत्यन्वयः ॥

सोमरसके पानसे मद होने पर जब वल नामक असुरको वा मेघको विदीर्ण किया तब इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढ़ा दिया था ॥ १ ॥

अथ्थी ॥

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।

अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥

उत् । गाः । आजत् । अङ्गिरःऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहा । सतीः ॥

अर्वाञ्चम् । नुनुदे । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवः अङ्गिरोभ्यः तेषाम् अर्थाय गुहा गुहायां सतीः अप्रकाशे विद्यमानाः । ❀ "गुहेः कन्" इति कन् प्रत्ययः । "सुपां सुलुक्०" इत्यादिना डेराकारः । सतीरिति । अस्तेर्लटः शत्रादेशः । "श्नसोरल्लोपः" इत्यकारलोपः । "उगितश्च" इति ङीप् । "वा छन्...

नद्यजादी" इति ...

स्वरः ❀ । गाः ...

गमयद् बहिर्देशं प्रापयत् । तदर्थं गवाम् अपहर्तारं वलम् असुरम् अर्वाञ्चम् अवाङ्मुखं नुनुदे अपातयत् ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वाले महर्षियोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत एव अप्रकाशित गौओंको प्रकाशित किया था और फिर उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करने वाले असुरको भी औंधे मुख करके गिरा दिया था ॥ २ ॥

नवमी ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृढानि । दृंहितानि । च ।
स्थिराणि । न । पराऽनुदे ॥ ३ ॥

इन्द्रेण देवेन दिवः संबन्धीनि रोचना रोचमानानि ग्रहनक्षत्रादीनि दृढानि दृढावयवानि बलवन्ति कृतानि तथा दृंहितानि च दृढीकृतानि । पूर्वतः स्थौल्यम् अपरत्र बलवत्त्वम् इति विवेकः । अत एव स्थिराणि तानि न पराणुदे परानोदनीयानि भवन्ति । न केनापि प्रच्यावयितुं शक्यानीत्यर्थः । ❀ परेत्युपसर्गपूर्वात् णुद प्रेरणे इत्यस्मात् कृत्यार्थे केन प्रत्ययः । "उपसर्गाद् असमासेपि णोपदेशस्य" इति णत्वम् । अस्य णोपदेशत्वं कथम् इति चेत् "सर्वे णादयो णोपदेशाः नृतिनन्दिनर्दिनक्किनाटिनाथनाधृनवर्जम्" इति वचनात् णोपदेशत्वं सिद्धम् । प्रत्ययस्य नित्त्वात् कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

इन्द्रदेवने आकाशके दमकते हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल किया है और दृढ़ किया है, अत एव स्थिर होनेके कारण उनको कोई च्युत नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

दशमी ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।

वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन्ऽइव । स्तोमः । इन्द्र । अजिरऽयते ।

वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते स्तोमः त्वद्विषयं स्तोत्रम् अपाम् । अप्शब्देन तदाश्रयभूताः समुद्रादयो लक्ष्यन्ते । तासां मदन्निव दृष्टयुदकेन हृष्यन्निव । ऊर्मी रसः । स इव अजिरायते । अजिरः क्षिप्रगामी । स इवाचरति । त्वरया त्वां प्रति मुखान्निर्गच्छतीत्यर्थः । यद्वा अपामूर्मिरित्येतावदेव दृष्टान्तवचनं लुप्तेवशब्दकम् मदन्निव स्तोमोजिरायते इति दार्ष्टान्तिकाभिधानम् । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु । अजिरशिशिरेत्यादिना [उ० १. ५३] किरच्प्रत्ययान्तो निपातितः । स इवाचरतीत्यर्थे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इति क्यङ् । सनादित्वाद् धातुसंज्ञायां लडादि कार्यम् । "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इति अकारस्य दीर्घः ❀ । ते तव मदाः सोमपानजनिता व्यराजिषुः विशेषेण राजन्ते दीप्यन्ते ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षसा देता हुआ और रसकी समान क्षिप्रतासे आपके लिये मुखसे निकलता है । आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं

एकादश सूक्त समाप्त (६४४)

"त्वं हि स्तोमवर्धनः" इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिनस्तृतीयपर्याये विनियोगोभिहितः ॥

"त्वं हि स्तोमवर्धनः" सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके तृतीयपर्यायमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ॥ १ ॥

स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

त्वम् । हि । स्तोमऽवर्धनः । इन्द्र । असि । उक्थऽवर्धनः ।

स्तोतॄणाम् । उत । भद्रऽकृत् ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वं खलु स्तोमवर्धनः स्तोमैस्त्रिवृदादिभिर्वर्धनीयोसि तथा उक्थ्यवर्धनः उक्थैर्वर्धनीयश्चासि । ❀ स्तोमशब्दोपपदाद् उक्थशब्दोपपदाच्च वर्धतेः "कृत्यल्युटो बहुलम्" इति अर्थे ल्युट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण लित्वाद् आद्युदात्तत्वम् ❀ । उत अपि च त्वं स्तोतॄणां भद्रकृत् भद्रस्य कल्याणस्य कर्तासि ॥

हे इन्द्रदेव ! आप त्रिवृत् आदि स्तोत्रोंसे और उक्थ आदि स्तोत्रोंसे वर्धनीय हैं । और आप स्तोताओंका भी कल्याण करने वाले हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।

उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

इन्द्रम् । इत् । केशिना । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः ।

उप । यज्ञम् । सुऽराधसम् ॥ २ ॥

केशिना स्कन्धप्रदेशस्थितकेशौ हरी एतन्नामानावश्वौ सुराधसम् शोभनधनफलोपेतम् अस्मद्यज्ञं प्रति सोमपेयाय सोमपानाय इन्द्रमित् इन्द्रमेव उप वक्षतः उपवहतः । यद्वा यज्ञं सुराधसम् इत्येतद् द्वयम् इन्द्रविशेषणतया योज्यम् । यज्ञम् यष्टव्यं सुराधसम्

शोभनेन धनेन दातव्येन तद्वन्तम् इति तयोरर्थः। तादृशम् इन्द्रं वक्षतः वहताम्। ⊛ वह धारणे। लेट्। "सिब्बहुलं लेटि" इति सिप्। "हो ढः" इति ढत्वम्। "षढोः कः सि" इति कत्वम्। "आदेशप्रत्ययोः" इति षत्वम्। निघातः ⊛॥

अयाल वाले हरी नामक अश्व शोभन धनरूपी फलसे सम्पन्न हमारे यज्ञके प्रति सोमपानके लिये इन्द्रको अवश्य लावें॥ २॥

तृतीया॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।

विश्वा यदजय स्पृधः॥ ३॥

अपाम्। फेनेन। नमुचेः। शिरः। इन्द्र। उत्। अवर्तयः।

विश्वाः। यत्। अजयः। स्पृधः॥ ३॥

पुरा किलेन्द्रः असुरान् जित्वा नमुचिम् असुरं ग्रहीतुं न शशाक। स चेन्द्रो युद्धे तेनासुरेण गृहीतोभूत्। स चासुरः इन्द्रम् एवम् उवाच। त्वां विसृजामि। त्वं मां रात्रावहनि च काले शुष्केण आर्द्रेण च साधनेन मा हिंसीरिति। एवं समयं कृत्वा इन्द्रं विससर्ज। स च विसृष्टः सन् अहोरात्रयोः संधौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन अपां फेनेन नमुचेः शिरश्चिच्छेद। अयम् अर्थः अध्वर्युब्राह्मणे प्रपञ्चितः। "इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाव्य नमुचिम् आसुरम् नालभत" [तै० ब्रा० १. ७. १. ६] इत्यादिना। सोर्थः अनेन मन्त्रेणाभिधीयते। हे इन्द्र त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः एतन्नामकस्यासुरस्य। ⊛ न मुञ्चतीति नमुचिः। "नभ्राणनपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ⊛। शिरः उदवर्तयः शरीरात् उद्गमनम् अकार्षीः। अच्छैत्सीरित्यर्थः। कदैवम् इत्युच्यते। यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्धमाना असुरसेनाः अजयः

जितवान् असि । ❀ स्पर्धन्त इति स्पृधः । "अन्येभ्योपि दृश्यते इति क्विप्" । हलिग्रहणात् संप्रसारणम् । पृषोदरादित्वात् रेफस्य ऋकारः अकारलोपश्च । धातुस्वरेण आद्युदात्तः ❀ ॥

[पहिले इन्द्रने असुरोंको जीत लिया, परन्तु नमुचि नामक असुरको न पकड़ सके, परन्तु उस असुरने ही युद्धमें इन्द्रको पकड़ लिया । वह असुर फिर इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगा, कि-मैं आपको इस प्रतिज्ञा पर छोड़ता हूँ, कि-आप मुझको दिनमें, रातमें, सूखे वा गीले साधनसे भी न मारें । इस प्रकार प्रतिज्ञा कराके उसने इन्द्रको छोड़ दिया । तब इन्द्रदेवने छूटकर दिन और रात्रिकी संधिमें सूखे और गीलेसे विलक्षण जलके फेनसे नमुचिके शिरको काटडाला । इस बातको अध्वर्यु ब्राह्मण में कहा है, कि-"इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाव्य नमुचि आसुरम् नालभत" (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । १ । ६) वही कथा इस मन्त्रमें है, कि-] हे इंद्रदेव ! वज्र हुए जलके फेनसे नमुचि नामक असुरके शिरको आपने शरीरसे उतार लिया था (कब) जब सकल स्पर्धा करती हुई सेनाओंको आपने जीत लिया था ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥

मायाभिः । उत्ऽसिसृप्सतः । इन्द्र । द्याम् । आऽरुरुक्षतः ।
अव । दस्यून् । अधूनुथाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वं मायाभिः आत्मीयाभिर्वञ्चनाभिः उत्सिसृप्सतः उत्सर्पणेच्छून् उद्गमनेच्छून् असुरान् । ❀ सृप्लृ गतौ । इच्छार्थे

सन् । "सन्यङोः" इति द्विर्वचनम् । उरदत्त्वम् । "सन्यतः" इति इत्त्वम् । सन्नन्ताल्लट् । तस्य शत्रादेशः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । तान् उत्सिसृप्सून् द्याम् आरुरुक्षतः आरुरुक्षूंश्च दस्यून् हे इन्द्र त्वम् अवाधूनुथाः अवाङ्मुखम् अपातयः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी मायाओंसे उद्गमन करना चाहने वाले और द्युलोक पर चढ़ना चाहने वाले असुरोंको औंधा मुख करके नीचेको गिरादेते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

असुन्वाम् । इन्द्र । सम्ऽसदम् । विषूचीम् । वि । अनाशयः । सोमऽपाः । उत्ऽतरः । भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र सोमपाः सोमस्य पाता त्वम् उत्तरो भवन् सोमपानजनितबलेन उत्तरः उत्कृष्टतरो भवन् असुन्वाम् सोमाभिषवहीनां संसदम् अपष्टसभां विषूचीम् विष्वगञ्चनां कृत्वा व्यनाशयः विशेषेण नष्टाम् अकरोः । ॐ असुन्वाम् इति । षुञ् अभिषवे । लटः शानच् । स्वादिभ्यः श्नुः । ततष्टाप् । अमि कृते नकारलोपश्छान्दसः । नञ्समासे बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । अथ वा अस्मादेव धातोः सुवः कित् [उ० ३. ३५] इति नुमत्ययः किद्वद्भावश्च । न विद्यते सुनुः अभिषवो यस्याः सेति असुनुः । "सुपां सुपो भवन्ति" इति अमो ङिरादेशः । "ङिति ह्रस्वश्च" इति विकल्पेन नदीसंज्ञायां ङेरामादेशः । आडागमादि । पूर्वोक्त एव स्वरः ॐ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपानसे बली होकर सोमाभिषवसे हीन अयज्ञी सभाको चारों ओर बखेर कर विशेषरूपसे नष्ट कर डालते हैं

तृतीय अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (६४५)

"प्र ते महे विदथे" इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिनस्तृतीयपर्यायशस्त्रे विनियोगोऽभिहितः । अस्यान्तिमा "अपाः पूर्वेषाम्" [१३] इत्येषा ऋक् परिधानीया ॥

"प्र ते महे विदथे" सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके तृतीयपर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है । इसकी अन्तकी "अपाः पूर्वेषाम्" यह तेरहवीं ऋचा परिधानीया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म् ।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑ ॥ १ ॥

प्र । ते॒ । म॒हे । वि॒दथे॑ । शं॒सि॒ष॒म् । हरी॒ इति॑ । प्र । ते॒ । व॒न्वे॒ । व॒नुषः॑ । ह॒र्य॒तम् । मद॑म् ।
घृ॒तम् । न । यः । हरि॑ऽभिः । चारु॑ । सेच॑ते । आ । त्वा॒ । वि॒श॒न्तु॒ । हरि॑ऽवर्पसम् । गिरः॑ ॥ १ ॥

हे इन्द्र महे महति विदथे । विद्यते कर्तव्यतया ज्ञायते इति विदथो यज्ञः । तस्मिन् ते तव हरी एतन्नामानावश्वौ तव शीघ्रागमनाय प्र शंसिषम् प्रास्ताविषम् । ❀ शंसु स्तुतौ । लुङि "च्लेः सिच्" । अडभावश्छान्दसः ❀ । तथा वनुषः शत्रुहिंसकस्य याच-

मानस्य वा ते तव हर्यतम् कमनीयं मदम् सोमपानजनितं प्र वन्वे प्रयाचे। अस्मदभिमतम् इति शेषः। ❀ वनु याचने। तनादित्वाद् उमत्ययः ❀। य इन्द्रो घृतं न घृतं यथा अग्नौ होमार्थं सिञ्चन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैरश्वैः सहागत्य चारु रमणीयं धनं सेचने वर्षयति। तं तादृशं हरितवर्णम्। वर्प इति रूपनाम। हरिवर्पं त्वा त्वां गिरः अस्मदीयाः स्तुतिवाचः आ विशन्तु प्रविशन्तु तव बुद्धौ संगता भवन्तु॥

हे इन्द्र! विशाल यज्ञमें आपके हरि नामक अश्वोंकी मैं शीघ्र आगमनके लिये प्रशंसा करता हूँ। तथा शत्रुहिंसक आपके कमनीय सोमपानमदजनित मदसे अपने अभिलषित फलकी याचना करता हूँ, जो इन्द्रदेव, जैसे घृतको अग्निमें होमके लिये सींचते हैं तिस प्रकार, हरित वर्ण वाले अश्वोंके साथ आकर रमणीय धन की वर्षा करते हैं उन हरितवर्ण वाले आपको हमारी स्तुति प्राप्त होवें॥ १॥

द्वितीया॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः।

आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत॥ २॥

हरिम्। हि। योनिम्। अभि। ये। सम्ऽअस्वरन्। हिन्वन्तः। हरी इति। दिव्यम्। यथा। सदः।

आ। यम्। पृणन्ति। हरिऽभिः। न। धेनवः। इन्द्राय। शूषम्। हरिऽवन्तम्। अर्चत॥ २॥

ये पूर्वमहर्षयो हरिम् हरणशीलं हरिवर्णसम् इत्युक्तत्वात् हरितवर्णं वा योनिम् सर्वेषां मूलकारणम् इन्द्रं समस्वरन् हि समस्तुवन् खलु । ॐ स्वृ शब्दोपतापयोः । "हि च" इति निघातप्रतिषेधः ॐ । किं कुर्वन्तः । दिव्यम् देवसंबन्धि सदः सीदन्त्यत्र देवा इति सदो यागगृहम् । तत् यथा येन प्रकारेण इन्द्रो गच्छति तथा हरी एतन्नामानावश्वौ हिन्वन्तः प्रेरयन्तः रथे योजयन्तः । यं. च इन्द्रं न धेनवः । अत्र पुरस्तादुपचारोपि नशब्द उपमार्थीयः। धेनवो नवप्रसूतिका गावो यथा स्वस्वामिनं क्षीरादिभिः पृणन्ति पूरयन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैः सोमरसैश्च पृणन्ति पूरयन्ति यजमानास्तस्मै इन्द्राय । ॐ द्वितीयार्थे चतुर्थी ॐ । तम् इन्द्रं शूषम् शत्रुशोषणसाधनबलोपेतं हरिवन्तम् हरिभिस्तद्वन्तम् अर्चत पूजयत । हे ऋत्विज इति शेषः । यद्वा इन्द्राय इन्द्रस्य हरिवन्तं शूषम् प्रीणनसाधनं बलम् अर्चतेति व्याख्येयम् । ॐ शुषिः प्रीणनार्थ इति माधवः ॐ ॥

दिव्य यज्ञगृहमें बैठे हुए प्राचीन महर्षियोंने इन्द्र जिस प्रकार शीघ्रतासे यागगृहमें आवें, इस लिये हरि नामक अश्वोंको रथ में जुतनेके लिये प्रेरित किया और हरितवर्ण वाले सबके मूलकारण इन्द्रकी स्तुति की थी । जिस प्रकार नवीन व्याई हुई गौएँ क्षीर आदिसे अपने स्वामीको पूर्ण करती हैं इसी प्रकार हरितवर्णके सोमोंसे यजमान इन्द्रदेवको पूर्ण करते हैं ऐसे शत्रुओं को सुखाने वाले बलसे संपन्न हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्रदेवकी हे ऋत्विजों ! तुम पूजा करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।

द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

सः। अस्य। वज्रः। हरितः। यः। आयसः। हरिः। निऽकामः। हरिः। आ। गभस्त्योः।

द्युम्नी। सुऽशिप्रः। हरिमन्युऽसायकः। इन्द्रे। नि। रूपा। हरिता। मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

य आयसः अयोविकारो लोहमयो यो वज्रोस्ति अस्य इन्द्रस्य स वज्रः हरितः हरितवर्णः। लोहमयत्वादेव। स निकामः नितरां कमनीयः। इन्द्रोपि हरिः हरितवर्णः। स हरिः उक्तरूप इन्द्रः गभस्त्योः। गभस्तिर्हस्तः। हस्तयोस्तं हरितं वज्रम्। आ दत्त इति शेषः। धारयतीत्यर्थः। किं च इन्द्रः द्युम्नी द्युम्नवान् अन्नवान् धनवान् वा। सुशिप्रः। ❀ शिप्रे हनू नासिके वेति निरुक्तम् [नि० ६. १७] ❀। शोभनहनुः शोभननासिको वा। स इन्द्रः हरिमन्युसायकः हरणशीलमन्युलक्षणसायकोपेतः हरितवर्णमननीयबाणोपेतो वा। हरयो मन्यवः सायकाश्च यस्येति वा व्याख्येयम्। किं बहुना। यानियानि रूपा रूपाणि निरूपणीयानि आभरणादीनि सन्ति तानि सर्वाण्यपि हरिता हरितानि हरितवर्णान्येव नि मिमिक्षिरे नियोजयितुम् इष्टानि बभूवुः। ❀ मिहेः सन्नन्तात् कर्मणि लिटि रूपम् ❀ ॥

जो इन इन्द्रदेवका लोहेका वज्र है वह भी हरितवर्णका है और यह परम कमनीय इन्द्रदेव भी हरितवर्ण हैं। ऐसे हरि इन्द्र अपने हाथोंमें हरित वज्रको धारण करते हैं। और यह धनवान् इन्द्र सुन्दर ठोड़ी वाले हैं और इनके पास हरित वर्णका मान-

नीय चाल रहता है अधिक क्या इनके जो कुछ भी आभरण आदिक हैं वे सब ही हरित वर्णके ही इए हुए हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४ ॥

दिवि । न । केतुः । अधि । धायि । हर्यतः । विव्यचत् । वज्रः । हरितः । न । रंह्या ।
तुदत् । अहिम् । हरिऽशिप्रः । यः । आयसः । सहस्रऽशोकाः । अभवत् । हरिम्ऽभरः ॥ ४ ॥

वज्रः इन्द्रसंबन्धी दिवि अन्तरिक्षे केतुर्न केतुरिव प्रज्ञापक आदित्य इव वा हर्यतः कान्तः सन् अधि धायि अध्यधायि निहित आसीत् । ⊛ दधातेः कर्मणि लुङ् । चिणि युगागमः । अडभावश्छान्दसः ⊛ । किं च स वज्रः हरितो न हरितवर्णा आदित्याश्वा इव ते यथा रंह्या रंहणीयानि मति । अथ वा रंह्या वेगेन व्याप्नुवन्ति तद्वद् विव्यचद् विशेषेण व्याप्नोति सर्वम् । यद्वा नेति चार्थे । रंह्याणि स्थानानि मति हरितः हरितवर्णो वज्रः विव्यचत् व्याप्नोति च । अपि च य आयसो हरितवर्णो वज्रोऽस्ति तेन वज्रेण हरिशिप्रः सोमपानेन हरितवर्णशिप्र इन्द्रः अहिम् वृत्रं तुदद् अतुदद् व्यथितम् अकरोत् । किं च हरिंभरः हर्योरश्वयोर्भर्ता । ⊛ हरिशब्दोपपदाद् भृञः "संज्ञायां भृतॄवृजि०" इत्यादिना खच् । हृस्व मागमः ⊛ । इन्द्रः तेन वज्रेण साधनेन सहस्रशोकाः सहस्र-

शोकः सहस्रसंख्याकानां शत्रूणां शोचयिता अभवत् । यद्वा अपरिमितदीप्तिरभवत् ॥

इन्द्रदेवका वज्र अन्तरिक्षमें मन्नापक आदित्यकी समान स्थित है, और वज्र जैसे सूर्यके घोड़े वेगसे गन्तव्योंको प्राप्त होते हैं, तिस प्रकार व्याप्त होजाते है । और जो हरितवर्णका वज्र है उस वज्रके द्वारा सोमपानसे हरितवर्ण वाले हुए इन्द्रने वृत्रासुरको व्यथित किया था । और हरि नामक अश्वोंका भरण करनेवाले इन्द्र उस वज्ररूपी साधनसे सहस्रों, शत्रुओंको शोक पहुँचाने वाले हुए हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वंत्वंमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः । त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यं१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥

त्वम्ऽत्वम् । अहर्यथाः । उपऽस्तुतः । पूर्वेभिः । इन्द्र । हरिऽकेश । यज्वऽभिः ।
त्वम् । हर्यसि । तव । विश्वम् । उक्थ्यम् । असामि । राधः । हरिऽजात । हर्यतम् ॥ ५ ॥

हे हरिकेश हरिद्वर्णकेशोपेत उक्तवर्णकेशोपेतैरश्वैरुपेत वा हे इन्द्र त्वंत्वम् त्वमेव यत्रयत्र सोमादि हविरस्ति तत्र सर्वत्र त्वमेव। ❀ "नित्यवीप्सयोः" इति कृदन्तत्वाद्द वीप्सायां द्विर्वचनम् । आम्रेडितस्य अनुदात्तत्वाद्द आद्युदात्तः ❀ । पूर्वेभिः पूर्वभवैः यज्वभिः यजमानैः उपस्तुतः सन् अहर्यथाः अकामयथाः । साम-

अर्थात् सोमादिकम् इति गम्यते । तथा इदानीमपि त्वम् त्वमेव हर्यसि कामयसे हवींषि । अतः हे हरिजात हरिभ्याम् अश्वाभ्यां सह यज्ञे प्रादुर्भूत हरितवर्णत्वेन प्रादुर्भूत वा विश्वम् सर्व सोमादिकम् ऋक्थ्यम् प्रशस्यम् असामि अनल्पं हर्यतम् कमनीयं राधः अन्नम् सोमादिरूपं तव तवैव ॥

हे हरे वर्ण वाले केशोंसे सम्पन्न इन्द्र ! जहाँ २ सोम आदि हवि होती है तहाँ सर्वत्र आप ही हैं । आप प्राचीन यजमानोंसे स्तुति पाकर सोम आदि हविकी कामना किया करते हैं । तथा इस समय भी आप ही हवि आदिकी कामना कर रहे हैं । अत एव हे हरि नामक अश्वोंके साथ यज्ञस्थलमें प्रादुर्भूत होने वाले इन्द्र ! सब सोम आदि, प्रशंसनीय ऋक्थ्य और कमनीय अन्न आपका ही है ॥ ४ ॥

षष्ठी ॥

ता व॒ज्रिणं॑ म॒न्दिनं॒ स्तोम्यं॒ मद॒ इन्द्रं॒ रथे॑ वहतो हर्य॒ता हरी॑ ।
पु॒रूण्य॑स्मै॒ सव॑नानि॒ हर्य॑त॒ इन्द्रा॑य॒ सोमा॒ हर॑यो दधन्विरे ॥ १ ॥

ता । व॒ज्रिण॑म् । म॒न्दिन॑म् । स्तोम्य॑म् । मदे॑ । इन्द्र॑म् । रथे॑ । व॒ह॒तः । ह॒र्य॒ता । हरी॒ इति॑ ।
पु॒रूणि॑ । अ॒स्मै॒ । सव॑नानि । हर्य॑ते । इन्द्रा॑य । सोमा॑ । हर॑यः । द॒ध॒न्वि॒रे॒ ॥ १ ॥

हर्यता हर्यतौ गन्तारौ कमनीयौ वा ता तौ प्रसिद्धौ हरी एतन्नामकावश्वौ वज्रिणम् वज्रोपेतं मन्दिनम् मोदमानं हृष्यमाणं

स्तोम्यम् स्तोमार्हं स्तुत्यम् एवं महानुभावम् इन्द्रं मदे सोमपानजनिताय मदाय रथे वहतः धारयतः अस्मदीयं यज्ञं प्रापयतः। हर्यते कान्ताय अस्मै इन्द्राय पुरूणि बहूनि त्रीण्यपि सवनानि प्रातरादीनि हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे अधारयन् धारयन्ति

कमनीय हरी नामक घोड़े, प्रसन्न होते हुए स्तुतिके पात्र वज्रधारी इन्द्रको सोमपानसे होने वाले मदके लिये हमारे यज्ञमें लारहे हैं। इन कमनीय इन्द्रदेवके लिये प्रातःसवन आदि तीनों सवनोंको हरित वर्ण वाले सोम धारण करते हैं ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

अरं कामा॑य हर॑यो दधन्विरे स्थिराय॑ हिन्वन् हर॑यो हरी॑ तुरा।

अर्वद्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्जोष॒मीय॑ते सो अ॑स्य काम॒ं हरि॑वन्तमानशे ॥ २ ॥

अर॑म्। कामा॑य। हर॑यः। दधन्विरे। स्थिराय॑। हिन्वन्। हर॑यः। हरी इति। तुरा।

अर्वत्ऽभिः। यः। हरि॑ऽभिः। जोष॑म्। ईय॑ते। सः। अस्य। काम॑म्। हरि॑ऽवन्तम्। आनशे ॥ २ ॥

कामाय कमनीयाय स्थिराय संग्रामे अविचलिताय इन्द्राय अरम् अलम् अत्यर्थं हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे सवनानि धारयन्ति। त एव हरयः हरितवर्णाः सोमाः तुरा तुरौ त्वरमाणौ हरी अश्वौ हिन्वन् अहिन्वन् प्रेरयन्ति यज्ञं प्रति प्रेरयन्ति। यः य इन्द्रः अर्वद्भिः अरणवद्भिर्वेगवद्भिः हरिभिः अश्वैः जोषम् यज्ञम्

ईयते गच्छति स इन्द्रः अस्य यज्ञस्य कामम् कामयितव्यं हरिवन्तम् सोमवन्तं यजमानम् आनशे व्याप्नोति । यद्वा यो रथः अर्वद्भिः हरिभिः वामम् ईयते स रथः अस्येन्द्रस्य स्वभूतं कामं हरिवन्तम् आनशे इन्द्रं धारयित्वा प्राप्नोति ॥

इन संग्राममें अविचल रहने वाले कमनीय इन्द्रदेवके लिये हरितवर्ण सोम सवनोंको धारण करते हैं । और वे ही हरित वर्ण वाले सोम त्वरा करने वाले हरि नामक अश्वोंको यज्ञकी ओर प्रेरणा करते हैं । जो इन्द्रदेव वेगवान् घोड़ोंके द्वारा यज्ञमें आते हैं । वह इन्द्र इस यज्ञके कमनीय सोमवान् यजमानको प्राप्त होते हैं २

अष्टमी ॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ३ ॥

हरिऽश्मशारुः । हरिऽकेशः । आयसः । तुरःऽपेये । यः । हरिऽपाः । अवर्धत ।
अर्वत्ऽभिः । यः । हरिऽभिः । वाजिनीऽवसुः । अति । विश्वा । दुःऽइता । पारिषत् । हरी इति ॥ ३ ॥

हरिश्मशारुः हरितवर्णश्मश्रुयुक्तः हरिकेशः हरितवर्णकेशोपेतः आयसः अयोविकारभूतः । अयःसारवत्कठिनहृदय इत्यर्थः । क एवमात्मक इति तम् आह । यः यः प्रसिद्ध इन्द्रः तुरस्पेये तूर्णं पातव्ये सोमे निष्पन्ने सति हरिपाः हरिद्वर्णस्य सोमस्य पाता सन् अवर्धत वर्धते । यश्च वाजिनीवसुः वाजः अन्नं हविर्लक्षणं सोऽस्यां क्रियायां विद्यते सा वाजिनी । सैव वसु धनं यस्य

तयोक्तः। अथ वा वाजिनमेव वाजिनी सैव वसु धनं यस्य स तादृशं इन्द्रः अर्वद्भिः अरणकुशलैः शीघ्रगामिभिः हरिभिः अश्वैः सोमपानाय आगच्छति तैर्वाजिनीवसुर्भवतीति वा योज्यम् । स तादृश इन्द्रः हरी अश्वौ रथे योजयित्वा आगत्य अस्माकं विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरितानि पारिषत् पारयतु । नाशयत्वित्यर्थः । अस्मान् दुरितानि विश्वानि पारिषत् पारयतु तारयत्विति वा योज्यम् । ꣳ पृ पूरणे । चुरादिः । अत्र हिंसाकर्मा । यपन्नात् पञ्चमलकारः । "सिब्बहुलं लेटि" इति सिप् । निघातः ꣳ ।

हरित वर्णकी डाढ़ी मूँछ वाले, हरितवर्णके केशों वाले, लोहेकी समान कड़े हृदय वाले जो इन्द्रदेव हैं वह शीघ्रतासे पीने योग्य सोमके निष्पन्न (तयार) होने पर सोमको पीते हुए बढ़ते हैं। हवि-रूपा क्रिया ही जिनका धन है वह इन्द्र शीघ्रगामी अश्वोंके द्वारा सोमपान करनेके लिये आते हैं। वह इन्द्र हरि नामक अश्वोंको रथमें जोत आकर हमारे सब पापोंको नष्ट कर डालें ॥ ३ ॥

नवमी ॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥

स्रुवाऽइव । यस्य । हरिणी इति । विऽपेततुः । शिप्रे इति । वाजाय । हरिणी इति । दविध्वतः । ...

प्र । यत् । कृते । चमसे । मर्मृजत् । हरी इति । पीत्वा । मदस्य । हर्यतस्य । अन्धसः ॥ ४ ॥

यस्य इन्द्रस्य हरिणी हरितवर्णे शिप्रे हनू स्रुवेव स्रुवाविव ते यथा यज्ञे संचरतः एवं सोमपानाय विपेततुः विपततः । चलत इत्यर्थः । यस्य च वाजाय अन्नाय सोमलक्षणाय तत्पानाय हरिणी हरितवर्णे शिप्रे दविध्वतः कम्पयतः पुरतः स्थितस्य पानाय चलतः । ॐ "दाधर्ति०" इत्यादिना निपातितोयम् । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः ॐ । तथा यत् यदा चमसे पात्रे कृते संस्कृते सोमेन पूर्णे सति मदस्य मदकरस्य हर्यतस्य कमनीयस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य अंशं पीत्वा हरी प्र मर्मृजत् हरितवर्णावश्वौ ममार्ष्टि । स इन्द्रस्तदानीं स्तुतः इत्यर्थः । अथ वा । ॐ कर्मणि षष्ठ्यन्ता एते ॐ । मदं हर्यतम् अन्धः पीत्वा शिप्रे दविध्वत इति योज्यम् ॥

जिन इन्द्रदेवकी हरितवर्णकी ठोड़ी. स्रुवे जैसे यज्ञमें चलते हैं, तिस प्रकार सोमपानके लिये चलती है । तथा जब चमसपात्रके सोमसे पूर्ण होने पर, कमनीय मदकर सोमरूपी अन्नके अंशको पीकर इन्द्र हरित वर्ण वाले अश्वोंका ममार्जन करते हैं तब उन की ठोड़ी फड़कती है ॥ ४ ॥

दशमी ॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥

उत । स्म । सद्म । हर्यतस्य । पस्त्योः । अत्यः । न । वाजम् ।

हरिऽवान् । अचिक्रदत् ।

मही । चित् । हि । धिषणा । अहर्यत् । ओजसा । बृहत् । वयः ।

दधिषे । हर्यतः । चित् । आ ॥ ५ ॥

उत स्म । स्मेति पूरणः । अपि च हर्यतस्य गन्तव्यस्य कम नीयस्य वा इन्द्रस्य सद्म सदनं पस्त्योः द्यावापृथिव्योः संबन्धि भवति । स इन्द्रः अत्यो न वाजम् । अत्य इति अश्वनाम । अश्वः संग्राममिव हरिवान् हरिभियुक्तः सन् अचिक्रदत् यज्ञगृहं प्रति गच्छति। ॐ क्रदि क्रदि वैक्लव्ये । अत्र गत्यर्थः । छान्दसो लुङ् । च्लेश्चङि णिलोपः । सन्वद्भावाद् इत्वम् । निघातः ॐ । किं च मही चित् महती धिषणा अस्मदीया स्तुतिरपि ओजसा बलेन युक्तम् इन्द्रम् अहर्यत् कामयते । अतः हे इन्द्र हर्यतश्चित् कामयमानस्य यजमानस्यापि तदर्थम् आ आगत्य बृहत् महत् प्रभूतं वयः अन्नं दधिषे धारयसि प्रयच्छसि ॥

इन कमनीय इन्द्रका भवन द्यावापृथिवीमें रहता है, जैसे घोड़ा संग्राममें जाता है, वैसे यह इन्द्र हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न होकर यज्ञगृहकी ओर जाते हैं । और हमारी स्तुति भी बलसे सम्पन्न इन्द्रदेवकी कामना करती है । और हे इन्द्र ! आप भी कामना करते हुए यजमानके लिये आकर उसको विशाल परिमाणमें अन्न प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

एकादशी ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि

मन्म नु प्रियम् ।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय १

आ। रोदसी इति। हर्यमाणः। महिऽत्वा। नव्यम्ऽनव्यम्। हर्यसि। मन्म। नु। प्रियम्।

प्र। पस्त्यम्। असुर। हर्यतम्। गोः। आविः। कृधि। हरये। सूर्याय॥ १॥

हे इन्द्र हर्यमाणः कामयमानस्त्वं महित्वा महत्त्वेन रोदसी। ❀ सकारान्तपक्षे द्विवचनान्तम् एतत्। ईकारान्तपक्षे रोदसी रोदस्यावित्यर्थः। "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀। द्यावापृथिव्यौ आ। ❀ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ❀। पूरयसि। तथा हे इन्द्र नव्यंनव्यम् नवतरंनवतरम् असकृच्छ्रुतेपि सर्वदा नूतनम् अत एव प्रियम् हृदयंगमं मन्म मननीयं स्तोत्रं नु क्षिप्रं हर्यसि कामयसे। हे असुर असवः प्राणास्तद्वन् प्रकृष्टबलवन्निन्द्र हर्यतम् स्पृहणीयं गोः। ❀ जातावेकवचनम् ❀। गवाम् आवासभूतं पस्त्यम्। गृहनामैतत्। गृहं पणिभिरपहृतानां गवां निवासस्थानं हरये हरणशीलाय हरिद्वर्णाय वा सूर्याय तदर्थं स यथा गाः प्रत्यर्पयति स्तोतृभ्यः तथा आविष्कृधि प्रकटीकुरु। अथ वा गोशब्दः उदकवाची। गवाम् उदकानां पस्त्यम् स्थानं हरये सूर्याय आविष्कृधि स यथा वृष्टिं प्रयच्छति तथा कुरु। आदित्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेः [म० स्मृ० ३. ७६]॥

हे कामना करने योग्य इन्द्र! आप अपने महत्वसे द्यावापृथिवीको व्याप्त कर लेते हैं और हे इन्द्र! वारम्वार सुनने पर भी सदा नवीन ही प्रतीत होने वाले अत एव प्रिय हृदयंगम स्तोत्रकी आप सदा कामना करते हैं। हे उत्कृष्ट प्राणवत्तसे सम्पन्न इन्द्र! पणियोंसे हरी हुई गौओंके स्पृहणीय, स्थानको

आप सूर्यदेवको प्रदान करते हैं, और वह जैसे स्तोताओंके लिये उनको प्रदान करें, तिस प्रकार करिये ॥ १ ॥

द्वादशी ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥

आ । त्वा । हर्यन्तम् । प्रऽयुजः । जनानाम् । रथे । वहन्तु । हरिऽशिप्रम् । इन्द्र ।
पिब । यथा । प्रतिऽभृतस्य । मध्वः । हर्यन् । यज्ञम् । सधऽमादे । दशऽओणिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र हरिशिप्रम् सोमपानेन हरितवर्णाभ्यां हनुभ्यां युक्तं त्वा त्वाम् । भाविगत्यैवमुक्तः । आगतस्य सोमपाने सति शिप्रयोर्हरिद्वर्णत्वसंभवात् । तादृशं हर्यन्तम् सोमपानं कामयमानं त्वा त्वां जनानाम् यजमानानाम् अर्थाय प्रयुजः प्रकर्षेण परस्परं संयुक्ता अश्वाः रथे आ वहन्तु प्रापयन्तु । हे इन्द्र प्रतिभृतस्य संभृतस्य ग्रहचमसेषु धृतस्य मध्वः मधुवत्प्रियभूतस्य सोमस्य । ® कर्मणि षष्ठ्यौ ® । प्रतिभृतं मधु हर्यन् कामयमानो यज्ञम् यज्ञसाधनभूतं दशोणिम् । ओणयः अङ्गुलयः । दशभिरङ्गुलिभिर्निष्पीडितंसोमं सधमादे । सह माद्यन्त्यत्रेति सधमादो यज्ञः । तस्मिन् यथा पिब यथा पिबसि । तथा त्वां रथे वहन्तु इत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! सोमपानसे हरितवर्णकी हनुओंसे सम्पन्न होने वाले, सोमपानकी कामना करने वाले आपको यजमानके लिये परस्पर

संयुक्त हुए अश्व लावें । हे इन्द्र ! ग्रह चमस आदिमें भरे हुए मधुकी समान प्रियभूत सोमके मधुकी कामना करते हुए यज्ञके साधन दश अंगुलियोंसे निचोड़े हुए सोमके घर यज्ञमें तुम जिस प्रकार पान कर सको तिस प्रकार घोड़े आपको लावें ॥ २ ॥

त्रयोदशी ॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

अपाः । पूर्वेषाम् । हरिऽवः । सुतानाम् । अथो इति । इदम् । सवनम् । केवलम् । ते ।
ममद्धि । सोमम् । मधुऽमन्तम् । इन्द्र । सत्रा । वृषन् । जठरे । आ । वृषस्व ॥ ३ ॥

हे हरिवः हरिवन् हरिभ्यां तद्वन् इन्द्र त्वं सुतानाम् अभिषुतानां पूर्वेषाम् प्रातःसवनसंपादितानां सोमानाम् । माध्यंदिनसवनापेक्षया पूर्वत्वम् एषाम् । ❀ कर्मणि षष्ठ्यावेते ❀ । अभिषुतान् प्रातःसवनिकान् सोमान् अपाः पीतवान् असि । अथो अपि च इदं माध्यंदिने सवनं केवलम् असाधारणं ते तवैव । "माध्यंदिनं सवनं केवलं ते" इति हि [ऋ० ४. ३५. ७] मन्त्रान्तरम् । अतो माध्यंदिने सवने मधुमन्तम् माधुर्योपेतं सोमं ममद्धि । मदवाचिना मदिधातुना पानम् अन्तरेण मदाभावात् पानम् आक्षिप्यते । अतः पिबेत्यर्थः । ❀ मदि स्तुत्यादौ । "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । पादादित्वाद् अनिघातः । हेरपित्त्वात् प्रत्यय-

स्वरः ⊛ । हे वृषन् वर्षक इन्द्र सत्रा साकम् एकधैव जठरे उदरे आ वृषस्व आसिञ्च । यथा कुक्षेः पूर्तिर्भवति तथा पिबेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप अभिषुत, प्रातःसवन में सम्पादित सोमोंका पान कर चुके हैं और यह माध्यन्दिनका सवन भी आपका ही है । अतः आप माध्यन्दिन सवनमें इस सोमका पान करके मदमें भरिये । हे वर्षक इन्द्र ! आप इसको एक साथ जठरमें भर लीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्दशी ॥

अप्सु धूतस्यं हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः १

अप्ऽसु । धूतस्य । हरिऽवः । पिब । इह । नृऽभिः । सुतस्य । जठरम् । पृणस्व ।

मिमिक्षुः । यम् । अद्रयः । इन्द्र । तुभ्यम् । तेभिः । वर्धस्व । मदम् । उक्थऽवाहः ॥ १ ॥

हे हरिवः हरिवन् इन्द्र अप्सु उदकेषु सोमाभिषवार्थेषु धूतस्य कम्पितस्य मिश्रितस्य । ⊛ कर्मणि षष्ठी ⊛ । अप्सु धूतं नृभिः नेतृभिः अध्वर्युप्रभृतिभिः सुतस्य सुतम् अभिषुतं सोमम् इह अस्मिन् यज्ञे पिब पानं कुरु पीत्वा जठरं पृणस्व च पूरय । जठरपूर्तिपर्यन्तं पिबेत्यर्थः । ⊛ "चादिलोपे विभाषा" इति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्न निहन्यते । पृणस्वेत्येषा द्वितीया तु निहन्यत एव ⊛। हे इन्द्र तुभ्यं त्वदर्थं यं सोमम् अद्रयः अभिषवसाधना ग्रावाणो मिमिक्षुः सेक्तुम् अभिषवं कर्तुम् ऐच्छन् । तेभिस्तैरभिषुतैः सोम-

रसैः हे उग्रथ्राहः उग्रैः शस्त्रैरुह्यमान इन्द्र तव मदं वर्धस्व अभिवृद्धं कुरु । मत्तो भवेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! सोमाभिषवके जलोंमें मिलाये हुए, अध्वर्यु आदिसे अभिषुत सोमका इस यज्ञमें आप पान करिये। और पेट भर कर पीजिये। हे इन्द्र ! आपके लिये जिस सोमको अभिषवके साधन पत्थर अभिषव कर चुके हैं उन अभिषुत सोमरसोंसे हे शस्त्रोंसे उह्यमान इन्द्र ! अपने मदको बढ़ाइये-मत्त हूजिये ॥ १ ॥

पञ्चदशी ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण॑ इयर्मि स॒त्यां प्र॒यै सु॒तस्य॑ हर्यश्व तुभ्य॑म् ।
इन्द्र॒ धेना॑भिरि॒ह मा॑दयस्व धी॒भिर्विश्वा॑भि॒: शच्या॑ गृणा॒नः ॥ २ ॥

प्र । उ॒ग्राम् । पी॒तिम् । वृष्णे॑ । इ॒य॒र्मि॒ । स॒त्याम् । प्र॒ऽयै । सु॒तस्य॑ । हरि॒ऽअश्व । तुभ्य॑म् ।
इन्द्र॑ । धेना॑भिः । इ॒ह । मा॒द॒य॒स्व॒ । धी॒भिः । विश्वा॑भिः । शच्या॑ । गृ॒णा॒नः ॥ २ ॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमतफलवर्षकाय तुभ्यं प्रयै प्रकर्षेण गन्तुम् । ® प्रपूर्वाद् या प्रापणे इत्यस्मात् "प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै" इति छन्दसि तुमर्थे कैप्रत्ययान्तो निपातितः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ® । तदर्थं सुतस्य अभिषुतस्य सोमस्य उग्राम् उद्गूर्णबलां सत्याम् अवितथमदलक्षण-

फलोपेतं पीनिम् पानं प्रेयमि प्रेरयामि । किं च हे इन्द्र शच्या । कर्मनामैतत् । यागेन निमित्तेन विश्वाभिः सर्वाभिः धीभिः स्तुतिभिः गृणानः स्तूयमानः सन् धेनाभिः प्रीणयित्रीभिः स्तुतिभिर्वाग्भिः इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तृप्तो भव । ❀ मद तृप्तियोगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ❀ ॥

हे हरि नामक अश्वों वाले इन्द्र ! अभीष्ट फलकी वर्षा करने वाले आपको प्राप्त होनेके लिये अभिषुत सोमके प्रचण्ड बलप्रद वास्तवमें मदरूपी फल वाले पानको प्रेरित करता हूँ । हे इन्द्रदेव ! यागरूपी कर्मसे और सकल स्तुतियोंसे प्रशंसा पाते हुए आप प्रशंसिका स्तुतियोंसे इस यज्ञमें तृप्त हूजिये ॥ २ ॥

षोडशी ॥

ऊती शचीवस्तव वीर्ये॒ण वयो॒ दधा॑ना उ॒शिज॑ ऋत॒ज्ञाः
प्र॒जाव॑दिन्द्र॒ मनु॑षो दुरो॒णे त॒स्थुर्गृ॒णन्तः॑ सध॒माद्या॑सः ३

ऊती । शची॑ऽवः । तव॑ । वी॒र्ये॑ण । वयः॑ । दधा॑नाः । उ॒शिजः॑ । ऋ॒तऽज्ञाः ।

प्र॒जाऽव॑त् । इ॒न्द्र॒ । मनु॑षः । दु॒रो॒णे । त॒स्थुः । गृ॒णन्तः॑ । स॒ध॒ऽमा॒द्या॑सः ॥ ३ ॥

हे शचीवः शक्तिमन् इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणेन तव वीर्येण सामर्थ्येन च प्रजावत् पुत्रादिरूपाभिः प्रजाभिरुपेतं वयः अन्नं दधानाः धारयन्त उशिजः त्वां कामयमाना ऋतज्ञाः सत्यभूतफल साधनं यज्ञं जानन्तः । पङ्क्त्याहः प्रयोगस्य अतिगहनत्वाद् ऋतज्ञा इत्युक्तम् । सत्रे ये यजमानास्ते ऋत्विज इति शास्त्रेण सर्वेषां यजमानभूतानाम् ऋत्विजां फलसाधारण्यात् प्रजावद् वयो दधाना

इति फलसंबन्धवचनं युक्तम् । एवंभूता ऋत्विजो मनुषः मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहे । ॐ दुरोण इति गृहनाम । दुरवा भवन्ति दुस्तर्पा इति यास्कः [नि० ४. ५] ॐ । सत्रस्य बहुकर्तृकत्वेपि केन चिद् यजमानेन अवश्यंभावाद् मनुषो दुरोण इत्युक्तम् । सधमादासः सह मदनीयाः सन्तो गृणन्तः त्वां स्तुवन्तः तस्थुः तिष्ठन्ति ॥

तृतीयेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोनुवाकः ॥

हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र ! आपकी रक्षक शक्तिसे पुत्रादिरूप प्रजाओं वाले अन्नको धारण करते हुए और आपकी कामना करते हुए सत्यफलसाधन यज्ञको जानते हुए ऋत्विज, मनुष्य यजमानके यागगृहमें आपकी स्तुति करते हुए विद्यमान हैं ॥३॥

तृतीय अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (६४६)

तृतीय अनुवाक समाप्त

चतुर्थेनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र "यो जात एव" इति प्रथमं सूक्तं साममूक्तम् इति व्यवह्रियते । "अस्मा इदु प्र तवसे" इति द्वितीयं सूक्तम् अहीनसूक्तम् इति व्यवह्रियते । द्वादशाहादौ वैराजपृष्ठे विश्वजिति "यो जातः" इति सूक्तं ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तम् । सूत्रितं हि वैताने । "नवरात्रेभिजिद्विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशवत्" इत्युपक्रम्य "विश्वजिति वैराजपृष्ठे 'यद् याव इन्द्र ते शतम्' [२०. ८१. १] 'यद् इन्द्र यावतस्त्वम्' [२०. ८२. १] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ वार्हतौ उक्ते योनी । 'इन्द्र क्रतुं न आ भर' [२०. ७९. १] इति तृतीयाम् । 'इन्द्र त्रिधातु शरणम्' [२०. ८३. १] इति सामप्रगाथः । सुकीर्तिवृषाकपी 'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्' [२०. ३४] इति साममूक्तम् "अहीनसूक्तम् आवपेत्" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा अप्तोर्यामिणि क्रतावपि माध्यंदिनसवने अस्य सूक्तस्य ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोगः। "अप्तोर्यामिणि गर्भकारं शंसति" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "सुकीर्तिं वृषाकपिं सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते" इति [वै० ४. २] ॥

एतत्सूक्तविषय इतिहासो बृहद्देवतानुक्रमण्याम् उक्तः ॥

संयुज्य तपसात्मानम् ऐन्द्रं बिभ्रन्महद्द्वपुः ।
अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥
तम् इन्द्र इति मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ ।
धुनिश्च चुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेततुः ॥
विदित्वा स तयोर्भावम् ऋषिः पापं चिकीर्षतोः।
यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत् ॥

अपरे त्वन्यथा वर्णयन्ति ॥

पुरा किल महेन्द्राद्या वैन्ययज्ञं समागताः ।
ऋषिर्गृत्समदस्तत्र वैन्यस्य सदसि स्थितः ॥
असुराश्च समाजग्मुः शीघ्रम् इन्द्रजिघांसया ।
तान् दृष्ट्वा निर्जगामेन्द्रो यज्ञाद् गृत्समदाकृतिः ॥
निरगात् सोपि तद्यज्ञाद् ऋषिर्वैन्येन पूजितः ।
तं दृष्ट्वा चेन्द्र एवायम् इति ते जगृहुः किल ॥
नाहम् इन्द्रोस्मि किं त्वेवंगुणोपेतः स इत्यृषिः ।
यो जात इति सूक्तेन निराचक्रे वधोद्यतान् ॥ इति ॥

केचित् तु अत्र सूक्ते "यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्" इति [५] इन्द्रस्य नास्तित्ववचनाद् अन्यत्रापि "नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श" इति [ऋ० ८. १००, ३] इन्द्रस्याभावश्रवणाच्च तत्सद्भावं निराकुर्वाणान् प्रति अस्मिन् सूक्ते इन्द्रस्य असाधारणमाहात्म्यकथनैस्तदस्तित्वम् अवागमयद् इति केचिद् आहुः ॥

चौथे अनुवाकमें चार सूक्त हैं। इनमें "यो जात एव" यह प्रथम सूक्त साममूक्त कहलाता है। "अस्मा इदु प्र तवसे" यह द्वितीय सूक्त अहीनसूक्त कहलाता है। द्वादशाह आदिमें वैराजपृष्ठके विश्वजित्में "यो जातः" सूक्त ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, "नवरात्रेऽभिजिद् विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशवद्" का आरंभ करके "विश्वजिति वैराजपृष्ठे 'यद् द्याव इन्द्र ते शतम्' (२० । ८१ । १) 'यदिंद्र यावतस्त्वम्' (२० । ८२ । १) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ उक्तौ योनी। 'इन्द्रं क्रतुं न आ भर' (२० । ७६ । १) इति तृतीयाम्। 'इन्द्र त्रिधातु शरणम्' (२० । ८३ । १) इति साम्प्रगाथः। शुक्रीर्तिवृषाकपी 'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्' (२० । ३४) इति साममूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा अप्तोर्यामके क्रतुमें भी माध्यन्दिनसवनमें इस सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग है। "अप्तोर्याम्णि गर्भकारं शंसति" का प्रक्रम करके वैतानसूत्र ४ । ३ में कहा है, कि- "सुकीर्ति वृषाकपिं साममूक्तं अहीनसूक्तं आवपते" ॥

इस सूक्तसे संबन्ध रखने वाला इतिहास बृहद्देवतानुक्रमणिका में कहा है। उसका अर्थ यह है, कि-"गृत्समद ऋषिने तप करके इन्द्रके प्रशंसनीय रूपको धारण कर लिया और वह मुहूर्त भरमें द्युलोकमें भूलोकमें और अन्तरिक्षमें दीखने लगे। धुनि और चुमुरि नामक दो भयङ्कर पराक्रमी दैत्य थे वे गृत्समद ऋषिको इन्द्र समझ उन पर आयुध लेकर टूट पड़े। उन पाप करना चाहने वालोंके भावको जान कर ऋषि'यो जात एव' सूक्तसे इन्द्रके कर्मोंका कीर्तन करने लगे।" दूसरे इसका भिन्नरूपमें वर्णन करते हैं, कि-पहिले "महेन्द्र आदि दैत्यके पक्षमें आए थे

तहाँ वेनपुत्रकी सभामें गृत्समद ऋषि भी बैठे हुए थे। इधर असुर भी इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगए। उन को देख इन्द्र गृत्समद ऋषिका रूप धारण करके यज्ञसे बाहर निकलगए। और वैन्यसे सत्कार पाकर ऋषि भी उस यज्ञसे चलने लगे। उनको इन्द्र मान कर ऋषिको उन असुरोंने पकड़ लिया। तब ऋषिने कहा, 'कि-मैं इन्द्र नहीं हूँ किन्तु इन्द्र सा हूँ, और "यो जातः" सूक्तसे वध करनेके लिये उद्यत असुरोंको दूर कर दिया"॥ कोई कहतेहैं कि-"यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्" इस पाँचवीं ऋचामें इन्द्रके नास्तित्व वचनसे, अन्यत्र भी "नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईम् ददर्श" ऋग्वेदसंहिता ८। १००। ३ में इन्द्रके अभावके श्रवण होनेसे उनके सद्भावका निराकरण करने वालोंके प्रति इस सूक्तमें इन्द्रका असाधारण माहात्म्य कह कर इन्द्रका अस्तित्व प्रतिपादन किया है।

तत्र प्रथमा ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

यः। जातः। एव। प्रथमः। मनस्वान्। देवः। देवान्। क्रतुना। परिऽअभूषत्।
यस्य। शुष्मात्। रोदसी इति। अभ्यसेताम्। नृम्णस्य। मह्ना। सः। जनासः। इन्द्रः ॥ १ ॥

य इन्द्रो देवः जात एव प्रादुर्भूतमात्रः सन् प्रथमः प्रकृष्टतमो मुख्यः सन् । ❀ प्रथम इति मुख्यनाम प्रतमो भवतीति निरुक्तम् [नि० २. २२] ❀ । मनस्वान् प्रकृष्टेन अनुग्राहकेण मनसा युक्तो देवान् इतरान् क्रतुना कर्मणा असाधारणेन व्यापारेण पर्यभूषत् परिभावयांचकार । स्वाधीनान् अकरोत् । रक्षकत्वेन पर्यगृह्णाद् वा । यस्य इन्द्रस्य शुष्मात् शोषकाद् बलाद् रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभ्यसेताम् भीते अभूताम् । शुष्मात् इत्यनेन शारीरं बलम् अभिधाय सेनालक्षणं बलं भयसाधनतया अभिधत्ते नृम्णस्य मह्ना इति । नॄन् शत्रुजनान् प्रति अभिभावुकं मनो यस्य स तादृशः उक्तलक्षणान् नॄन् नमयतीति वा नृम्णं सेनादिलक्षणं बलम् । तस्य मह्ना महत्त्वेन च अभ्यसेताम् इति पूर्वेणान्वयः । हे जनासः असुरजनाः स इन्द्रो नाहम् इति ऋषिः आत्मन इन्द्रत्वं पर्यहरत् ॥ अस्य सूक्तस्य इन्द्रसद्भावप्रतिपादनपरत्वपक्षे हे जनासः इन्द्रो नास्तीति मन्यमाना जनाः उक्तगुणोपेतः स इन्द्रोऽस्त्येवेति व्याख्येयम् । ❀ अत्र निरुक्तम् । यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभूषत् पर्यगृह्णात् पर्यरक्षद् अत्यक्रामद् इति वा । यस्य बलाद् द्यावापृथिव्यावप्यबिभीतां नृम्णस्य मह्ना बलस्य महत्त्वेन । जनास इन्द्र इत्यृषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्तेति [नि० १०. १०] । पर्यभूषत् इति । भवतेर्लुङि व्यत्ययेन च्लेः क्सः । "श्रयुकः किति" इति इट्प्रतिषेधः । "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघातप्रति . . . अदः स्वरः । "तिङि चोदात्तवति" इति गतेर्निघातः ❀ ॥

जिन इन्द्रदेवने प्रकट होते ही मुख्य बन कर अपने अनुग्रह करने वाले मनसे अन्य देवताओंको अपने असाधारण व्यापार से रक्षक-रूपमें ग्रहण कर लिया है । जिन इन्द्रके शोषक शारीरक बलसे द्यावा पृथिवी भयभीत होते हैं और जिनके सैनिक-

बलसे और महत्त्वसे द्यावापृथिवी भयभीत रहते हैं हे मनुष्य जनों ! [मैं वह इन्द्र नहीं हूँ, इस प्रकार ऋषिने अपना इन्द्रत्व हटाया और इन्द्रके सद्भावके प्रतिपादन करनेके पक्षमें "पूर्वोक्त गुणों वाले इन्द्रदेव हैं" यह व्याख्या करनी चाहिये] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अदृंहत् । यः । पर्वतान् । प्रऽकुपितान् । अरम्णात् ।
यः । अन्तरिक्षम् । विऽममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तभ्नात् ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

हे जनासः जनाः य इन्द्रः व्यथमानाम् चलन्तीं पृथिवीम् अदृंहत् शर्करादिभिर्दृढाम् अकरोत् । यश्च प्रकुपितान् प्रकोपं प्राप्तान् परस्परं युद्धाय इतस्ततश्चलतः पर्वतान् गिरीन् पक्षयुक्तान् अरम्णात् पक्षच्छेदेन नियमितवान् । यथा उत्प्लुत्योत्प्लुत्य प्राणिपीडां न कुर्वन्ति तथा स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । ❀ रमु क्रीडायाम् । अस्य अन्तर्भावितण्यर्थस्य । श्नाप्रत्ययः । अस्य अदृंहत् इत्यस्य च यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । अडागमस्वरः ❀ । यश्च इन्द्रः अन्तरिक्षम् । अन्तरा क्षान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरिक्षम् । कीदृशम् । वरीयः उरुतरम् इयत्ताशून्यं विममे निमानम्

अकरोत् । ⊛ माङ् माने इत्यस्य ⊛ । यश्च द्याम् दिवम् अस्तभ्नात् निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्

हे असुरों ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इधर उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष को परिमाण शून्य कर दिया है और जिन्होंने द्युलोकको स्तंभित कर दिया है वह इन्द्रदेव है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । यः । गाः । उत्ऽआजत् । अपऽधा । वलस्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान । सम्ऽवृक् । समत्ऽसु । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गायमुनादिनदीर्वा अरिणात् प्रैरयत् । ⊛ री गतिरेषणयोः । क्र्यादिः ⊛ । यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्थापिता गाः अपधा । अप कुत्सितं धीयत इत्यपधा विधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ❀ अपपूर्वाद् दधातेः "आतश्चोपसर्गे" इति अङ् । "सुपां सुलुक्०" इति पञ्चम्या आकारः ❀ । यश्च अश्मनोः व्याप्तयोर्मेघयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् । मेघयोः संघर्षेण वैद्युतोग्निर्जायत इति प्रसिद्धम् एतत् । अब्धारकत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र अग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सामर्थ्यम् । यश्च समत्सु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको प्रेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई गौओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अतिशीतत्वमें भी अग्निका उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं तो भाई ऋषि हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकरित्यकः ।

अकरोत् । ॐ माङ् माने इत्यस्य ॐ । यश्च द्याम् दिवम् अस्तभ्नात् निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्

हे असुरों ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इधर उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष को परिमाण शून्य कर दिया है और जिन्होंने द्युलोकको स्तंभित कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । यः । गाः । उत्ऽआजत् । अपऽधा । वलस्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान । सम्ऽवृक् । समत्ऽसु । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गाद्याः नदीर्वा अरिणात् प्रैरयत् । ॐ री गतिरेषणयोः । क्र्यादिः ॐ । यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्थापिता गाः अपधा । अप कुत्सितं धीयत इत्यपधा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ⊛ अपपूर्वाद् दधातेः "आतश्चोपसर्गे" इति अङ् । "सुपां सुलुक्०" इति पञ्चम्या आकारः ⊛ । यश्च अश्मनोः व्याप्तयोर्मेघयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् । मेघयोः संघर्षेण वैद्युतोऽग्निर्जायत इति प्रसिद्धम् एतत् । अब्धारकत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र अग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सामर्थ्यम् । यश्च समत्सु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको प्रेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई गौओंको बिलसे प्रकट किया है। और जो दो मेघोंमें भरे हुए पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अतिशीतत्वमें भी अग्निका उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं सो भाई ऋषि हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकरित्यकः ।

श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्षम् । आदत् । अर्यः । पुष्टानि ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन इन्द्रेण इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि च्यवना च्यवनानि स्वेन च्यावयितव्यानि कृतानि । यद्वा च्यवनानि कृतानि । दृढीकृतानीत्यर्थः । ॐ च्युङ् प्लुङ् गतौ । "कृत्यल्युटो बहुलम्" इति ल्युट् । "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लुक् ॐ । यश्च इन्द्रः दासम् उपक्षपयितारम् असुरं वर्णम् नीचवर्णम् अधरम् निकृष्टं कृत्वा गुहा गुहायाम् अकः अकार्षीत् । किं च लक्षम् लक्ष्यं योऽयः प्रकाशभूतः शत्रुरस्ति तं जिगीवान् जितवान् । ॐ जि जये वार्तो "सन्लिटोर्जेः" इत्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् । छान्दसो दीर्घः ॐ । तादृशो यः अर्यः अरेः पुष्टानि समृद्धानि धनानि आदत् स्वीकरोति । तत्र दृष्टान्तः । श्वघ्नीव श्वभिः साधनैः मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः स यथा जिगीवान् सन् लक्ष्यमाणं मृगं स्वीकरोति तद्वत् । हे जनाः स इन्द्र इत्युपिर्य्रूते ॥

हे असुरों ! जिन्होंने इन दीखते हुए सब भुवनोंको दृढ़ किया है, और जो हानि पहुँचाने वाले नीच वर्णके असुरको निकृष्ट करके गुहामें डाल चुके हैं और जिन्होंने प्रकट शत्रुओंको जीत लिया है और जो शिकारीकी समान शत्रुके धनको हर लेते हैं, वह इन्द्र हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत । ईम् । आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनम् ।

स । अर्यः । पुष्टीः । विजःऽइव । आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ५ ॥

घोरम् शत्रूणां हन्तारं भयङ्करं यम् इन्द्रं जनाः पृच्छन्ति स्म प्रश्नं कुर्वन्ति । ❀ "निपातस्य च" इति स्मेत्यस्य संहितायां दीर्घः ❀ । किमिति । इन्द्र इन्द्र इति सर्वे जना ब्रुवते स कुह कुत्र वर्तत इति । उत अपि च ईम् एनम् इन्द्रम् आहुः । के चन ब्रुवते । किमिति । एष इन्द्रो नास्तीति अस्ति चेत् दृष्टिपथं माप्नुयात् । न तथास्ति अत एष नास्तीति ब्रुवते । तथाच मन्त्रान्तरम् । "नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श" [ऋ० ८, १००, ३] इति । एवं संशयो न कार्यः । स त्विन्द्रः अर्यः अरेः पुष्टीः पोषिकाः सेनाः विज इव । इवशब्दः एवार्थे । उद्वेजक एव सन् । अथ वा विजो भयहेतुः व्याघ्रादिदुष्टमृगः । स इव आ सर्वतो मिनाति हिनस्ति । ❀ सेति इत्यत्र "सोचि लोपे चेत् पादपूरणम्" इति सोर्लोपे गुणः ❀ । अस्मा इन्द्राय इन्द्रविषये हे नराः श्रद्धत्त । श्रत् इति सत्यनाम । विश्वासं कुरुत । इन्द्रोस्ति चेत् कुत्र तिष्ठतीति स नास्त्येवेति वा अविश्वासं मा कुरुत । स नास्ति चेत् वृत्रादिशत्रुसेनास्तदन्यः को जयेत् । अतो यः शत्रुसेनानां जेतास्ति हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

शत्रुओंका हनन करने वाले जिन इन्द्रदेवके विषयमें मनुष्य

प्रश्न करते हैं,-इन्द्र कहाँ हैं, इन्द्र कहाँ हैं ? वह इन्द्र कहाँ हैं ? कोई कहते हैं, कि-यह इन्द्र हैं ही नहीं, यदि होते तो दीखते, यह नहीं दीखते, अत एव नहीं हैं। (ऐसा संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि-) वह इन्द्र शत्रुओंको पुष्ट करने वाली सेनाओं को उद्वेजक व्याघ्र आदिकी समान पूर्णरीतिसे नष्ट कर डालते हैं, ऐसे इन्द्रदेवके विषयमें हे नरो ! श्रद्धा करो, विश्वास करो, इन्द्र हैं तो वह कहाँ रहते हैं ? वह नहीं हैं इतना अविश्वास न करो, यदि वह नहीं होते तो वृत्र आदि शत्रुसेनाओंको उनके अतिरिक्त और कौन जीत लेता, अतः हे जनो ! जो शत्रु-सेनाओंके जेता हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यो र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मा-
नस्य की॒रेः ।
यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑नास॒
इन्द्रः॑ ॥ ६ ॥

यः । र॒ध्रस्य॑ । चो॒दि॒ता । यः । कृ॒शस्य॑ । यः । ब्र॒ह्मणः॑ । नाध॑-मानस्य । की॒रेः ।

यु॒क्तऽग्रा॑व्णः । यः । अ॒वि॒ता । सु॒ऽशि॒प्रः । सु॒तऽसो॑मस्य । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ६ ॥

य इन्द्रो रध्रस्य संराद्धस्य समृद्धस्यापि। ® रधेरौणादिको रक् प्रत्ययः ®। चोदिता अभिमतफलप्रेरयिता समृद्धस्य राजादेर्यः शत्रुः तस्य चोदिता अपगमयिता वा । यश्च कृशस्य धनादिराहि-

त्येन क्षीणस्यापि चोदिता तदभीष्टधनस्य प्रेरयिता । यश्च कीरेः। स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रकर्तुः नाधमानस्य अभिमतं फलं याचमानस्य ब्रह्मणः ब्राह्मणस्यापि चोदिता । यश्च सुशिप्रः शोभनहनुरिन्द्रः युक्तग्राव्णः अभिषवाय प्रयुक्ताश्मनः सुतसोमस्य अभिषवादिना संस्कृतसोमस्य यजमानस्य अविता रक्षिता एवंमहानुभावो योस्ति हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्र समृद्ध राजा आदिके शत्रुओंको भी दूर करने वाले हैं जो धनशून्य होनेसे क्षीण हुए पुरुष पर भी अभीष्ट धनको प्रेरित करने वाले हैं, जो स्तुति और प्रार्थना करते हुए ब्राह्मण को अभीष्ट फल देने वाले हैं। जिनकी ठोढ़ी सुन्दर है जो अभिषवके लिये पत्थरोंको उपयोगमें लाने वाले सोमको संस्कृत करने वाले यजमानकी रक्षा करने वाले हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ६

सप्तमी ॥

यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।

यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां नेता॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑

यस्य॑ । अश्वा॑सः । प्रऽदिशि॑ । यस्य॑ । गाव॑ः । यस्य॑ । ग्रामाः॑ ।

यस्य॑ । विश्वे॑ । रथा॑सः ।

यः । सूर्य॑म् । यः । उ॒षस॑म् । ज॒जान॑ । यः । अ॒पाम् । नेता॑ ।

सः । ज॒ना॒सः॒ । इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥

पूर्वमन्त्रे धनिनो निर्धनस्य स्तोतुर्यष्टुश्च अभिमतप्रदाने यः समर्थः स इन्द्र इत्युक्तम् । अत्र प्राणिनाम् अपेक्षिता अश्वगोरथ-

प्रकाशवृष्टिलक्षणा ये अर्थाः सन्ति तेषां सर्वेषां प्रदाने यः समर्थः स इन्द्र इत्यभिधीयते । यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशने अनुशासने संविधौ वा । ॐ प्रपूर्वाद् दिश अतिसर्जने इत्यस्मात् क्विप् ॐ । अर्थिभ्यो दातव्या अश्वासः अश्वाः । सन्तीति शेषः । यस्य च गावः तदर्थिभ्यो दातव्या बह्व्यो गावः । यस्य च ग्रामलाभकामेभ्यो दित्सिता ग्रामाः । यस्य च विश्वे सर्वे रथासः रथाः । गजोष्ट्रयानादीनां परिग्रहाय विश्व इति विशेषितम् । यश्च इन्द्रो गमनादिसर्वव्यवहारोपयोगिप्रकाशाय सूर्यं जजान । तथा य उषसं च जजान उत्पादितवान् । यश्च अपाम् वृष्ट्युदकानां नेताः मापयिता देवोस्ति हे जनाः स इन्द्र इति ॥

[पूर्वमन्त्रमें "धनी निर्धन स्तोता और यष्टाको अभिमत फल देनेमें जो समर्थ हैं वह इन्द्र हैं" यह बात कही थी । अब यह बात कही है, कि-] "प्राणियोंके अपेक्षित, अश्व गौ रथ प्रकाश वृष्टि आदि जो अर्थ हैं, उन सबका प्रदान करनेमें जो समर्थ हैं वह इन्द्र हैं ।" जिन इन्द्रदेवके अनुशासन और प्रशासनमें याचकोंको देनेके घोड़े हैं और याचकोंके लिये बहुतसी गौएं हैं और जिन की आज्ञामें ग्रामप्राप्तिकी अभिलाषा वालोंको लिये ग्राम हैं, जिनके पास रथ गज उष्ट्रयान आदि सब हैं और जिन इन्द्रदेवने गमन आदि सब व्यवहारोपयोगी प्रकाशके लिये सूर्यदेवको प्रकट किया है और जिन्होंने उषाको उत्पन्न किया है और जो वृष्टिके जलको लाने वाले देवता हैं हे जनो ! वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्ऽयती । विह्वयेते इति विऽ-

ह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः ।

समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिवांसा । नाना । हवेते इति ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ८ ॥

संयती परस्परं संगच्छमाने क्रन्दसी शब्दं कुर्वाणे । द्यावापृथिव्यावित्यर्थः । स्वाश्रितानां प्राणिनां वृष्ट्यर्थं पृथिवी द्यौश्च हविरर्थम् इत्युभयोः क्रन्दनम् । अथ वा संयती परस्परं संगते क्रन्दसी प्रतिभटान् प्रतियुद्धाय आह्वयन्त्यौ उभे शत्रुसेने विह्वयेते इन्द्रं विविधम् आह्वयतः । स्वस्वसहायायेति शेषः । ❀ क्रदि आह्वाने रोदने च । असुन् । "उगितश्च" इति ङीप् ❀ । उत्तमेनार्थं प्रकारान्तरेण स्पष्टम् आह । परे उत्कृष्टा अवरे निकृष्टाश्च । परस्परं जयपराजयापेक्षया परत्वम् अवरत्वं च द्रष्टव्यम् । एवम् उभया अमित्राः प्रतिद्वन्द्विसेनयोर्वर्तमानाः शत्रवः स्वस्वजयार्थं साहाय्याय विह्वयन्ते । इत्थं सेनाद्वयान्तःस्थितानाम् इन्द्राह्वानम् अभिधाय अथ सेनास्वामिनोः परस्परप्रतिद्वन्द्विनोरिन्द्राह्वानम् अभिधत्ते । समानं चित् अश्वमारथ्यादिभिः समानम् परस्परसदृशं रथम् आतस्थिवांसा अधिष्ठितवन्तौ । ❀ तिष्ठतेर्लिटः क्वसुः । "शर्पूर्वाः खयः" इति खयः शेषः । अभ्यासस्य ह्रस्वत्वे "वस्वेकाजाद्घसाम्" इति इडागमः । प्रत्ययस्वरः ❀ । तौ यं नाना पृथक्पृथक् हवेते आह्वयतः । गतम् अन्यत् ॥

परस्पर मिले हुए शब्द करते हुए द्युलोक और पृथिवीलोक इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अपने आश्रित प्राणियों के कारण वृष्टिके लिये पृथिवी और हविके लिये द्युलोक जिन इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अथवा—परस्पर डटी

हुई, सामनेके योधाओंको लड़नेके लिये बुलाती हुई दोनों सेनाएँ अनेक प्रकारसे इन्द्रदेवका आह्वान करती हैं [इसी बात को दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि–] उत्कृष्ट और निकृष्ट प्रतिद्वंद्वी सेनाओंमें वर्तमान दोनों शत्रु अपनी २ विजयके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं [इस प्रकार दोनों ओरके सैनिकोंके इन्द्राह्वानको कह कर अब परस्परके प्रतिद्वन्द्वी सेनास्वामियोंके आह्वान का वर्णन करते हैं, कि–] अश्व सारथी आदिसे समान रथमें विराजमान सेनापति जिनको अलग २ बुलाते हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्मात् । न । ऋते । विऽजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः । अवसे । हवन्ते ।
यः । विश्वस्य । प्रतिऽमानम् । बभूव । यः । अच्युतऽच्युत् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्माद् इन्द्रात् सकाशात् ऋते इन्द्रसहायम् अनपेक्ष्य जनासः जनाः प्रबला दुर्बलाश्च सर्वे जयार्थिनो न विजयन्ते शत्रून् न पराभावयन्ति । अतश्च यम् इन्द्रं युध्यमानाः युद्धं कुर्वाणा अवसे स्वस्वरक्षणाय हवन्ते आह्वयन्ति । किं च यश्च इन्द्रो विश्वस्य

सर्वस्यापि वृत्रादिशत्रुजातस्य प्रतिमानम् । प्रतिमीयत इति प्रतिमानं प्रतिनिधिर्वभूव । अथ वा "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इति [ऋ० ६. ४७. १८] मन्त्रवर्णात् सर्वस्यापि प्राणिजातस्य तत्तत्पुण्यपापप्रत्यवेक्षणाय प्रतिबिम्बं बभूव । यश्च अच्युतच्युत् अच्युतस्य केनापि अच्यावयितव्यस्य वृत्रादेः च्युतिरहितस्य स्थावरस्य पर्वतादेर्वा च्यावयिता स जनास इन्द्र इति ॥

जिन बलप्रदाता इन्द्रकी सहायताके विना दुर्बल वा प्रबल सब विजयाभिलाषी प्राणी शत्रुओंका पराभव नहीं कर सकते अत एव युद्ध करते समय वे अपनी २ रक्षाके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं । जो इन्द्रदेव सब प्राणियोंके पुण्य पापका दर्शन करनेके लिये प्रतिबिंब † होजाते हैं और जो किसीसे भी न हटाये जासकने वाले पर्वत आदिको च्युत करने वाले हैं, हे जनों । वह इन्द्र हैं ॥ ९ ॥

दशमी ॥

यः शश्वंतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वा । जघान ।

† ऋग्वेदसंहिता ६ । ४७ । १८ में कहा है, कि-"रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।-इन्द्र प्रत्येक आकृतिके अनुसार प्रत्येक रूपको धारण करते हैं उनका यह रूप देखनेके लिये होता है, इन्द्र अपनी मायाओंसे बहुतसे रूपोंको प्राप्त होजाते हैं" ॥

यः । शर्धते । न । अनुऽददाति । शृध्याम् । यः । दस्योः ।

हन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १० ॥

य इन्द्रो महि महत् अत्यधिकम् एनः पापं ब्रह्महत्यादिरूपं दधानान् धारयतः शश्वतः । बहुनामैतत् । बहून् जनान् । जघानेति संबन्धः । के ते महापातकिन इति तान् आह । अमन्यमानान् इन्द्रम् उक्तमहिमोपेतं परदेवतेति मतिम् अकुर्वाणान् । स्तुत्या हविषा च इन्द्रम् अपूजयत इत्यर्थः । तादृशान् शर्वा हिंसक इन्द्रः । अथ वा शरुर्वज्रः । तेन वज्रेण जघान हिनस्ति । अथ वा अमन्यमानान् स्वात्मानं ब्रह्मतया अबुध्यमानान् । आत्मघातकान् इत्यर्थः । "असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः" इति [तै० आ० ८.६] श्रुतेः । अनात्मविदः पापिष्ठत्वं स्मर्यते ।

किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।

इति । तादृशानाम् इन्द्रकृतशिक्षा च श्रूयते । "अरुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्" इति [कौ० उ० ३. १] । "इन्द्रो यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्" इति च [तै० सं० ६. २. ७.५] । यश्च शर्धते इन्द्रनैरपेक्ष्येण शत्रुषु बलम् उत्साहं वा कुर्वते पुरुषाय शृध्याम् बलसाधनं कर्म नानुददाति आनुकूल्येन न प्रयच्छति । ❀ डुदाञ् दाने । जौहोत्यादिकः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः । "तिङि चोदात्तवति" इति गतेर्निघातः ❀ । यश्च दस्योः वृत्रादेर्हन्ता घातकः स जनास इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव ब्रह्महत्या आदि महापापोंको धारण करने वाले, इन्द्रको परदेवता न मानने वालोंको हिंसक होकर मार डालते हैं [अथवा–अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझने वाले आत्मघातियों को जो मार डालते हैं, तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६ में कहा भी

है, कि–"असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तं एनं ततो विदुः ।-जो ब्रह्मको असत् समझता है वह असत् ही होता है जो ब्रह्मको सत् समझता है उसको सत् कहते हैं" अनात्मवेत्ताका पापिष्ठत्व भी कहा है, कि–"किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ।–जो आत्मस्वरूपको नहीं समझता उस आत्मापहारी चोरने क्या २ पाप नहीं किया" और ऐसे पुरुषोंको इन्द्रका दण्ड देना भी सुना जाता है, कि "अरुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्" (कौषीतकि उपनिषत् ३ । १) "इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्" (तैत्तिरीयसंहिता ६ । २ । ७।५)॥] और जो इन्द्रकी अपेक्षा न रख कर बल दिखानेका उत्साह करने वालोंको बलसाधन धर्ममें अनुकूलता प्रदान नहीं करते हैं। जो वृत्र आदि दस्युओंके घातक हैं हे जनो ! वह इन्द्र हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् । ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि । अनुऽअविन्दत् ।
ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ११ ॥

य इन्द्रः पर्वतेषु गिरिषु इन्द्रभीत्या क्षियन्तम् निवसन्तम् ।

पर्वतेष्विति अध्रुवपदेन इन्द्राद् भीतस्य शम्बरस्य एकत्रानवस्थानं सूचितं भवति। एवं गिरिगह्वरेष्वाच्छन्नं शम्बरम् एतन्नामकम् असुरं चत्वारिंश्याम्। चत्वारिंशत्संख्यापूरणी चत्वारिंशी। तस्यां शरदि तस्मिन् संवत्सरे अन्वविन्दत् अन्विष्य लब्धवान्। लब्ध्वा व्यनाशयद् इत्यर्थः। किं च य इन्द्रः ओजायमानम् ओजो बलम्। तद्वद् आचरन्तम्। अतिशयितबलम् इत्यर्थः। ⊛ "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च"। "ओजसोऽप्सरसो नित्यम्" इति सकारलोपः ⊛। तादृशम् अहिम्। आगत्य हन्तीत्यहिर्वृत्रः। पुनः कीदृशम्। दानुम् दानवं शयानम् शयनं कुर्वाणं जघान घातयामास। उक्तम् अन्यत् ॥

जिन इन्द्रदेवने पर्वतोंमें डर कर घूमते हुए शम्बरको चालीस वर्ष तक ढूँढ कर मार डाला था और जिन इन्द्रदेवने बल दिखाने वाले शयन करते हुए दानव वृत्रासुरको मार डाला था, हे जनों! वह इन्द्र हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

य इन्द्रः कशीभिः दीप्तैर्वज्राद्यायुधैः स्वतेजोभिर्वा शम्बरम् असुरं पर्यतरत् पर्यतारयत्। गिरिनदीसमुद्रादिकान् सर्वानपि अत्यक्रामयद् इत्यर्थः। स्वयं वा तम् असुरं पर्यतरत्। पर्यभवद् इत्यर्थः। यश्च अचारुकास्ना अरमणीयेन आस्येन सुतम् अभिषुतं सोमम् कपालाद्युखादिस्थितम् अपिबत् पानम् अकार्षीत्। "इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणम्" इति हि मन्त्रवर्णः [ऋ० ८.९१.२]। यस्मिन्नन्द्रे हन्तव्ये सति अन्तर्गिरौ पर्वतस्य मध्ये शुद्धे देवयजनप्रदेशे यजमानम् सोमयागं कुर्वाणं गृत्समदं बहुं जनम्

अध्वर्युप्रभृति सदःस्थितं जनसंघातं चामूर्छत् आवव्रे । चुमुरिधुनिप्रभृतिकोऽसुरसंघात इति शेषः । स जनास इन्द्र इति पूर्ववत् ॥

जो मदीप्त वज्र आयुध आदिसे शम्बरासुरका तिरस्कार कर चुके हैं और जो पाले रहित पात्रमें निचोड़े हुए सोमका पान कर चुके हैं, जिन इन्द्रदेवके मारनेके लिये, सोमयाग करते हुए अध्वर्यु आदि जनसमूहको, चुमुरि धुनि आदि असुरोंने घेर लिया था, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिंधून् यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

यः । सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् । अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् ।

यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रऽबाहुः । द्याम् । आऽरोहन्तम् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १३ ॥

य इन्द्रः सप्तरश्मिः सप्तसंख्योकाः पर्जन्या एव रश्मयो यस्य स तादृशः । अथ वा सप्तरश्मिरादित्यः । तदात्मक इत्यर्थः । वृषभः वर्षिता कामानाम् अपां वा । तुविष्मान् बलवान् सर्तवे सरणाय प्रवहणाय सप्त सर्पणशीलान् सिन्धून् स्यन्दमानान्युदकानि अवासृजत् । अवाग् यथा भवति तथा निर्मितवान् । यद्वा सप्त सिन्धून् सप्तसंख्याका गङ्गाद्या नदीरवासृजत् । यश्च वज्रबाहुः वज्रहस्तः सन् द्याम् दिवम् आरोहन्तं रौहिणम् एतन्नामकम् असुरम् अस्फुरत् जघान ꣳ स्फुर स्फुल संचलने । तौदादिकः ꣳ । अन्यद्गतम्

जो इन्द्र सप्तरश्मि सूर्यरूप हैं, कामनाओंकी और जलोंकी वर्षा करने वाले हैं और जिन बली इन्द्रदेवने बहनेके लिये गंगा आदि सात नदियोंको प्रकट किया है, जिन इन्द्रने हाथमें वज्र धारण कर द्युलोकमें चढ़ते हुए रौहिण नामक असुरको मार डाला था, वह इन्द्र हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

द्यावा॑ चिदस्मै पृथि॒वी न॑मेते॒ शुष्मा॑च्चिदस्य॒ पर्व॑ता भयन्ते ।
यः सो॑म॒पा नि॑चि॒तो वज्र॑बाहु॒र्यो वज्र॑हस्तः॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ १४ ॥

द्यावा॑ । चि॒त् । अ॒स्मै॒ । पृ॒थि॒वी इति॑ । न॒मे॒ते॒ इति॑ । शुष्मा॑त् । चि॒त् । अ॒स्य॒ । पर्व॑ताः । भ॒य॒न्ते॒ ।
यः । सो॒म॒ऽपाः । नि॒ऽचि॒तः । व॒ज्र॒ऽबा॒हुः । यः । वज्र॑ऽहस्तः । सः । ज॒ना॒सः॒ । इन्द्रः॑ ॥ १४ ॥

अस्मै इन्द्राय द्यावा द्यावौ पृथिवी पृथिव्यौ । परस्परापेक्षया द्विवचनम् । चित् अप्यर्थे । नमेते इन्द्रस्य महिम्ना स्वयमेव प्रह्वीभवतः । अस्य इन्द्रस्य शुष्मात् बलात् पर्वताश्चित् पर्वता अपि भयन्ते । पक्षच्छेदाद् बिभ्यति । ञिभी भये । "बहुलं छन्दसि" इति शप् । यश्च इन्द्रः सोमपाः सोमस्य पाता सन् निचितः प्रज्ञातः । यद्वा नितरां चितो निचितः । दृढाङ्ग इत्यर्थः । वज्रबाहुः वज्रवत् सारभूताभ्यां बाहुभ्याम् उपेतः यश्च वज्रहस्तः वज्रं हस्ते धारयन् भवति स जनास इन्द्र इति ॥

इन इन्द्रके लिये द्यावापृथिवी नमती हैं अर्थात् इन्द्रकी महिमा से स्वयं ही महिन होजाती हैं, जिन इन्द्रदेवके बलसे पर्वत भी डरते हैं, सोमपान कर जो इन्द्र दृढ़ अंगों वाले हो गए हैं, जिन की भुजाएँ वज्रकी समान दृढ़ हैं, और जो हाथमें वज्रको धारण किये रहते हैं वह इन्द्र हैं ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः । शशमानम् । ऊती ।
यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राधः । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः सुन्वन्तम् सोमाभिषवं कुर्वन्तं यजमानम् अवति रक्षति । यश्च पुरोडाशादीनि हवींषि पचन्तं यश्च ऊती ऊत्या रक्षणेन निमित्तेन शंसन्तं स्तुवन्तं यश्च शशमानम् सामभिः स्तोत्रं कुर्वाणं रक्षति । ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं यस्य वर्धनम् वृद्धिकरं भवति । तथा यस्य सोमो वृद्धिहेतुर्भवति । यस्य च इदम् अस्मदीयं राधः पुरोडाशादिलक्षणम् अन्नं वृद्धिकरं भवति । स इन्द्रइत्यादि गतम् ॥

जो सोमाभिषव करने वाले यजमानकी रक्षा करते हैं, जो पुरोडाश आदि हवियोंका पाक करने वालेकी रक्षा करते हैं जो

रक्षाके कारण स्तुति करते हुए और सामसे स्तोत्रपाठ करते हुए की रक्षा करते हैं, इद्र स्तोत्र जिनकी वृद्धि करने वाला है और सोम जिसकी वृद्धिका हेतु है और हमारा पुरोडाश आदिरूप अन्न जिसकी वृद्धि करने वाला है, हे जनों ! वह इन्द्र है १५

षोडशी ॥

जातो व्य१ख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

य इन्द्रो जातः प्रादुर्भूतमात्र एव सन् पित्रोः द्यावापृथिव्योः उपस्थे उत्सङ्गे तयोर्मध्ये व्यख्यत् विख्यातवान् प्रकाशितोभूत् । यश्च इन्द्रः भुवः भुवं मातृभूतां न वेद न जानाति । तथा परस्य उत्कृष्टस्य जनितुः उत्पादयितुं परम् उत्पादकं पितृस्थानीयं द्युलोकमपि न वेद न जानाति । तयोर्वस्तुतः स्वजननं प्रति अकारणत्वाद् इत्यभिप्रायः । यद्वा भुवो जनितुः भूम्या उत्पादकस्य परस्य अन्यस्य स्वरूपं भुवो जनितारं परम् अन्यम् इति वा व्याख्येयम् । न वेद जानाति । स्वातिरेकेणेति शेषः । स्वस्यैव सर्वकारणत्वाद् इत्यभिप्रायः । किं च अस्मद् अस्मत्तः अस्माभिः करिष्यमाणः स्तविष्यमाणः स्तूयमानश्च सन् । नशब्दश्चार्थे । देवानां व्रता व्रतानि कर्माणि देवार्थान् आ ॥ ® उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ® ॥ आ पूरयति ॥ स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव प्रादुर्भूत होते ही द्यावापृथिवीके मध्यमें प्रकाशित होगए थे, जो इन्द्र मातृभूता पृथिवीको नहीं जानते हैं तथा उत्कृष्ट वस्तुके उत्पादक पितृस्थानीय द्युलोकको भी नहीं जानते हैं [क्योंकि वे वास्तवमें अपने जननके प्रति अकारण हैं। अथवा वह भूमिके उत्पादक अन्यके स्वरूपको—भूमिको उत्पन्न करने

वाला कोई और है इस बातको नहीं जानते हैं, क्योंकि—वह अपने आप ही सबके कारण हैं।] और हमसे स्तुति पाते हुए वह इन्द्र देवताओंको पूरित करते हैं। हे जनों! वह इन्द्र हैं १६

सप्तदशी ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।

यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

य इन्द्रः सोमकामः सोमं कामयमानः सन् हर्यश्वसूरिः हर्याख्यानाम् अश्वानां सुष्ठु ईरयिता प्रेरयिता भवति। यागप्रदेशस्यागमनायेति शेषः। अथ वा यः सोमकामः यश्च हर्यश्वः सूरिः विद्वांश्च। किं च यस्माद् इन्द्राद् विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि भूतजातानि रेजन्ते बिभ्यति। य इन्द्रः शम्बरम् असुरं जघान-यश्च शुष्णम् असुरं जघान घातयामास। यश्च एवं विधेषु असाधारणेषु व्यापारेषु एकवीरः असाधारणः शूरो भवति स जनास इन्द्र इति उक्तार्थः ॥

सोमको चाहते हुए जो, हरि नामक अश्वोंको भली प्रकार चलाते हैं। और जिनसे सब भूत डरते हैं, जिन्होंने शम्बरासुर का संहार किया है, जिन्होंने शुष्ण असुरको मार डाला है, जो ऐसे असाधारण व्यापारोंमें असाधारण शूर होते हैं, हे जनों! वह इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

अष्टादशी ॥

य सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः। ..

वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम

यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् । वाजम् । दर्दर्षि ।
सः । किल । असि । सत्यः ।
वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः । सुऽवीरासः । विदथम् ।
आ । वदेम ॥ १८ ॥

अत्र ऋषिः इन्द्रस्य अविद्यमानतां शङ्कमानानाम् अज्ञानिनां विश्वासं जनयन् इन्द्रं प्रत्यक्षीकृत्य ब्रूते । हे इन्द्र यस्त्वं दुध्रश्चित् वस्तुनो दुर्धर्षोपि सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय तथा पचते पशुपुरोडाशादिहविःपाकं कुर्वते च यजमानाय वाजम् तदभिमतम् अन्नम् आ दर्दर्षि सर्वतो भृशं प्रयच्छसि । ⊛ दृ गतौ । अस्मात् क्रियासमभिहारे यङ् । अभ्यासस्य लोपः । अभ्यासस्य "रुग्रिकौ च लुकि" इति रुगागमः । यद्योगाद् अनिघातः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तः ⊛ । स तादृशस्त्वं सत्यः किलासि । मन्त्रद्रष्टुर्महर्षेः प्रत्यक्षत्वेपि इदानींतनानां कथं प्रत्यक्षतेति शङ्कायां यष्टॄणाम् अभिमतान्नलक्षणफलस्य सत्यदृष्टत्वाद् इन्द्रोपि सत्य एवेत्यभिप्रायेण स किलासि सत्य इति ब्रूते । वयं विश्वह विश्वेष्वपि अहःसु सर्वदा । ⊛ "सुपां सुलुक्०" इत्यादिना सप्तमीबहुवचनस्य लुक् । शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वम् । कदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ⊛ । हे इन्द्र ते तव प्रियासः प्रियाः सन्तः सुवीरासः शोभनपुत्रादियुक्ताश्च सन्तः विदथम् वेदसाधनं स्तोत्रम् आ वदेम ब्रूयाम ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

[इस ऋचामें ऋषि इन्द्रकी अविद्यमानताकी शङ्का करतेहुए अज्ञानियोंको, विश्वास कराते हुए इन्द्रको प्रत्यक्ष करके कहते

हैं, कि–] हे इन्द्र! आप वास्तवमें दुर्धर्ष होते हुए भी सोमाभिषव करने वाले यजमानके लिये और पुरोडाश आदिका पाक करते हुए यजमानके लिये अभिमत अन्नको सब ओरसे प्रदान करते हैं, ऐसे आप अवश्य सत्य हैं।[मन्त्रद्रष्टा महर्षिका प्रत्यक्षत्व होने पर भी आधुनिक प्राणियोंके लिये उनका प्रत्यक्षत्व कैसे हैं, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि–यज्ञार्थोंको अभिमत अन्नफलके सत्य दीखनेसे इन्द्र भी सत्य हैं] हम सब दिनोंमें आपके प्रिय रहते हुए और शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते हुए आपके स्तोत्रका उच्चारण करते रहें ॥ १८ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६५०)

चतुर्विंशेऽभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे "अस्मा इदु प्र तवसे तुराय" इति अहीनसूक्तसंज्ञकं विनियुक्तम्। "चतुर्विंश 'इन्द्रमिद्गाथिनो बृहद्' [२०. ३८. ४] इत्याज्यस्तोत्रियः" इति प्रक्रम्य सूत्रितम्। "अभि प्र वः सुराधसम् [२०, ५१. १] प्र सु श्रुतं सुराधसम् [२०. ५१. ३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ। मा चिदन्यद् वि शंसत [२०. ८५. १] यच्चिद्धि त्वा जना इमे [२०. ८५. ३] इति वा। अस्मा इदु प्र तवसे तुराय [२०. ३५] इत्यहीनसूक्तम् आवपते" इति [वै० ६. १]॥

तथा अप्तोर्याम्णि माध्यंदिनसवने तच्छस्त्र एव विनियुक्तम्। सूत्रितं हि। "अप्तोर्याम्णि गर्भकारं शंसति" इति प्रक्रम्य सुकीर्तिं वृषाकपिं सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते" इति [वै० ४. ३]॥

चतुर्विंश अभिजित्में, विषुवत्में, विश्वजित्में, महाव्रतमें और ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें "अस्मा इदु प्र तवसे तुराय" यह अहीननामक सूक्त विनियुक्त होता है। "चतुर्विंश 'इन्द्र मिद्गाथिनो बृहद्' (२० । ३८ । ४) इत्याज्यस्तोत्रियः" का प्रक्रम करके सूत्रमें

कहा है, कि-"अभि प्र वः सुराधसम् (२० । ५१ । १) प्र सु श्रुतं सुराधसम् (२० । ५१ । ३) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ । मा चिदन्यद्वि शंसत (२० । ८५ । १) यच्चिद्धि त्वा जना इमे (२० । ८५ । ३) इति वा । अस्मा इदु प्र तवसे तुराय (२० । ३५ इति अहीनसूक्तं आवपते" (वैतानसूत्र ६।१)

तथा अप्तोर्यामके मध्यन्दिनसवनमें और उस शस्त्रमें भी विनियुक्त होता है । इस विषयमें वैतानसूत्र ४ । ३ का प्रमाण है, कि-"अप्तोर्याम्णि गर्भकारं शंसति" इति प्रक्रम्य सुकीर्तिं वृषाकपिं सामसूक्तं अहीनसूक्तं आवपते" ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा १

अस्मै । इत् । ऊं इति । प्र । तवसे । तुराय । प्रयः । न । हर्मि । स्तोमम् । माहिनाय ।

ऋचीषमाय । अध्रिऽगवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्माणि । रातऽतमा

अस्मा इदु । इद् उ इति निपातद्वयं पादपूरणम् । ॐ अथापि पदपूरणाः कमीमिद्विति यास्कोक्ते [नि० १. ६] ॐ । अवधारणार्थं वा निपातद्वयम् । अस्मा एव इन्द्राय ओहम् वहनीयं प्रापणीयं स्तोमम् स्तोत्रं प्र हर्मि प्रकर्षेण हरामि । प्रकरोमीत्यर्थः । कीदृशायेन्द्राय । तवसे महद्भाय बलवते वा तुराय सोमपानार्थं त्वरमाणाय शत्रु हिंसकाय वा माहिनाय । महन्नामैतत् । गुणैर्महते ऋचीषमाय ऋचा स्तुतिसाधनया समाय । ऋग् यादृग्रूपं प्रतिपादयति तादृग्रूप एव तत्र संभितो भवतीत्यृचीषम इत्यर्थः । अथवा

ऋक् स्तुतिः तथा समाय। वस्तुतः अपरिमेयगुणत्वेपि ऋचा परिमीयत परिच्छिद्यते इत्यृचीपमत्वाभिधानम्। अध्रिगवे अधृतगमनकर्मणे अप्रतिहतगमनाय इन्द्राय। स्तोत्रप्रेरणे दृष्टान्तम् आह। प्रयो नेमि। प्रय इत्यन्ननाम। यथा क्षुधितस्य अन्नं प्रेरयति तद्वत् स्तुतिकामाय स्तोमं प्रहर्मीत्यर्थः। न केवलं स्तोत्रम् अपि तु राततमा राततमानि पूर्वैर्यजमानैरत्यर्थं दत्तानि ब्रह्माणि प्रवृद्धानि सोमादिहवींष्यपि प्र हर्मीनि। ॐ अध्रिगव इत्यत्र अधृतः अन्येनानिवारितः गौर्गमनम् अस्येति तस्यावयवार्थः। "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" इति ह्रस्वत्वम्। पृषोदरादित्वाद् अधृतशब्दस्य अध्रिभावः। प्रोहम् इति। वहतेः कर्मणि घञि छान्दसं संप्रसारणम्ॐ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये ही प्रापणीय स्तोत्रको उत्कृष्टरूपसे उच्चारण करता हूँ। यह इन्द्रदेव बलवान् हैं, सोमपानके लिये त्वरा करते रहते हैं, गुणोंमें महान् हैं, ऋचा इनके जैसे रूपका प्रतिपादन करती है यह वैसे ही रूप पर सम्पन्न होजाते हैं, तात्पर्य यह है; कि-वास्तवमें अपरिमेय गुणों वाले होने पर भी ऋचा से इनका परिच्छेद होता है अत एव यह ऋचीपम हैं। और इनका गमन अप्रतिहत है। ऐसे इन्द्रदेवके लिये, जिस प्रकार भूखेके पास अन्नको प्रेरित करते हैं, तिस प्रकार स्तुतिको प्रेरित करता हूँ। केवल स्तोत्रको ही प्रेरित नहीं करता हूँ, किन्तु पूर्व यजमानोंके द्वारा विशाल परिमाणमें दी हुई हवि आदिको भी प्रेरित करता हूँ॥ १॥

द्वितीया॥

अस्मा इदु प्रय इव प्रयंसि भरांम्यङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त

अस्मै । इत् । ऊं इति । मयःऽइव । प्र । यंसि । भरामि । आङ्गूषम् । बाधे । सुऽवृक्ति ।

इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रत्नाय । पत्ये । धियः । मर्जयन्त

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय मय इव अन्नमिव प्र यंसि प्रयच्छामि । ⊛ यम उपरमे । अस्माल्लटि पुरुषव्यत्ययः । "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् ⊛ । सामान्येनोक्तं विशिनष्टि भरामीत्यादिना । बाधे शत्रूणां बाधनाय सुवृक्ति सुष्ठु आवर्जकम् आङ्गूषम् स्तोत्ररूपम् आघोषम् । ⊛ आङ्गूष स्तोम आघोष इति यास्कः [नि० ५. ११] ⊛ । भरामि संपादयामि । किं च प्रत्नाय पुराणाय पत्ये सर्वस्य स्वामिने इन्द्राय अन्येपि ऋत्विजो हृदा हृदयेन मनसा हृदयान्तर्वर्तिना अन्तःकरणेन मनीषा मनीषया बुद्ध्या धियः स्तुतीः मर्जयन्त मार्जयन्ति संस्कुर्वन्ति ॥

इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी समान मैं स्तोत्रको भेजता हूं। शत्रुओंको बाधा देनेके लिये आवर्जक स्तोत्ररूप घोषका सम्पादन करता हूं, और प्राचीन सर्वस्वामी इन्द्रके लिये अन्य ऋत्विज भी हृदयसे मनसे और बुद्धिसे स्तुतियोंको संस्कृत करते हैं २

तृतीया ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यम् । उपमम् । स्वःसाम् । भरामि । आङ्गूषम् । आस्येन ।

मंहिष्ठम् । अच्छोक्तिऽभिः । मतीनाम् । सुवृक्तिऽभिः । सूरिम् । ववृधध्यै ॥ ३ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय रथं तं मसिद्धम् उपमम् । उप- मीयते अनेनेत्युपमः । उपमास्थानभूतम् । ⊛ "घञर्थे कविधा- नम्" इति करणे कप्रत्ययः । "आतो लोप इटि च" इत्याकार लोपः ⊛ । स्वर्षाम् सुष्ठु भरणीयस्य धनस्य दातारं स्वर्गस्य प्रापकं वा एवंलक्षणम् आङ्गूषम् स्तोत्रलक्षणम् आघोषम् आस्येन मुखेन भरामि संपादयामि । किमर्थम् मंहिष्ठम् अतिशयेन धन- वन्तम् अतिशयेन महद् वा सूरिम् सुष्ठु धनस्य ईरयितारं वि- पश्चितं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वावृधध्यै वर्धयितुं मतीनाम् स्तुतीनां संबन्धिभिः । कैः साधनैः । सुवृक्तिभिः सुष्ठु आवर्जकैः अच्छो- क्तिभिः स्वच्छवचनैः । आङ्गूषं भरामीति संबन्धः ॥

मैं इन ही इन्द्रदेवके लिये, उपमाके योग्य, सुन्दरतापूर्वक धन प्रदान करने वाले स्तोत्ररूपी घोषका मुखसे सम्पादन करता हूँ। परमधनी धनको भली प्रकार प्रेरित करने वाले इन्द्रको स्तुतियों से बढ़ानेके लिये स्वच्छ वचनोंसे मैं इन्द्रके स्तोत्रका सम्पादन करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४

अस्मै । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । सम् । हिनोमि । रथम् । न । तष्टाऽइव । तत्ऽसिनाय ।
गिरः । च । गिर्वाहसे । सुऽवृक्ति । इन्द्राय । विश्वम्ऽइन्वम् । मेधिराय ॥ ४ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय तत्सिनाय तदेव सिनं सोमादि-

लक्षणम् अन्नं यस्य तादृशाय इन्द्राय अथ वा तस्मिनाय रयसा-ध्यान्नवते स्वामिने तष्टा शिल्पी रथं न यथा रथं संहिनोति तद्वत् स्तोमं सं हिनोमीति । किं च गिर्वाहसे गीर्भिः प्रापणीयाय मेधिराय । मेधो यज्ञः । यज्ञार्हाय मेधाविने वा इन्द्राय सुवृक्ति सुष्ठु आवर्जकं विश्वमिन्वम् विश्वैः सर्वैः प्राप्तव्यं विश्वैः सर्वैर्यजमानैः प्रापणीयं वा सोमादिलक्षणं हविः गिरश्च स्तुत्यर्थानि वचांसि च । सं हिनोमीत्यनुषङ्गः । यद्वा सुवृक्ति विश्वमिन्वम् इति पदद्वयं फलपरतया व्याख्येयम् । सुष्ठु आवर्जनीयं विश्वैर्बन्ध्वादिभिः प्राप्तव्यम् उपभोक्तव्यम् अन्नम् । लब्धुम् इत्यध्याहारः ॥

मैं इन ही सोमादिरूप अन्न वाले इन्द्रदेवके लिये शिल्पीके रथको बनानेकी समान अन्नको बनाता हूँ–प्रेरित करता हूँ। यह इन्द्रदेव स्तुतियोंसे प्रापणीय हैं, यज्ञार्ह हैं, सब यजमानोंसे प्राप्तव्य हैं, ऐसे इंद्रदेवके लिये मैं हवि और स्तुतिके वचनोंको प्रेरित करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥

अस्मै । इत् । ऊं इति । सप्तिम्ऽइव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम् । जुह्वा । सम् । अञ्जे ।

वीरम् । दानऽओकसम् । वन्दध्यै । पुराम् । गूर्तऽश्रवसम् । दर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय श्रवस्या श्रवस्यया । श्रव इत्यन्ननाम । अन्नेच्छया । अन्नलाभायेत्यर्थः । ॐ श्रवःशब्दात्

"सुप आत्मनः क्यच्"। तदन्ताद्धातोर्भावे "अ प्रत्ययात्" इत्यकारप्रत्ययः। ततष्टाप्। सुपां सुलुक्०" इति तृतीयाया डादेशः। उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम् ॐ। अर्कम् अर्चनीयम् अन्नं हविर्लक्षणम् अन्नं जुह्वा आज्यपूर्णया समञ्जे समक्तं करोमि। ॐ व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॐ। यद्वा अर्क स्तुतिसाधनं मन्त्रम्। ॐ अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति यास्कः[नि० ५. ४]ॐ। जुह्वा जुह्वद् अञ्जनसाधनया जिह्वया समग्रं संयोजयामि। तत्र दृष्टान्तः। सप्तिमिव अश्वमिव। ॐ जातावेकवचनम् ॐ। अश्वान् यथा अवस्यया रथे समक्तान् संगतान् करोति तद्वत्। किं च वीरम् शत्रूणां विविधम् ईरयितारं दानौकसम् दानानाम् ओकः सद्मस्थानीयं पुराम् असुरनगराणां दर्माणम् दारकं गूर्तश्रवसम्। श्रव इत्यन्ननाम। प्रशस्यान्नं प्रशस्यकीर्तिं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वन्दध्यै वन्दितुम्। आह्वयामीति शेषः॥

मैं इन इंद्रदेवके लिये अन्नकी इच्छासे पूजनीय हविरूप अन्नको घृतपूर्ण स्रुवेसे संयुक्त करता हूँ। अथवा जुहूकी समान अञ्जनसाधन मन्त्रसे संयुक्त करता हूँ। जैसे घोड़ोंको रथमें संयुक्त करते हैं तिस प्रकार संयुक्त करता हूँ। और शत्रुओंको अनेक प्रकार से खदेड़ने वाले, दानोंके भवनरूप, असुरोंके नगरोंको विदीर्ण करने वाले और उत्कृष्ट कीर्ति वाले इन्द्रदेवकी वन्दना करनेके लिये मैं उनका आह्वान करता हूँ॥ ५॥

षष्ठी॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः॥ ६॥

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्वष्टा । तक्षत् । वज्रम् । स्वपःऽतमम् । स्वर्यम् । रणाय ।

वृत्रस्य । चित् । विदत् । येन । मर्म । तुजन् । ईशानः । तुजता । कियेधाः ॥ ६ ॥

अस्मा इदु अस्मा एवेन्द्राय त्वष्टा सकलजगन्निर्माता विश्वकर्मा वज्रम् एतन्नामकम् आयुधं तक्षत् अतक्षत् निर्मितवान्। कीदृशम् । स्वपस्तमम् अतिशयेन शोभनकर्माणं स्वर्यम् स्वापयवीर्यं स्तुत्यं वा । किमर्थम् । रणाय युद्धाय । तुजता हिंसता येन वज्रेण कियेधाः । किं परिमाणं यस्य शत्रुबलस्य तादृग् बलं धारयतीति कियेधाः । यद्वा क्रममाणान् शत्रून् धारयतीति निगृह्णातीति कियेधाः । परैरपरिच्छेद्यबल इत्यर्थः । ❀ कियेधाः कियद्धा इति वा क्रममाणधा इति वेति यास्कः [नि० ६, २०] । पृषोदरादित्वाद् पूर्वपदस्य कियेभावः । दधातेर्विच् प्रत्ययः ❀ । ईशानः सर्वस्य स्वामी भवन् इन्द्रः वृत्रस्य चित् सर्वावरकस्य प्रबलस्य वृत्रनाम्नोऽसुरस्य मर्म । यस्मिन् स्थाने विद्धः सद्यो म्रियते तद् मर्म । तत् तुजन् हिंसन् व्यथयन् विदत् अविदत् लब्धवान्। लब्ध्वा प्राहार्षीद् इत्यर्थः । ❀ विद्लृ लाभे । लुङि लृदित्त्वात् च्लेः अङ् आदेशः । "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि" इत्यडभावः । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः ❀ ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही सकल जगत्का निर्माण करने वाले विश्वकर्माने त्वष्टा नामक आयुधको बनाया है । वह आयुध शोभन कर्म करने वाला है, स्तुत्य है, वह रणके लिये बनाया गया है और वह क्रममाण शत्रुओंका निग्रह करने वाला है। सबके स्वामी इन्द्रदेवने सर्वावरक प्रबल वृत्रासुरके मर्मको भी खोज कर उस पर प्रहार किया था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

अस्य । इव् । ऊं इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् । पपिऽवान् । चारु । अन्ना ।

मुषायत् । विष्णुः । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् । तिरः । अद्रिम् । अस्ता ॥ ७ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य मातुः सर्वस्य निर्मातुः महः महतः माहात्म्यवतः एवंभूतस्य इन्द्रस्य । असाधारणं कर्म उच्यत इति शेषः । यद्वा उक्तलक्षणस्य यज्ञस्येति व्याख्येयम् । किं तत् कर्मेति उच्यते । अयम् इन्द्रः सवनेषु सोमयागसंबन्धिषु प्रातरादिषु त्रिषु सवनेषु सद्यः तदानीमेव होमसमय एव पितुम् । अन्ननामैतत् । पातव्यं सोमं पपिवान् पीतवान् । किं च चारु चारूणि । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति विभक्तेर्लुक् ❀ । अन्ना अन्नानि सवनीयपुरोडाशधानाकरम्भादीनि । भक्षितवान् इति शेषः । किं च विष्णुः सवनत्रयव्यापी इन्द्रः सहीयान् अतिशयेन शत्रूणाम् अभिभविता । सोमपानादिजनितेन वर्तेनेति भावः । पचतम् परिपक्वम् अपहारयोग्यभूतं शत्रूणां धनं मुषायत् अपाहरत् । ❀ व्यजन्ताल्लङि "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इत्यडभावः ❀ । तथा अद्रिम् अस्ता अद्रेर्वज्रस्य क्षेपकः यथोक्तः स इन्द्रः वराहम् । ❀ वराहो मेघो भवति वराहार इति निरुक्तम् [५. ४] ❀ । वराहारम्

उत्कृष्टस्योदकस्य आहर्तारं धारकं मेघं तिरःमाप्तः सन्। ❀ तिरः सत इति माप्तस्येति यास्कः [नि० ३, २०] ❀। विध्यत् अविध्यत् वृष्टिलाभार्थं व्यदारयत् ॥

इन सबका निर्माण करने वाले, माहात्म्यसम्पन्न इन्द्रका असाधारण कर्म कहा जाता है, कि-यह इन्द्रदेव सोमयागसंबंधी प्रातरादि तीनों सवनोंमें होमके समय ही सोमरूपी अन्नको पीगए और सवनीय पुरोडाश धाना करंभ आदि चारु अन्नों को खागए, और यह सवनत्रयव्यापी इन्द्र सोमपानजनित बल के कारण शत्रुओंको बड़े दवाने वाले हैं और यह अपहारके योग्य शत्रुओंके धनको छीन लेते हैं और वज्रका प्रयोग करने वाले इन इन्द्रने, श्रेष्ठ जलका आहरण करने वाले मेघको वृष्टिके लिये विदीर्ण कर डाला था ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्यं ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः

अस्मै । इत् । ऊं इति । ग्नाः । चित् । देवऽपत्नीः । इन्द्राय ।
अर्कम् । अहिऽहत्ये । ऊवुरित्यूवुः ।
परि । द्यावापृथिवी इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति ।
महिमानम् । परि । स्त इति स्तः ॥ ८ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय अहिहत्ये । अहिर्वृत्रः । तस्य हनने निमित्तभूते सति देवपत्नीः देवानां पालयित्र्यो गायत्र्याद्याः ग्नाश्चित् गमनस्वभावा अपि अर्कम् अर्चनसाधनं स्तोत्रम् ऊवुः अतन्वत । यद्वा अस्मा इन्द्राय ग्नाश्चित् । ❀ मेना ग्ना इति स्त्री-

णाम् इति निरुक्तम् [३. २१]। ग्रा गच्छन्त्येना इति तत्रत्यं निर्वचनम् ❀। स्वस्वपतिभिरभिगन्तव्याः स्त्रियः। ता विशिनष्टि। देवपत्नीरिति। देवा इन्द्राद्याः पतयो यासां ता देवपत्न्यः। ताश्च "उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीः" इति [ऋ० ५. ४६, ८] मन्त्रोक्ता इन्द्राण्यग्नाय्यश्विन्याद्याः। ता देवपत्न्यः अर्कम् अर्चनसाधनं हविः ऊवुः स्वात्मनि अतन्वत। ❀ वेञ् तन्तुसंताने। लिटि "वेञो वयिः"। लिटः कित्त्वाद् यजादित्वेन संप्रसारणे यकारस्य "लिटि वयो यः" इति प्रतिषेधाद् वकारस्य संप्रसारणम्। परपूर्वत्वे द्विर्वचनादि। "वश्चास्यान्यतरस्यां किति" इति यकारस्य वकारादेशः ❀। स चेन्द्रः उर्वी विस्तृते द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्या परि जभ्रे स्वतेजसा परिजहार। अतिचक्रामेत्यर्थः। अस्य इन्द्रस्य महिमानम् महत्त्वं ते द्यावापृथिव्यौ न परि ष्टः न पराभवतः। महत्त्वसंकोचं कर्तुं शक्ते नाभूताम् इत्यर्थः॥

इन इन्द्रदेवके लियेही वृत्रहननका अवसर आने पर देवताओं का पालन करने वालीं (देवपत्नियें) गायत्री आदिने गमन स्वभाव वालीं होने पर भी अर्चनसाधन स्तोत्रको विस्तृत किया था। अथवा-देवताओंकी पत्नी इन्द्राणी आदिने अर्चनसाधन हविको अपनेमें विस्तृत किया था। और इन इन्द्रदेवने विस्तृत द्यावापृथिवीको अपने तेजसे अतिक्रमण किया था। इन इन्द्रके महत्त्वको द्यावापृथिवी पराभव नहीं कर सकीं थीं अर्थात् इनके महत्त्वका संकोच नहीं कर सकीं थीं॥ ८॥

नवमी॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्। स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय॥ ९॥

अस्य । इत् । एव । प्र । रिरिचे । महिऽत्वम् । दिवः । पृथिव्याः ।

परि । अन्तरिक्षात् ।

स्वऽराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वऽगूर्तः । सुऽअरिः । अमत्रः ।

ववक्षे । रणाय ॥ ६ ॥

अस्येदेव अस्यैवेन्द्रस्य महित्वम् महत्त्वं माहात्म्यं दिवः द्युलोकात् परि उपरि प्र रिरिचे । ❀ अत्र प्रेत्युपसर्गो धात्वर्थं बाधते। प्रस्मरणं प्रस्थानम् इति यद् ❀ । अधिकं भवतीत्यर्थः । तथा पृथिव्याः परि भूलोकादप्युपरि प्र रिरिचे । एवम् अन्तरिक्षात् द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनो यक्षगन्धर्वाप्सरःप्रभृतीनाम् आश्रयभूताद् अन्तरिक्षलोकादपि प्र रिरिचे । ❀ रिचिर् विरेचने । "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति वर्तमाने लिट् ❀ । किं च अयम् इन्द्रो दमे दमयितव्ये शत्रुजने स्वराट् स्वेनैव तेजसा राजमानः । विश्वगूर्तः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन्नपि कार्ये उद्गूर्णबलः । स्वरिः सुष्ठु अभिगन्ता । यद्वा स्वरिः शोभनः इन्द्रव्यतिरिक्तेनान्येन पराभवितुम् अशक्यः शत्रुः सुशब्देन उच्यते । तादृशेन अरिणा उपेतः । अमत्रः युद्धार्थं गमनकुशलः । ❀ अम गत्यादिषु । अमिनक्षियजिवधि० [उ० ३. १०५] इत्यादिना अत्रन् प्रत्ययः❀ । एवंमहानुभाव इन्द्रो रणाय रमणीयाय संग्रामाय आ ववक्षे आवहति हृष्टचर्थं मेघान् प्रापयति । ❀ वहेर्लेटि "सिब्बहुलं लेटि" इति सिप् । "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । ढत्वकत्वषत्वानि । "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ ॥

इन ही इन्द्रदेवका माहात्म्य द्युलोकके भी ऊपर फैला हुआ है अर्थात् द्युलोकसे भी अधिक है। पृथ्वीलोकके ऊपर भी फैला हुआ है और द्यावापृथिवीके मध्यके लोक-गन्धर्व अप्सरा आदि

के आश्रय—अन्तरिक्षके ऊपर भी फैला हुआ है, । और यह इन्द्रदेव दमन करने योग्य शत्रुओं पर अपने ही तेजसे दमकते रहते हैं । सब कार्योंमें इनका बल प्रचण्ड रहता है । यह भली प्रकार अभिगमन करने वाले हैं, युद्धके लिये गमन करनेमें कुशल हैं ऐसे महानुभाव इन्द्र रणके लिये तृप्त्यर्थ मेघोंको लाते हैं ६

दशमी ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुषन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण । वृत्रम् । इन्द्रः ।

गाः । न । व्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने । सऽचेताः ॥ १० ॥

अस्येदेव अस्यैव इन्द्रस्य शवसा बलेन तेजसा शुषन्तम् शुष्यन्तम् । ❀ शुष शोषणे । श्यनि प्राप्ते व्यत्ययेन शः । कदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वर एव शिष्यते ❀ । उक्तरूपं वृत्रम् इन्द्रो देवः वज्रेण आयुधेन वि वृश्चत् व्यच्छिनत् । तथा गा न पणिभिरपहृता गा यथा अमुञ्चत् मोचितवान् एवं व्राणाः वृत्रेण आवृता अपः । ❀ वृञ् वरणे । कर्मणि लिट् । शानचि "बहुलं छन्दसि" इति यको लुक् । शानचो ङित्त्वाद् गुणाभावे यण् आदेशः ❀ । कीदृशीरपः । अवनीः अवित्रीः सकलप्राणिरक्षणहेतुभूता अमुञ्चत् मेघं भित्त्वा अवर्षीत् । तथा कृत्वा दावने हविर्दात्रे यजमानाय श्रवः सर्वैः श्रूयमाणं विख्यातम् अन्नं सचेताः यजमानेन समानचित्तः सन् अभि । ❀ उपसर्गश्रुतेर्यो-

थक्रियाध्याहारः ॥ अभ्यगमयत् । अथ वा आभिमुख्येन। आपच्छद् इति शेषः ॥

इन ही इन्द्रदेवके तेजसे शुष्क होते हुए वृत्रासुरको इन्द्रदेवने अपने आयुधसे काट डाला था, और पणियोंकी हरी हुई गौओं को जिस प्रकार छुड़ाया था इसी प्रकार वृत्रासुरसे घेरे हुए, सकल प्राणियोंकी रक्षाके हेतु जलोंको मेघोंको विदीर्ण करके बरसा दिया। इस प्रकार करके हविर्दाता यजमानके लिये सबमें प्रसिद्ध अन्नको समान चित्त होकर दिया ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । त्वेषसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यत् ।
वज्रेण । सीम् । अयच्छत् ।
ईशानऽकृत् । दाशुषे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः ।
कः ॥ ११ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य त्वेषसा दीप्तेन बलेन सिन्धवः स्यन्दनशीला नद्यो रन्त अरमन्त स्वेस्वे स्थाने रमन्ते । यद् यस्मात् कारणाद् अयम् इन्द्रो वज्रेण सीम् सर्वतः एनान् सिन्धून् वज्रेण पर्ययच्छत् परितो नियमितवान् । तस्मात् रमन्त इति पूर्वेण संबन्धः। किं च ईशानकृत् शत्रून् हत्वा आत्मानं स्वामिनं कुर्वन् अथ वा दरिद्रस्य ईशानकर्ता दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय दशस्यन् तद्-

भिमतं प्रयच्छन् इन्द्रः तुर्वीतये एतत्संज्ञकाय अगाधे जले निमग्नाय तुर्वणिः तूर्णवनिः शीघ्रं संभक्ता सन् गाधम् प्रतिष्ठां कः अकः अकार्षीत्। ❀ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक्। गुणः। "हल्ङ्या०" इत्यादिना तलोपः ❀ ॥

इन ही इन्द्रके दीप्त बलसे स्यन्दनशील नदियें अपने २ स्थानमें रमण करती हैं, क्योंकि-इन इन्द्रदेवने वज्रके द्वारा इन नदियोंको चारों ओरसे नियमित कर दिया है, अत एव यह नदियें रमण करती हैं। और यह इन्द्रदेव यजमानको ईश बनाने वाले हैं और हविर्दाता यजमानको अभिलषित फल देने वाले हैं और अगाध जलमें निमग्न तुर्वीतिके लिये शीघ्र ही प्रतिष्ठाको देने वाले हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

अस्मा इदु प्र भंरा तूतुंजानो वृत्राय वज्रमीशानः क्रियेधाः।
गोर्न पर्व वि रंदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै १२

अस्मै। इत्। ऊं इति। प्र। भर। तूतुंजानः। वृत्राय। वज्रम्। ईशानः। क्रियेधाः।
गोः। न। पर्व। वि। रद। तिरश्चा। इष्यन्। अर्णांसि। अपाम्। चरध्यै ॥ १२ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव वृत्राय अस्य वृत्रस्य वधार्थं तूतुजानः अत्यर्थं त्वरमाणः अत्यर्थं प्रज्ञायमानो वा ईशानः सर्वस्य स्वामी क्रियेधाः क्रियद्ध इदं शत्रुबलम् इति तुच्छीकृत्य तस्य बलस्य धारकः।

अथ वा क्रममाणः सन् शत्रु धारकः वज्रं प्र भर प्रहर प्रयोजय। न केवलं प्रहरमात्रं किं तु शकलीकुर्वित्याह । गोर्न पर्व यथा मांसार्थिनो गोरूपभादेः पशोः पर्व-पर्वाणि प्रतिपर्व छिन्दन्ति तद्वद्। अर्णांसि उदकानि इष्यन् इच्छन् अपां चरध्यै चरणाय भूमौ प्रवाहाय तिरश्चा तिर्यगञ्चनेन वज्रेण वि रद विशेषेण वृत्रं विलेखय। विविधं छिन्धीत्यर्थः। ❀ अत्र निरुक्तम् । अस्मै प्रहर तूर्णं त्वर माणो वृत्राय वज्रम् ईशानः । क्रियेधाः । क्रियद्धा इति वा क्रम माणधा इति वा । गोरिव पर्वाणि वि रद मेघस्येष्यन्नर्णांस्यपां चरणायेति [नि० ६. २०] ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस वृत्रके वधके लिये अत्यन्त त्वरा करते हुए सबके स्वामी आप आगे बढ़ शत्रु को दावते हुए वज्रका प्रहार करिये । (केवल प्रहार ही न करिये, किंतु खण्ड २ कर डालिये) जैसे मांसार्थी पुरुष पशुके खण्ड २ करते हैं, इसी प्रकार आप जल चाह कर जलको भूमि पर बहानेके लिये तिरछे वज्रसे वृत्र (मेघ) को विदीर्ण करिये ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । प्र । ब्रूहि । पूर्व्याणि । तुरस्य । कर्माणि । नव्यः । उक्थैः ।
युधे । यत् । इष्णानः । आयुधानि । ऋघायमाणः । निःऽरिणाति । शत्रून् ॥ १३ ॥

उक्थ्यैः । उक्थं स्तुतिम् अर्हन्तीति उक्थ्यानि शास्त्राणि । तैः नव्यः स्तुत्यो य इन्द्रः अस्येदु अस्यैव तुरस्य युद्धार्थं त्वरमाणस्येन्द्रस्य पूर्व्याणि पुराणानि कर्माणि एतत्कृतानि बलकर्माणि हे स्तोतः प्र ब्रूहि प्रशंस । यत् यदा युधे योधनाय आयुधानि वज्रादीनि इष्णानः आभीक्ष्ण्येन प्रेरयन् । ॐ इष आभीक्ष्ण्ये। क्रैयादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । शानचश्चित्त्वाद् अन्तोदात्तत्वम् ॐ । शत्रून् ऋघायमाणः हिंसंश्च इन्द्रः निरिणाति अभिमुखं गच्छति । तदानीं प्र ब्रूहीति पूर्वेण संबन्धः । ॐ निरिणाति । री गतिरेषणयोः । "क्र्यादिभ्यः श्ना" । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् । तिपः पित्त्वाद् अनुदात्तत्वे विकरणस्वरः शिष्यते "तिङि चोदात्तवति" इति गतेर्निघातः । यद्वृत्तयोगात् "तिङ्ङतिङः" इति निघाताभावः ॐ ॥

शास्त्रोंके द्वारा स्तुति करने योग्य जो इन्द्र है उन ही युद्धके लिये त्वरा करने वाले इन्द्रके प्राचीन बलमय कर्मोंको हे स्तोतः ! आप गाइये, जब युद्ध करनेके लिये वज्र आदिको वारंवार प्रेरित करते हुए और शत्रुओंका संहार करते हुए इन्द्र अभिमुख होकर चढ़ाई करें, उस समय गाइये ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । भिया । गिरयः । च । दृह्ळाः । द्यावा । भूमा । जनुषः । तुजेते इति ।

उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सद्यः । भुवत् । वीर्याय । नोधाः ॥ १४ ॥

अस्यैव इन्द्रस्य जनुषः जन्मतः प्रादुर्भावत एव । यद्वा जनुषः उत्कृष्टजन्मवतोस्येति व्याख्येयम् । भिया पक्षच्छेदनभयेन गिरयश्च पर्वता अपि दृह्ला दृढानि अप्रच्यावितानि अभूवन् । पर्वतद्रव्यसामान्यापेक्षया नपुंसकलिङ्गता । किं च अस्य भिया द्यावा च भूमा च द्यावापृथिव्यावपि तुजेते । ❀ तुजिर्हिंसार्थोपि अत्र कम्पने वर्तते ❀ । कम्पेते इत्यर्थः । ❀ अत्र मध्ये चशब्दस्य पाठश्छान्दसः । "दिवो द्यावा" इति दिव्शब्दस्य द्यावादेशः । "सुपां सुलुक्०" इति डादेशः । "देवताद्वन्द्वे च" इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । पदद्वयप्रसिद्धिरपि सांप्रदायिकी ❀ । किं च वेनस्य कान्तस्य ओणिम् दुःखस्यापनोदकं रक्षणम् । ❀ ओणृ अपनयने इत्यस्माद् औणादिक इप्रत्ययः ❀ । जोगुवानः अनेकैः सूक्तैः शब्दयन् नोधाः नवनस्य स्तवस्य धारयिता एतन्नामा महर्षिः वीर्याय सामर्थ्याय सद्यः तदानीमेव उपो उपैव समीप एव भुवत् भवेत् अभवत् । वीर्यवान् अभवद् इत्यर्थः ॥

इन इन्द्रके प्रादुर्भूत होते ही पंख काटे जानेके डरसे पर्वत दृढ़ बन गए थे और इनके भयसे द्यावापृथिवी भी काँपते हैं । और इन कमनीय दुःख दूर करने वालेकी अनेक सूक्तोंसे प्रशंसा करते हुए नोधा महर्षि शीघ्र ही वीर्यवान् होगए थे ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यत् । अनु । दायि । एषाम् । एकः ।

यत् । वव्ने । भूरेः । ईशानः ।

प्र । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् । सौवश्व्ये । सुस्विम् । आवत् ।

इन्द्रः ॥ १५ ॥

अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय त्यत् तत् प्रसिद्धं स्तोत्रं सोमलक्षणम् अन्नं वा अनु आनुलोम्येन दायि अदायि दीयते । अस्मा एवेत्युक्तं तत्र कारणम् आह । यत् यस्मात् कारणाद्ध भूरेः प्रभूतस्य धनस्य हविषः स्तोत्रस्य वा ईशानः स्वामी इन्द्रः एकः स्तोत्रादिविषये केवलः असाधारणः सन् वव्ने । असाधारण्यं याचितवान इत्यर्थः । किं च अयम् इन्द्रः सौवश्व्ये स्वश्वस्यापत्ये एतन्नामके राजनि रक्षणीयत्वेन निमित्तभूते सति सूर्ये देवे पस्पृधानम् सौवश्व्यसहायत्वेन पुनःपुनः स्पर्धमानम् । ॐ स्पर्ध संघर्षे । अस्माल्लिटः कानच् । द्विर्वचने "शर्पूर्वाः खयः" इति पकारः शिष्यते । भाल्वकारस्य लोपो रेफस्य संप्रसारणं च पृषोदरादित्वात् । चित्वाद्द अन्तोदात्तत्वम् ॐ । एतशम् एतन्नामानं महर्षिं सुस्विम् सुष्ठु इन्द्रार्थं सोमाभिषवं कुर्वाणं प्रावत् प्रकर्षेण रक्षितवान् । यद्वा सौवश्व्ये स्वश्वस्यापत्ये सूर्ये इति व्याख्येयम् । सूर्यः स्वश्वस्य तपसा तुष्टः सन् तस्य पुत्रो भूद्द इत्ययम् अर्थः आख्यायिकामुखेनावगन्तव्यः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही स्तोत्र वा सोमरूपी अन्न अनुलोमरीतिसे दिया जाता है, क्योंकि-प्रभूत धन हवि वा स्तोत्रके स्वामी इन्द्रने स्तोत्र आदिके विषयमें असाधारणकी याचना की थी । और इन इन्द्रदेवने सौवश्व्य नामक राजाकी रक्षाके अवसर पर सूर्यदेवसे वारम्बार स्पर्धा करते हुए एतश नामक महर्षिकी सोमाभिषवके कारण रक्षा की थी ॥ १५ ॥

षोडशी ॥

एवा ते॑ हारियोजना सुवृक्तीन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि॒ गोत॑मासो अक्रन् ।
ऐषु॑ वि॒श्वपे॑शसं॒ धियं॑ धाः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

एव । ते । हारिऽयोजन । सुऽवृक्ति । इन्द्र । ब्रह्माणि । गोतमासः । अक्रन् ।
आ । एषु । विश्वऽपेशसम् । धियम् । धाः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १६ ॥

हर्योरश्वयोर्योजनम् अस्मिन् रथे स तथोक्तः । तस्य स्वामित्वेन संबन्धी हारियोजनः । हे हारियोजन इन्द्र गोतमासः गोतमगोत्रोत्पन्ना महर्षयः सुवृक्ति सुष्ठु आवर्जकानि अभिमुखीकरणकुशलानि ब्रह्माणि स्तुतिरूपाणि मन्त्रजातानि ते तवैव एव एवंप्रकारेण अक्रन् अकृषत । ® करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक् । अन्वादेशः । तस्य ङित्त्वात् गुणाभावे यणादेशः । "छन्दसि" इति इकारलोपे संयोगान्तलोपे च अडागमः ® । एषु स्तोतृषु विश्वपेशसम् बहुविधरूपयुक्तं धियम् । धिया लभ्यत्वाद् धीर्धनम् उच्यते । यद्वा धीशब्दः कर्मवचनः । पश्वादिबहुविधरूपं धनं अग्निष्टोमादि बहुविधरूपं कर्म वा आ धाः आधेहि स्थापय । प्रातः इदानीमिव परेद्युरपि प्रातःकाले धियावसुः बुद्ध्या कर्मणा वा प्राप्तधन इन्द्रो मक्षु शीघ्रं जगम्यात् अस्मद्रक्षणार्थम् आगच्छतु ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ोंको अपने रथमें जोतने वाले इन्द्र! गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि अभिमुख करनेमें कुशल मन्त्रात्मक स्तोत्रोंको आपके लिये ही करते हैं, इन स्तोताओंमें आप अनेक प्रकारके रूपोंसे युक्त पशु आदि धन वा अग्निष्टोम आदि अनेक प्रकारका कर्म स्थापित करिये। इस समयकी समान दूसरे दिन भी प्रातःकाल बुद्धिसे धनको प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव हमारे रक्षाके लिये शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६५१)

आभिप्लविके युग्माहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे "य एक इद्धव्यः" इति सूक्तं संपातसंज्ञया विनियुक्तम्। सूत्रितं हि। "युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैः [२०. ११] य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम् [२०. ३६] यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः [२०. ३७] इति संपातानाम् एकैकम् अहरहरावपते पृष्ठ्ये छन्दोमेषु दशमे च" इति [वै० ६. १]॥

आभिप्लविक युग्माहन् माध्यंदिनसवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें "य एक इद्धव्यः" सूक्त सम्पात नामसे विनियुक्त हुआ है। इसं विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैः (२० । ११) य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम् (२० । ३६) यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः (२० । ३७) इति संपातानां एकैकं अहरहरावपते पृष्ठ्ये छन्दोमेषु दशमे च" (वैतानसूत्र ६।१)॥

तत्र प्रथमा ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

यः । एकः । इत् । हव्यः । चर्षणीनाम् । इन्द्रम् । तम् । गीःऽभिः । अभि । अर्चे । आभिः ।

यः । पत्यते । वृषभः । वृष्ण्यऽवान् । सत्यः । सत्वा । पुरुऽमायः । सहस्वान् ॥ १ ॥

चर्षणीनाम् । मनुष्यनामैतत् । मनुष्याणां यजमानानां यः इन्द्रः एक इत् एक एव हव्यः प्राधान्येन यज्ञे ह्वातव्यः । यद्वा जयकामानां राजादीनां स्वसहायत्वेन एक एव हव्यः । तं ह्वातव्यम् इन्द्रम् आभिः क्रियमाणप्रकाराभिर्गीर्भिः स्तुतिवाग्भिः अभि अर्चे । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । अभिष्टौमि । किं च यो वक्ष्यमाणगुणविशिष्ट इन्द्रः पत्यते सर्वस्येश्वरो भवति । इन्द्रं विशिनष्टि । वृषभः कामानां वर्षिता वृष्ण्यावान् वृष्ण्यं वर्षणयोग्यं बलम् तद् अस्यास्तीति वृष्ण्यवान् । ॐ "मादुपधायाः" इति मतुपो वत्वम् । "अन्येषामपि दृश्यते" इति दीर्घः । मतुपः पित्वाद् अनुदात्तत्वे "यतोऽनावः" इत्याद्युदात्तत्वम् ॐ । सत्यः सत्यफलः सत्वा बलस्य सादयिता पुरुमायः बहुकर्मा सहस्वान् बलवान् एवम् उक्तगुणोपेतो य इन्द्रः पत्यते । तं गीर्भिरभ्यर्चे इति संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव यजमान मनुष्योंके एक ही आह्वान करने योग्य हैं उन आह्वान करने योग्य इन्द्रका मैं इन स्तुतिवाणियोंसे पूजन करता हूँ । यह इन्द्रदेव सबके ईश्वर होते हैं, कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं, वर्षण योग्य बलसे सम्पन्न हैं, सत्यफल हैं, बल को प्राप्त कराने वाले हैं, बहुतसे कर्मोंको करने वाले हैं, ऐसे इन्द्रकी मैं स्तुतियोंसे पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥

तम् । ऊं इति । नः । पूर्वे । पितरः । नवऽग्वाः । सप्त । विप्रासः । अभि । वाजयन्तः ।
नक्षत्ऽदाभम् । ततुरिम् । पर्वतेऽस्थाम् । अद्रोघऽवाचम् । मतिऽभिः । शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमु तमेवेन्द्रं नः अस्माकं संबन्धिनः पूर्वे पुरातनाः पितरः कर्मणा पितृलोकं प्राप्ताः पालयितारो नवग्वाः नवभिर्मासैर्लब्धफलाः सन्तः सन्नाद् ये उत्थितास्ते नवग्वाः नवभिर्मासैराप्तगोफला वा । सप्त सप्तसंख्याका विप्रासः मेधाविनः वाजयन्तः वाजम् अन्नं हविर्लक्षणम् इन्द्राय इच्छन्तः वाजिनं बलिनं कुर्वन्तो वा मतिभिः स्तुतिभिः इन्द्रम् अभि । ❀ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ❀ । अभितुष्टुवुरित्यर्थः । कीदृशम् इन्द्रम् । नक्षद्दाभम् । नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा । अभिगच्छतां शत्रूणां हिंसितारं ततुरिम् दुर्गमात् तारकं पर्वतेष्ठाम् पर्वते मेघे अवस्थितम् अद्रोघवाचम् अद्रोग्धव्या अनतिक्रमणीया वाचो यस्य सः अद्रोघवाक् तम् अद्रोघवाचं शविष्ठम् अतिशयेन बलवन्तम् ॥

नव मासमें सिद्धि पाने वाले, हविरूप अन्नको इन्द्रके लिये चाहते हुए, विद्वान् कर्ममें पितृलोकको प्राप्त हुए हमारे सात पूर्व पुरुषोंने इन्द्रकी स्तुति की थी । यह इन्द्रदेव शत्रुओंकी

हिंसा करने वाले हैं, दुर्गमसे तारने वाले हैं, पर्वतमें स्थित रहते हैं, इनकी वाणियोंका अतिक्रम नहीं होता है और परमबली हैं २

तृतीया ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः । यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

तम् । ईमहे । इन्द्रम् । अस्य । रायः । पुरुऽवीरस्य । नृऽवतः । पुरुऽक्षोः ।

यः । अस्कृधोयुः । अजरः । स्वःऽवान् । तम् । आ । भर । हरिऽवः । मादयध्यै ॥ ३ ॥

तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् ईमहे याचामहे । याच्नाविषयं दर्शयति । अस्य रायः । रयिरिति धननाम । एतद् धनम् । कीदृशं तत् । पुरुवीरस्य वीराः पुत्रादयः बहुभिर्वीरैरुपभोक्तव्यम् । नृवतः नरो मर्त्याः सेवकाः तैः सहितम् । पुरुक्षोः क्षुरित्यन्ननाम । बह्वन्नम् । उक्तविशेषणविशिष्टं धनम् ईमहे इति संबन्धः । किं च यो रयिः अस्कृधोयुः अच्छिन्नः अजरः जरारहितः स्वर्वान् स्वः स्वर्गः सुखं वा तद्वान् तम् उक्तगुणविशिष्टं रयिम् हे हरिवः हर्याख्याश्ववन्निन्द्र मादयध्यै अस्मान् मादयितुम् आ भर आहर । ॐ मदि स्तुत्यादौ । "हेतुमति च" इति णिच् । तुमर्थे अध्यैप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेण तृतीयस्य उदात्तत्वम् ॐ ॥

हम इन इन्द्रसे पुत्र आदि बहुतसे वीरोंसे युक्त, सेवकोंसे सम्पन्न विशाल अन्नपरिमाण वाले धनकी याचना करते हैं ।

जो धन अच्छिन्न है, जरारहित है, सुखप्रद है, हे हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! ऐसे धनको आप हमें प्रदान करिये ३ चतुर्थी ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।

कस्ते भाग: किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥

तत् । नः । वि । वोचः । यदि । ते । पुरा । चित् । जरितारः । आनशुः । सुम्नम् । इन्द्र ।

कः । ते । भागः । किम् । वयः । दुध्र । खिद्वः । पुरुऽहूत । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । असुरऽघ्नः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र पुरा चित् पूर्वमपि ते तव जरितारः स्तोतारः सुम्नम् सुखं यदि आनशुः त्वत्तः सकाशात् प्राप्ताः तर्हि तत् सुम्नम् सुखं नः स्तोतॄणाम् अस्माकमपि वि वोचः प्रब्रूहि । प्रयच्छेति भावः । तस्य सुम्नस्य उत्कोचभूतः असुरघ्नः शत्रूणां हन्तुस्ते तव भागो यज्ञे निर्दिष्टः कः । किं वयः किं हविर्लक्षणम् अन्नं तव दातव्यम् । तं स्तोत्रादिरूपं भागं सोमादिहविर्लक्षणम् अन्नं च हे दुध्र दुर्धर हे खिद्वः शत्रूणां खेदयितः हे पुरुहूत बहुभिराहूत हे पुरूवसो बहुधन एवमुक्तैर्गुणैरुपेत इन्द्र नः अस्माकं ब्रूहि प्रब्रूहि । ❀ खिद्व इति । खिद दैन्ये इत्यस्मात् ण्यन्तात् लिटः क्वसुरादेशः । "वस्वेकाजाद्घसाम्" इति नियमाद् इडभावः । द्विर्वचनप्रकरणे "छन्दसि वा" इति विकल्पनाद् अनभ्यासः । "मतुवसो रुः संबुद्धौ छन्दसि" इति रुत्वम् । आमन्त्रितनिघातः ❀ ॥

हे इन्द्र ! आपके प्राचीन स्तोता यदि आपसे सुखको पाचुके हैं, तो उस सुखको हम स्तोताओंको भी प्रदान करिये । उस सुखकी रिश्वतरूप असुरोंको संहार करने वाला आपका जो भाग यज्ञमें निर्दिष्ट है वह कौनसा है और आपको हविरूप कौनसा अन्न देना चाहिये । उस स्तोत्र आदि रूप भागको और सोम आदि हविरूप अन्नको भी हे दुर्धर ! हे शत्रुओंको खेदमें डालने,वाले ! हे पुरुहूत ! हे बहुधन ! आप हमसे कहिये ४

पञ्चमी ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥

तम् । पृच्छन्ती । वज्रऽहस्तम् । रथेऽस्थाम् । इन्द्रम् । वेपी । वक्वरी । यस्य । नु । गीः ।
तुविऽग्राभम् । तुविऽकूर्मिम् । रभःऽदाम् । गातुम् । इषे । नक्षते । तुम्रम् । अच्छ ॥ ५ ॥

यस्य स्तोतुर्यजमानस्य वेपी । वेप इति कर्मनाम । यागादिलक्षणकर्मवती वक्वरी गुणानां प्रवचनशीला गीः वाग् वज्रहस्तम् वज्रं हस्ते धारयन्तं रथेष्ठाम् रथे अवस्थितं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं पृच्छन्ती प्रश्नं कुर्वती । अभिगच्छति स्तौति वेति शेषः । तुविग्राभम् बहूनां ग्राहकं तुविकूर्मिम् बहुकर्माणं रभोदाम् रभसो बलस्य दातारम् उक्तलक्षणम् इन्द्रं स यजमानो गातुम् सुखम् इषे इच्छति । नु इति पूरणः । किं च तुम्रम् अभिगन्तारं त्वरयितारं वा शत्रुम् अच्छ आभिमुख्येन नक्षते गच्छति ॥

जिस स्तोता यजमानकी याग आदि रूप कर्म वाली, गुणों का मवचन करने वाली वाणी वज्रधारी रथमें स्थित इन्द्रसे प्रश्न करती हुई इन्द्रको माप्त होती है। बहुतोंका ग्रहण करने वाले, बहुतसे कर्मों वाले, बलमद इन्द्रसे यजमान सुखकी इच्छा करता है। और त्वरा करने वाले शत्रुकी अभिमुख होकर माप्त होता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीलिता स्वोजो रुजो वि दृह्ळा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥

अया । ह । त्यम् । मायया । वृधानम् । मनःऽजुवा । स्वऽतवः । पर्वतेन ।
अच्युता । चित् । वीलिता । सुऽओजः । रुजः । वि । दृह्ळा । धृषता । विऽरप्शिन् ॥ ६ ॥

हे स्वतवः स्वायत्तबल इन्द्र त्वं मनोजुवा मनोवत् शीघ्रं गच्छता पर्वतेन पर्ववता वज्रेण अया अनया प्रसिद्धया मायया शक्त्या वृधानम् भृशं वर्धमानं त्यम् तं प्रसिद्धं वृत्रं वि रुजः व्यरुजः विशेषेण अभाङ्क्षीः। तथा हे स्वोजः शोभनबल हे विरप्शिन्। विरप्शीति महन्नाम। हे महन् इन्द्र त्वम् अच्युता चित् अच्युतानि अन्यैरच्यावयितव्यान्यपि वीलिता वीलितानि दृढानि अशिथिलीकृतानि दृह्ळा दृढानि शत्रुनगराणि धृषता धर्षकेण वज्रेण वि रुजः विदारितवान् असि ॥

हे स्वायत्तबल इन्द्र ! आप मनकी समान शीघ्र चलने वाले पर्व वाले वज्रसे मायाके द्वारा बढ़ते हुए प्रसिद्ध वृत्रासुरको विशेषरूपसे नष्ट कर चुके हैं। तथा हे शोभन बलसे सम्पन्न महत्त्वमय इन्द्र ! आपने दूसरोंसे च्युत करनेके अयोग्य दृढ़ शत्रुनगरोंको भी धर्षक वज्रसे विदारण कर डाला था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै । स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि

तम् । वः । धिया । नव्यस्या । शविष्ठम् । प्रत्नम् । प्रत्नऽवत् । परिऽतंसयध्यै ।

सः । नः । वक्षत् । अनिऽमानः । सुऽवह्मा । इन्द्रः । विश्वानि । अति । दुःऽगहानि ॥ ७ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं शविष्ठम् । शव इति बलनाम । अतिशयितबलं प्रत्नम् पुरातनं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या प्रत्नवत् पुराणा महर्षयो यथा एवं परितंसयध्यै अलंकर्तुम् । प्रवृत्तोस्मीति शेषः । ※ तसि अलंकारे । इदित्त्वान्नुम् । तुमर्थे अध्यैप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेण उपान्त्योदात्तः ※ । अनिमानः निर्मानरहितः इयत्ताशून्यः । महान् इत्यर्थः । सुवह्मा शोभनं वह्म वहनं यस्य स सुवह्मा शोभनवहनः स उक्तलक्षण इन्द्रः नः अस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुर्गहाणि दुर्गमनानि भानियानि दुस्तराणि सर्वाण्यपि अति वक्षत् अतिवहतु ॥

हे यजमानो ! आपके लिये परमबली प्राचीन इन्द्रको नवीन स्तुतिसे प्राचीन महर्षियोंकी समान मैं अलंकृत करनेके लिये

प्रवृत्त होगया हूँ। परिमाणशून्य और शोभन वाहनों वाले इंद्र हमें सब दुस्तर विपयोंके पार पहुँचावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोन्तरिक्षा तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

आ। जनाय। द्रुह्वणे। पार्थिवानि। दिव्यानि। दीपयः। अन्तरिक्षा। तप। वृषन्। विश्वतः। शोचिषा। तान्। ब्रह्मऽद्विषे। शोचय। क्षाम्। अपः। च ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वं द्रुह्वणे साधुजनानां द्वेष्टुः जनाय जनस्य राक्षसादेः पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि दिव्यानि दिवि भवानि अन्तरिक्षा अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि च स्थानानि आ दीपयः आ समन्तात् तापय। हे वृषन् कामानां वर्षितः इन्द्र त्वं विश्वतः सर्वतो विद्यमानान् तान् राक्षसादीन् शोचिषा त्वदीयया दीप्त्या तप दह। किं च ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणद्वेष्ट्रे राक्षसादये। ब्रह्मद्विषं दुग्धम् इत्यर्थः। क्षाम् पृथिवीम् अपश्च अन्तरिक्षं शोचय दीपय। ❀ क्षाम् इति। क्षि निवासगत्योः। तौदादिकः। "अन्येष्वपि दृश्यते" इति सोपसर्जनो विधीयमानो डमत्ययः "अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः" इत्युक्तेर्निरुपपदेभ्योपि भवति। क्षियन्ति निवसन्त्यस्यां प्राणिन इति क्षा वसुंधरा। प्रत्ययस्वरः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव! आप सज्जनोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिके पृथिवीलोकके, द्युलोकके और अन्तरिक्ष लोकके स्थानोंको चारों ओरसे सन्तप्त करिये। हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्र!

आप चारों ओर विद्यमान राक्षस आदिको अपनी दीप्तिसे भस्म कर डालिये। और ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिको भस्म करनेके लिये पृथिवीको और द्युलोकको भी दीप्त करिये८

नवमी ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्। धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

भुवः। जनस्य। दिव्यस्य। राजा। पार्थिवस्य। जगतः। त्वेषऽसंदृक्।
धिष्व। वज्रम्। दक्षिणे। इन्द्र। हस्ते। विश्वाः। अजुर्य। दयसे। वि। मायाः ॥ ९ ॥

हे त्वेषसंदृक् दीप्तसंदर्शन इन्द्र दिव्यस्य दिवि भवस्य जनस्य राजा ईश्वरः भुवः भवसि। जगतः जङ्गमस्य पार्थिवस्य च राजा भवसि। दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व निधेहि। तेन निहितेन वज्रेण विश्वाः सर्वा माया आसुरीः वि दयसे विबाधसे। ❀ दय दानरक्षणगतिहिंसादानेष्विति धातुः ❀। हे अजुर्य जरयितुम् अशक्य इन्द्र त्वम् इति ॥

हे दीप्तसंदर्शन इन्द्र! आप द्युलोकमें रहने वाले जनोंके राजा हैं, दक्षिण हाथमें वज्रको धारण करिये और उस वज्रसे सब आसुरी मायाओंको बाधित करिये। हे जीर्ण करनेके अयोग्य इन्द्र! आप आसुरी मायाओंको बाधित करिये ॥ ९ ॥

दशमी ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

आ । सम्ऽयतम् । इन्द्र । नः । स्वस्तिम् । शत्रुऽतूर्याय । बृहतीम् । अमृध्राम् ।

यया । दासानि । आर्याणि । वृत्रा । करः । वज्रिन् । सुऽतुका । नाहुषाणि ॥ १० ॥

शत्रुतूर्याय शत्रूणां तारणाय बृहतीम् महतीम् अमृध्राम् अहिंसितां संयतम् संयतां संगच्छमानां स्वस्तिम् क्षेमलक्षणां संपदम् हे इन्द्र त्वं नः अस्मभ्यम् आ हर । हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् यया स्वस्त्या दासानि कर्मणा आत्मानम् उपक्षपयितॄणि हीनानि वृत्रा वृत्राणि शत्रुभूतानि नाहुषाणि नहुषा मनुष्याः तत्संबन्धीनि मनुष्यजातानि आर्याणि अरणीयानि श्रेष्ठानि तथा सुतुका सुतुकानि शोभनापत्यभूतानि पुत्रस्थानीयानि करः अकरोः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जिस क्षेम करने वाली सम्पत्तिसे आप दासोंको और शत्रुभूत मनुष्योंको श्रेष्ठ और पुत्रस्थानीय बना देते हैं, शत्रुओंको तरनेके लिये उस महती अहिंसिता, प्राप्त होती हुई सम्पत्तिको आप हमारे लिये लाइये ॥ १० ॥

एकादशी ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।

न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

सः । नः । नियुत्ऽभिः । पुरुऽहूत । वेधः । विश्वऽवाराभिः । आ । गहि । प्रयज्यो इति प्रऽयज्यो ।
न । याः । अदेवः । वरते । न । देवः । आ । आभिः । याहि । तूयम् । आ । मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

हे पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत हे वेधः सर्वस्य विधातः हे प्रयज्यो प्रकर्षेण ईड्य प्रकृष्टगमन वा स तादृशस्त्वं विश्ववाराभिः व्याप्तवालाभिर्विश्वेषां वारयित्रीभिर्वरणीयाभिर्वा नियुद्भिः अश्वैः नः अस्मान् आ गहि आगच्छ । या नियुतस्तवागमनसाधनाः अदेवः देवविलक्षणः असुरो न वरते न वारयति तथा देवोपि न वरते । आभिः कैरपि अनिवार्याभिर्नियुद्भिः मद्र्यद्रिक् मदभिमुखदृष्टिः अस्मदभिमुखः सन् तूयम् तूर्णम् आ याहि आगच्छ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे आहूत ! हे सबके विधातः ! हे अधिकता से पूज्य आप अयालों वाले अश्वोंके द्वारा हमारे पास आइये । आपके आगमनके साधन जिन अश्वोंको असुर नहीं रोकते और न देवता रोक सकते हैं, उन अश्वोंके द्वारा आप शीघ्रतापूर्वक मेरे अभिमुख होते हुए आइये ॥ ११ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६५२)

आभिप्लविके तृतीयेहनि षष्ठे च "यस्तिग्मशृङ्गः" इति संपातसंज्ञकं सूक्तं माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्तम् । सूत्रं तु पूर्वसूक्ते न सह उदाहृतम् ॥

आभिप्लविक तीसरे दिनमें और छठे दिनमें भी "यस्तिग्मशृंगः" यह सम्पातसंज्ञक सूक्त माध्यन्दिन सवनके ब्राह्मणाच्छंसि- ... विनियुक्त होता है ॥ इसका सूत्र पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।

यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

यः । तिग्मऽशृङ्गः । वृषभः । न । भीमः । एकः । कृष्टीः । च्यवयति । प्र । विश्वाः ।

यः । शश्वतः । अदाशुषः । गयस्य । प्रऽयन्ता । असि । सुष्विऽतराय । वेदः ॥ १ ॥

हे इन्द्र यस्त्वं तिग्मशृङ्गः तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्याम् उपेतो वृषभो न भीमः वृषभ इव भयजनकः । तथा त्वम् एकः असहायस्त्वं विश्वाः सर्वाः कृष्टीः । मनुष्यनामैतत् । सर्वान् अस्माकं शत्रुजनान् प्र च्यावयसि प्रकर्षेण अपगमयसि । यश्च त्वं शश्वतः । बहुनामैतत् । बहोः अदाशुषः हविरदत्तवतः अयजमानस्य गयस्य । गयम् इति गृहनाम । गृहसदृशस्य यथा कोशगृहं धनपूर्णं वर्तते एवम् प्रप्रदानेन धनपूर्णगृहसदृशस्य लुब्धकस्य वेदः धनं सुष्वितराय । सुष्ठु सोमाभिषवत्वात् सुष्वी । अतिशयेन सुष्वी सुष्वितरः । तादृशाय यजमानाय प्रयन्तासि प्रकर्षेण नियमयिता प्रदाता भवसि ॥

हे इन्द्र ! जो आप तीखे सींगों वाले वृषभकी समान भयजनक हैं, तथा वह आप एक ही हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देते हैं और आप अपनेको आपः हवि न देने वाले अयजमानके धन-

पूर्ण घरके धनको, सोमका अधिकतासे अभिषव करने वाले यजमानको अधिकतासे देते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये । दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥

त्वम् । ह । त्यत् । इन्द्र । कुत्सम् । आवः । शुश्रूषमाणः । तन्वा । सऽमर्ये ।

दासम् । यत् । शुष्णम् । कुयवम् । नि । अस्मै । अरन्धयः । आर्जुनेयाय । शिक्षन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं ह त्वं खलु त्यत् तद् तदा कुत्सम् एतन्नामानं समर्ये मर्यैर्मर्त्यैर्योद्धृभिः सहितः संग्रामः समर्यः तस्मिन् । अथ वा मर्यैर्ऋत्विग्भिः सहिते यज्ञे तन्वा शरीरेण शुश्रूषमाणः उपचरन् आवः अरक्षः । यत् यदा अस्मै आर्जुनेयाय अर्जुन्याः पुत्राय कुत्साय दासम् एतत्संज्ञकम् असुरं शुष्णम् असुरं कुयवं च असुरं शिक्षन् तेषां धनं कुत्साय प्रयच्छन् नि अरन्धयः नितरां वशम् अनैषीः ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने अर्जुनीके पुत्र कुत्सके लिये शुष्ण नामक असुरको और कुयव नामक असुरको दण्ड देकर उनका धन देकर उनको बड़े वशमें कर लिया था, उस समय यज्ञमें कुत्सकी शरीरसे उपचार करके रक्षा की थी ॥ २ ॥

तृतीया ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहंव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम्

त्वम् । धृष्णो इति । धृषता । वीतऽहव्यम् । प्र । आवः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । सुऽदासम् ।
प्र । पौरुऽकुत्सिम् । त्रसदस्युम् । आवः । क्षेत्रऽसाता । वृत्रऽहत्येषु । पूरुम् ॥ ३ ॥

हे धृष्णो शत्रूणां धर्षक इन्द्र त्वं धृषता शत्रुधर्षकेण वज्रेण वीतहव्यम् दत्तहविष्कं सुदासम् शोभनदानम् एतन्नामकं राजानम् अथ वा वीतहव्यं सुदासं च विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः रक्षणाभिः प्रावः प्रारक्षः । किं च वृत्रहत्येषु संग्रामेषु क्षेत्रसाता क्षेत्रसातौ भूमिदाने निमित्तभूते सति पौरुकुत्सिम् पुरुकुत्सपुत्रं त्रसदस्युं राजानं पूरुं च प्रावः ॥

हे शत्रुओंको दबाने वाले इन्द्र ! आपने शत्रुओंको दबाने वाले वज्रके द्वारा, वीतहव्य और सुदास नामक राजाकी सकल रक्षक शक्तियोंके द्वारा बड़ी रक्षा की थी । और आप संग्रामोंके अवसर पर और भूमिदानके अवसर पर पुरुकुत्सके पुत्र राजा त्रसदस्युकी और पुरुकी रक्षा कर चुके हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु

त्वम् । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीतौ । भूरीणि । वृत्रा । हरिऽअश्व ।
हंसि ।
त्वम् । नि । दस्युम् । चुमुरिम् । धुनिम् । च । अस्वापयः ।
दभीतये । सुऽहन्तु ॥ ४ ॥

हे नृमणः नृभिर्नेतृभिः स्तोतृभिर्मननीय नृषु यजमानेषु अनुग्रहमनोयुक्त वा हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र त्वं देववीतौ । देवा वियन्ति आगच्छन्ति भक्षयन्त्यत्रेति वा देववीतिर्यज्ञः । अथ वा देवा युद्धार्थं गच्छन्त्यत्रेति देववीतिर्देवसंग्रामः । तस्मिन्निमित्तभूते सति नृभिःनेतृभिर्योद्धृभिर्मरुद्भिः सहितः सन् भूरीणि बहूनि वृत्रा वृत्राणि आवरकाणि रक्षांसि पापानि च हंसि हननं करोषि । किं च हे इन्द्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये तदर्थं सुहन्तु । अविभक्तिकोयं निर्देशः । सुहन्तुः शोभनहननसाधनवज्रोपेतः सन् दस्युं चुमुरिं धुनिं च नि अस्वापयः ऽनाशयः॥

हे मनुष्य यजमानों पर मनमें अनुग्रह करने वाले नृमणः ! और हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप यज्ञ वा संग्रामके अवसर पर योधा मरुतोंके साथ बहुतसे आवरक राक्षस और पापोंका संहार कर डालते हैं । और हे इन्द्र ! आपने दभीति नामक राजर्षिके लिये, हननके शोभन साधन वज्रको लेकर दस्यु चुमुरि और धुनिको भी नष्ट कर डाला था ॥ ४ ॥

पञ्चमी॥

तव॑ च्यौ॒त्नानि॑ वज्रहस्त॒ तानि॒ नव॒ यत् पुरो॑ नव॒तिं च॑ स॒द्यः ।
नि॒वेश॑ने शत॒त॒मावि॑वेषी॒रहं॑ च वृ॒त्रं नमु॑चिमु॒ताह॑न् ५

तव । च्यौत्नानि । वज्रऽहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नवतिम् । च । सद्यः ।

निऽवेशने । शतऽतमा । अविवेषीः । अहन् । च । वृत्रम् । नमुचिम् । उत । अहन् ॥ ५ ॥

हे वज्रहस्त इन्द्र तव तानि प्रसिद्धानि बलानि च्यौत्नानि अतिदृढानि परैरनभिभाव्यानि यत् यस्मात् कारणात् च्यौत्नैस्तैर्बलैः सहितः सन् नव नवतिं च पुरः एकोनशतसंख्याकानि पुराणि असुरसंबन्धीनि सद्यस्तदानीमेव घाटीमुखेनैव । व्यनाशय इति शेषः । निवेशने निवेशनाय शततमा शततमीं पुरीं च अविवेषीः व्यापोः । ॐ विष्लृ व्याप्तौ । यङ्लुगन्ताद् अस्मात् लुङ् । अभ्यासगुणाभावश्छान्दसः ॐ । वृत्रं च अहन् नमुचिं नामासुरं च अहन् हतवान् असि ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपके प्रसिद्ध बल अनिदृढ हैं, क्योंकि उन बलोंसे सम्पन्न रह कर आपने असुरोंके निन्यानवें पुरोंको नष्ट कर डाला था और निवेशनके लिये सौवीं पुरीमें व्याप्त होगए थे और आपने वृत्र तथा नमुचि नामक असुरको भी मार डाला था ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

सना ता तं इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

सना । ता । ते । इन्द्र । भोजनानि । रातऽहव्याय । दाशुषे । सुऽदासे ।

वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणा । युनज्मि । व्यन्तु । ब्रह्माणि ।

पुरुऽशाक । वाजम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुषे यजमानाय सुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि सना सनानि सनातनानि । बभूवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बहुकर्मन् इन्द्र वृष्णे कामानां वर्षित्रे ते तुभ्यम् । त्वाम् आनेतुम् इत्यर्थः। वृषणा वृषणौ हरी अश्वौ युनज्मि रथे योजयामि । ब्रह्माणि अस्मदीयानि स्तोत्राणि वाजम् बलिनं त्वां व्यन्तु गच्छन्तु ॥

हे इन्द्र ! आपको हवि देने वाले यजमान सुदासके लिये आप के दिये हुए भोग्य धन सनातन होगए थे । हे बहुकर्मन् इन्द्र ! कामनाओंकी वर्षा करने वाले आपको लानेके लिये वृषण हरि नामक अश्वोंको मैं रथमें नियुक्त करता हूँ । हमारे स्तोत्र बली बने हुए आपको प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

मा ते अस्यां संहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै
त्रायस्व नोवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ७

मा । ते । अस्याम् । सहसाऽवन् । परिष्टौ । अघाय । भूम । हरिऽवः । पराऽदै ।

त्रायस्व । नः । अवृकेभिः । वरूथैः । तव । प्रियासः । सूरिषु । स्याम ॥ ७ ॥

हे सहसावन् बलवन् इन्द्र । ❀ मध्ये तृतीयाविभक्तिरत्रा- ❀ । अथ वा सह एव सहसं तद्वन् । ❀ मतुपि "अन्ये-

षामपि दृश्यते" इति दीर्घः ❀। हे हरिवः हरितवर्णोपेताश्व इन्द्र ते तव अस्यां क्रियमाणायां परिष्टौ पर्येषणायां परादै परादानाय परित्यागाय एवंलक्षणाय अघाय पापाय वयं मा भूम। किं च हे इन्द्र नः अस्मान् अवृकेभिः अवृकैरहिंसितव्यै वरूथैः। वारयन्त्युपद्रवान् इति वरूथानि रक्षणानि। तैर्नः अस्मान् त्रायस्व पाहि। वयं च सूरिषु स्तोतृषु विद्वत्सु मध्ये तव प्रियासः प्रियाः स्याम भवेम॥

हे बलवान् इन्द्र! हे हरित वर्ण वाले अश्वोंसे सम्पन्न इन्द्र! इस आपकी की जाती हुई परिष्टिमें हम त्यागने योग्य पापके लिये न होवें। और हे इन्द्रदेव! हमको आप अहिंसितव्य रक्षा-साधनोंसे पालिये और हम भी स्तोता तथा विद्वानोंमें आपके प्रिय होवें॥ ७॥

अष्टमी॥

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ८॥

प्रियासः। इत्। ते। मघऽवन्। अभिष्टौ। नरः। मदेम। शरणे। सखायः।
नि। तुर्वशम्। नि। याद्वम्। शिशीहि। अतिथिऽग्वाय। शंस्यम्। करिष्यन्॥ ८॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अभिगमनेच्छायां नरः हविषां नेतारो यजमाना वयं सखायस्तव सखि-

भूताः समानख्यानाः अत एव प्रियास इत् प्रिया एव सन्तः शरणे । गृहनामैतत् । मदीय एव गृहे मदेम हृष्टा भवेम । किं च अतिथिग्वाय अतिथ्यर्था गावो यस्य सः । अतिथिग्वः । अथवा सत्कारार्थम् अतिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । तस्मै राज्ञे शंस्यम् शंसनीयं मख्यापनीयं सुखं करिष्यन् कुर्वंस्त्वं तुर्वशम् एतन्नामकं राजानं नि शिशीहि निशितं कुरु । तथा याद्वम् यदुकुलोत्पन्नं राजानं च नि शिशीहि ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आपकी अभिगमनकी इच्छामें हविके नेता मित्ररूप हुए हम यजमान प्रिय होते हुए ही अपने घरमें प्रसन्न रहें । आप अतिथिगु राजाके लिये प्रशंसनीय सुख देते हुए तुर्वश नामक राजाको भी तीक्ष्ण करिये । और यदुकुलोत्पन्न राजाको भी तीक्ष्ण करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

सद्यः । चित् । नु । ते । मघऽवन् । अभिष्टौ । नरः । शंसन्ति । उक्थऽशासः । उक्था ।
ये । ते । हवेभिः । वि । पणीन् । अदाशन् । अस्मान् । वृणीष्व । युज्याय । तस्मै ॥ ९ ॥

हे मघवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अभिगत्यां सत्यां

तत्र अभिगमने सति नरः स्तुतिनेतार ऋत्विजः उक्थशासः उक्थानां शस्त्राणां शंसितारः सद्यश्चिन्नु तवाभिगमनसमय एव उक्था उक्थानि शस्त्राणि शंसन्ति कुर्वन्ति । ते इत्युक्तं के त इति तान् विशिनष्टि । ये नरः नेतार ऋत्विजः ते तव हवेभिः हवैः आह्वानैः पणीन् वणिग्भूतान् लुब्धकान् अयजतो नरान् व्यदाशन् । दाश-निर्वधकर्मा । विशेषेण हिंसितवन्तः । ते शंसन्तीति पूर्वत्र संबन्धः । यस्माद् एवं तस्माद् उक्थानां शंसितन् अस्मान् तस्मै प्रसिद्धाय युज्याय योजयितव्याय फलाय यागाय वा वृणीष्व वरणं कुरु स्वीकुरु ॥

हे मघवन् इन्द्र ! आपका अभिगमन होने पर स्तुति करने वाले और शस्त्रोंको कहने वाले ऋत्विज आपके अभिगमनके समय ही शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं । जो नेता ऋत्विज आपके आह्वानों से वणिग्भूत लोभी यजन न करने वाले मनुष्योंको मारते हैं वे ऋत्विज आपके अभिगमनके समय शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं । इस कारण हम उक्थोंका शंसन करने वालोंको योजयितव्य फल यागके लिये वरण कीजिये ॥ ९ ॥

दशमी ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्य१ञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

एते । स्तोमाः । नराम् । नृऽतम । तुभ्यम् । अस्मद्र्यञ्चः । ददतः । मघानि ।

तेषाम् । इन्द्र । वृत्रऽहत्ये । शिवः । भूः । सखा । च । शूरः । अविता । च । नृणाम् ॥ १० ॥

नराम् नेतॄणां मध्ये हे नृतम अतिशयेन नेतः इन्द्र अस्मद्यञ्चः अस्मान् अञ्चन्तः अस्मदभिमुखाः मघानि मंहनीयानि धनानि हविर्लक्षणानि ददतः प्रयच्छन्तः सन्तः एते इदानीं कृतप्रकाराः स्तोमाः स्तवाः तुभ्यं त्वदर्थम् । कृता इति शेषः । यद्वा मघानि ददतः प्रयच्छतः । ❀ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । प्रयच्छते तुभ्यम् इति व्याख्येयम् । हे इन्द्र तेषाम् एतेषाम् अस्माभिः कृतानां स्तोमानाम् । यद्वा तेषां स्तोमसंपादकानाम् अस्माकम् इति व्याख्येयम् । वृत्रहत्ये वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य वा हत्ये हनने निमित्तभूते सति शिवः सुखयिता भूः भव । किं च नृणाम् हविषां स्तुतीनां वा नेतॄणाम् अस्माकं शूरस्त्वं सखा च भूः सखिवन्मित्रभूतो भव अविता च रक्षिता च भूः भव ॥

हे नेताओंमें भी परम नेता इन्द्र ! हमारे अभिमुख होकर श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करने वाले आपके लिये ये स्तोत्र हैं । हे इन्द्र ! इन हम स्तोत्र करने वालोंके पापनिवारणके अवसर पर आप सुख देने वाले हों और हवि पहुँचाने वाले हमारे लिये आप मित्रकी समान होजावें और हमारे रक्षक भी बनें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

नु । इन्द्र । शूर । स्तवमानः । ऊती । ब्रह्मऽजूतः । तन्वा । वावृधस्व ।

उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयम् । पात ।

स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ११ ॥

हे शूर शौर्योपेत इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणया निमित्तभूतया स्तवमानः । ❁ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❁ । अस्माभिः स्तूयमानः तथा ब्रह्मजूतः ब्रह्मणा हविषा जूतः प्रापितश्च सन् तन्वा स्वकीयेन शरीरेण वदृधस्व अत्यर्थं प्रवृद्धो भव । ततो नः अस्मभ्यं वाजान् अन्नानि उप मिमीहि । उप प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्तीन् स्त्यायन्ति समर्धयन्ति कुलम् इति स्तयः पुत्राद्याः । तानपि उप मिमीहि । हे अन्ये अग्न्यादयो देवाः यूयमपि स्वस्तिभिः । सु अस्तीति स्वस्ति क्षेमः । तैः सदा नः अस्मान् पात रक्षत ॥

इति चतुर्थोनुवाकः ॥

हे शूरतासम्पन्न इन्द्र ! रक्षाके कारण हमसे स्तुति पाते हुए तथा मन्त्रके द्वारा हवि पाते हुए आप अपने शरीरसे बढ़िये । फिर हमारे लिये धन प्रदान करिये और पुत्र आदिको प्रदान करिये । और हे अन्य अग्नि आदि देवताओं ! आप भी क्षेम करके हमारी रक्षा करते रहिये ॥ ११ ॥

बीसवें काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६५३)
चतुर्थ अनुवाक समाप्त

अभिप्लवे षडहे "आ याहि सुषुमा हि ते" इत्यादयो यथाक्रमं षड् आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तदुक्तं वैताने । "अभिप्लव आ याहि सुषुमा हि त इति षड् आज्यस्तोत्रिया आरम्भणीयापर्यासवर्जम्" इति [वै० ६. १] ॥ पाठक्रमात् "इन्द्रं वो विश्वतस्परि [२०. ३९. १] "व्यन्तरिक्षमतिरत्" [२०. ३९. २] इत्येतयोः प्रयोगे प्राप्ते प्रतिषेधार्थम् आरम्भणीयापर्यासवर्जमित्युक्तम् । तेन "आ याहि सुषुमा हि ते" [२०. ३८. १-३]

"इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्" [२०. ३८. ४–६] "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" [२०. ४०. १–३] "इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" [२०. ४१. १–३] "वाचमष्टापदीमहम्" [२०. ४२, १–३] "भिन्धि विश्वा अप द्विषः" [२०. ४३. १–३] इति षट् स्तोत्रियाः ॥

तथा गवामयनस्य चतुर्विंशे "इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्" [२०. ३८. ४–६] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । "चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः" [वै० ६. १] इति सूत्रितत्वात् ॥

तथा स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु यथाक्रमम् "आ याहि" इत्यादय आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "स्वरसामस्वा याहि सुषुमा हि त इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि दृक्षस इति" इति [वै० ६. ३] ॥

अभिप्लव षडहमें "आ याहि सुषुमा हि ते" आदिक यथाक्रम छः आज्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अभिप्लव आ याहि सुषुमा हि त इति षट् आज्यस्तोत्रिया आरंभणीयापर्यासवर्जम्" (वैतानसूत्र ६। १) । पाठक्रम के अनुसार "इन्द्रं वो विश्वतस्परि" (२० । ३६ । १) "व्यन्तरिक्षमतिरत्" (२० । ३६ । २) इनके प्रयोगकी प्राप्ति होने पर इनके प्रतिषेधके लिये आरम्भणीयापर्यासवर्जम् कहा है ॥ इस कारण "आ याहि सुषुमा हि ते" (२० । ३८ । १–३) "इन्द्रमिद् गाथिने बृहद्" (२० । ३८ । ४–६) "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" (२० । ४० । १–३) "इन्द्रो दधीचो अस्थिभिः" (२० । ४१ । १–३) "वाचमष्टापदीमहम्" (२० । ४२ । १–३) "भिन्धि विश्वा अप द्विषः" (२० । ४३ । १–३) ये छः स्तोत्रिय हैं ।

तथा गवामयनके चतुर्विंशमें "इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्" (२० । ३८ । ४–६) यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बात

को वैतानसूत्र ६ । १ में कहा है, कि-"चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः" ॥

तथा स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें यथाक्रम "आ याहि" इत्यादिक आज्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्र ६ । ३ में कहा है, कि-"स्वरसामस्वा याहि सुषुमा हि त इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुसुम । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिब । इमम् ॥ आ । इदम् । बर्हिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया है। इस अभिषुत सोमका आप पान करिये। इन बिछी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मऽयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिना ॥ उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्ट स्थान को ले जाने वाले, बड़े बड़े अयालों वाले हरी नामक घोड़े आप को (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आह्वान सुनिये २

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणी-
रनूषत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥
इन्द्रम् । वाणीः । अनूषत ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं, और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो
वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । हर्योः । सचा । सम्ऽमिश्लः । आ । वचःऽयुजा ॥
इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्रदेव ही हिन रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि
गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि । गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रने दीर्घ दर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥६॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६५४)

गवामयनादौ संवत्सरे प्रातःसवने अनुरूपाद् अनन्तरम् "इन्द्रं वो विश्वतस्परि" [२०. ३६. १] इति ऋग् आरम्भणीया। तत्रैव "व्यन्तरिक्षम् अतिरत्" [२०. ३६. २] इति पर्यासो भवति। तद् उक्तं वैताने। "इन्द्रं वो विश्वतस्परीत्यारम्भणीया। व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्यासः" इति [वै० ६. ५] ॥ आरभ्यते उक्थमुखम् इत्यारम्भणीया। पर्यस्यते परिसमाप्यते अनेन शस्त्रमिति पर्यासः ॥

तथा गोसवविश्वथवैश्यस्तोमेषु त्रिषु एकाहेषु "इन्द्रं वो विश्वतस्परि" [२०. ३६] "आ नो विश्वासु हव्यः" [२०.१०४.३] एतौ आज्यपृष्ठ्योत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "गोसवविश्वथवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्वतस्पर्याणो विश्वासु हव्य इति" इति [वै० ८. १] ॥

गवामयन आदिमें सम्वत्सरके प्रातःसवनमें अनुरूपके अनन्तर "इन्द्रं वो विश्वतस्परि" (२० । ३६ । १) की ऋचा आरंभणीया है, वहाँ ही "व्यन्तरिक्षम् अतिरद्" (२० । ३६ । २) यह पर्यास होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— "इन्द्रं वो विश्वतस्परीत्यारंभणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्यासः" ॥

तथा गोसव विश्वथ वैश्यस्तोमोंके तीन एकाहोंमें "इन्द्रं वो

विश्वतस्परि" (२० । ३९) "आ नो विश्वासु हव्यः" (२०। १०४ । ३) यह आज्यपृष्टस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"गोसवविवधवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्वतस्पर्याणो विश्वासु हव्य इति" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

इन्द्रम् । वः । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् । अस्तु । केवलः ॥ १ ॥

हम चारों ओरके प्राणियोंकी ओरसे (हटा कर) इन्द्रका आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १ ॥

व्यं१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ॥ इन्द्रः । यत् । अभिनत् । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढाया था (किसकी सहायतासे बढाया था इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-) सोमरसके पानसे मद होजाने पर बढाया था (कब) जब इन्द्रने बलासुर या मेघको विदीर्ण किया था ॥ २ ॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

उत् । गाः । आजत् । अङ्गिरःऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहा । सतीः ॥ अर्वाञ्चम् । नुनुदे । वलम् ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वालोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत एव अप्रकाशित गौओंको प्रकाशित कर दिया था और फिर उन को बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करनेवाले बल नामक असुरको भी औंधे मुख करके गिरा दिया था ॥३॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृल्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृन्हानि । दृंहितानि । च ॥ स्थिराणि । न । पराऽनुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रदेवने आकाशमें दमकते हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल किया है और दृढ़ किया है अत एव स्थिर होनेके कारण उनको कोई च्युत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोमं इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ ५ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन्ऽइव । स्तोमः । इन्द्र । अजिरऽयते ॥ वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षता देता हुआ रसकी समान शीघ्रतासे आपके मुखसे निकलता है आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६५५)

"इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" इत्यस्य "आ याहि सुषुमा हि ते" [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयस्य तृतीयेऽहनि "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" [२०. ४०] "वयं घ त्वा सुतावन्तः" [२०. ५२] "त्वं न इन्द्रा भर" [२०. १०८] इत्येते आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तदु उक्तं वैताने । "तृतीय इन्द्रेण सं हि दृक्षसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. ४] ॥

"इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" इसका "आ याहि सुषुमा हि ते" (२० । ३८) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयके तृतीय दिनमें "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" (२०।४०) "वयं घ त्वा सुतावन्तः" (२० । ५२) "त्वं न इन्द्रा भर" (२० । १०८) ये आज्यपृष्ठके उक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्र ८ । ४ में कहा है, कि–"तृतीय इन्द्रेण सं हि दृक्षसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति" ॥

इन्द्रे॑ण॒ सं हि दृक्ष॑से संजग्मा॒नो अबि॑भ्युषा । म॒न्दू स॑मा॒नव॑र्चसा ॥ १ ॥

इन्द्रे॑ण । सम् । हि । दृक्ष॑से । सम्ऽज॒ग्मा॒नः । अबि॑भ्युषा ॥ म॒न्दू इति॑ । स॒मा॒नऽव॑र्चसा ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए नित्य ही देखे जाते हैं मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रमुदित रहते हैं और आप दोनोंकी दीप्ति समान है १.

अ॒न॒व॒द्यैर॒भिद्यु॑भिर्म॒खः सह॑स्वदर्चति । ग॒णैरिन्द्र॑स्य॒ काम्यैः॑ ॥ २ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति ॥ गणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ २ ॥

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यज्ञ बलपूर्वक शोभा पाता है ॥ २ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

आत् । अह । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भऽत्वम् । आऽईरिरे ॥ दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर यह स्वधा देने पर गर्भत्वको प्राप्त होजाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६५६)

"इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" इत्यस्य "आ याहि सुषुमा हि ते" [२०, ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठ्यषडहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेहनि एकाहैकीभूते "इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" इत्यादयः आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "पृष्ठ्यस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः [२०, ४१] विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् [२०, ५४] एवा ह्यसि वीरयुः [२०, ६०] इति" इति [वै०८, २]॥

"इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" सूक्तका "आ याहि सुषुमा हि ते" (२० । ३८) में विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठ्यषडहके एकविंश स्तोमक चतुर्थ दिनके एकाहैकीभूतमें "इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" इत्यादिक आज्यपृष्ठोक्थस्तो-

प्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"पृष्ठ्यस्यै-कविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः (२० । ४१) विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् (२० । ५४) एवा ह्यसि वीरयुः (२० । ६०)" (वैतानसूत्र ८ । २)॥

इन्द्रो॑ दधी॒चो अ॒स्थभि॑र्वृ॒त्राण्यप्र॑तिष्कुतः। ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ॥ १ ॥

इन्द्रः॑। द॒धी॒चः। अ॒स्थऽभिः॑। वृ॒त्राणि॑। अप्र॑तिऽस्कुतः॥ ज॒घान॑। न॒व॒तीः। नव॑ ॥ १ ॥

संग्राममें मुख न मोड़ने वाले इन्द्रदेवने वृत्रासुरके निन्यानवें पुरोंको नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम्। तद्वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति ॥ २ ॥

इ॒च्छन्। अश्व॑स्य। यत्। शिरः॑। पर्व॑तेषु। अप॑ऽश्रितम्॥ तत्। वि॒दत्। श॒र्य॒णाऽव॑ति ॥ २ ॥

पर्वतोंमें अपश्रित अश्वके शिरकी इच्छा करते २ इन्द्रोंने उसको शर्यणावत्में पाया था ॥ २ ॥

अत्राह॒ गोर॑मन्वत॒ नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म्। इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृ॒हे ॥ ३ ॥

अत्र॑। अह॑। गोः। अ॒म॒न्व॒त॒। नाम॑। त्वष्टुः॑। अ॒पी॒च्य॑म्॥ इ॒त्था। च॒न्द्रम॑सः। गृ॒हे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इस चन्द्रमण्डलरूपी घरमें सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ही एक किरण गई हुई है, इस बातको दूसरी सूर्य किरणें जानती हैं ॥३॥

पञ्चम अनुवाकम चतुर्थ सूक्त समाप्त (६५७)

"वाचमष्टापदीमहम्" इत्यस्य विनियोगः "आ याहि सुषुमा हि ते" [२०. ३८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अश्वमेधस्य त्र्यहस्य द्वितीयेऽहनि "वाचमष्टापदीमहम्" [२०. ४२] "स्वादोरित्था विषूवतः" [२०, १०६] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहं स्वादोरित्था विषूवत इति" इति [वै० ८. ३] ॥

"वाचमष्टापदीमहम्" का विनियोग "आ याहि सुषुमा हि ते" (२० । ३८) के साथ कह दिया है ।

तथा अश्वमेध त्र्यहके दूसरे दिन "वाचमष्टापदीमहम्" (२० । ४२) "स्वादोरित्था विषूवतः (२० । १०६) ये दोनों आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— "अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहम् स्वादोरित्था विषूवतः" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १ ॥

वाचम् । अष्टाऽपदीम् । अहम् । नवऽस्रक्तिम् । ऋतऽस्पृशम् ॥ इन्द्रात् । परि । तन्वम् । ममे ॥ १ ॥

मैं इन्द्रदेवसे अष्टापदी, नवस्रक्ति, सत्यका स्पर्श करने वाली वाणीको अपने शरीरमें स्थापित कर चुका हूँ ॥ १ ॥

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥ २ ॥

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणम् । अकृपेताम् ॥
इन्द्र । यत् । दस्युऽहा । अभवः ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप दस्युओंका संहार कर रहे थे, तब दुर्बल पड़ते हुए आपपर द्यावापृथिवीने कृपा की थी-शक्ति प्रदान की थी२ ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोम-मिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

उत्ऽतिष्ठन् । ओजसा । सह । पीत्वी । शिप्रे इति । अवेपयः ॥
सोमम् । इन्द्र । चमू इति । सुतम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप उठ कर अभिषवणके फलकोंसे निचोड़े हुए सोमका पान करके बलपूर्वक उठ कर अपनी ठोड़ियोंको संचालित करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६५८)

"भिन्धि विश्वा अप द्विषः" इत्यस्य विनियोगः "आ याहि" [२० ३८] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा अप्तोर्यामिण्णि क्रतौ उपरिष्टान्माध्यंदिनवचनात् प्रातःसवने "भिन्धि विश्वा अप द्विषः" [२०. ४३] इत्यनुरूपम् अभितः "आ नो याहि" [२०. ४] इत्यनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । "भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति" इति [वै० ४. ३] ॥

"भिन्धि विश्वा अप द्विषः" इसका विनियोग (२० । ३८) में कह दिया है ।

तथा अप्तोर्यामके क्रतुमें माध्यन्दिनके अनन्तर प्रातःसवनमें

"भिन्धि विश्वा अप द्विषः" (२०।४३) इस अनुरूपके अनंतर चारों ओर "आ नो याहि" (२०।४) यह अनुरूप होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति" (वैतानसूत्र ४।३)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

भिन्धि। विश्वाः। अप। द्विषः। परि। बाधः। जहि। मृधः॥
वसुं। स्पार्हम्। तत्। आ। भर ॥ १ ॥

हे इन्द्र! हमारे शत्रुओंको आप भेदिये, युद्धकी सब बाधाओं को नष्ट कर दीजिये, तदनन्तर स्पृहणीय धनको हममें पुष्ट करिये

यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।
वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

यत्। वीलौ। इन्द्र। यत्। स्थिरे। यत्। पर्शाने। पराऽभृतम्।०

जो धन दृढ पुरुषमें रहता है, जो स्थिर पुरुषमें रहता है और जो धन पार्श्वोंमें भरा जाता है, उस स्पृहणीय धनको हे इन्द्र! हमें प्रदान करिये ॥ २ ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

यस्य। ते। विश्वऽमानुषः। भूरेः। दत्तस्य। वेदति॥ वसुं। स्पार्हम्। तत्। आ। भर ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

जिस आपके दिये हुए विशाल धनको सब मनुष्य पाते हैं, उस स्पृहणीय धनको हमें प्रदान करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६५६)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

प्र । सम्ऽराजम् । चर्षणीनाम् । इन्द्रम् । स्तोत । नव्यम् । गीःऽभिः ॥ नरम् । नृऽसहम् । मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

मैं पूजनीय, सदा नवीन ही रहने वाले, नेता, नृसाह और मनुष्योंके राजा इन्द्रकी स्तुतियोंसे स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन् । उक्थानि । रण्यन्ति । विश्वानि । च । श्रवस्या ॥ अपाम् । अवः । नः । समुद्रे ॥ २ ॥

जैसे निम्नस्थलमेंको जाने वाला जलोंका समूह समुद्रमेंको जाता है, इसी प्रकार जिसमें समस्त उक्थ (स्तोत्र) और अन्न की इच्छासे किये जाने वाले यज्ञ रमण करते हैं ॥ २ ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

तम् । सु । स्तुत्या । आ । विवासे । ज्येष्ठऽराजम् । भरे । कृत्नुम् ॥ महः । वाजिनम् । सनिऽभ्यः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

उनको मैं सुन्दर स्तुतिके द्वारा प्रकाशित करता हूँ, उन शत्रुओं का वर्णन करनेके स्वभाव वाले, बड़े दमकने वाले और स्तोताओंको पशु तथा अन्न प्रदान करने वालेको मैं (हविसे) पुष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सप्तम सूक्तसमाप्त (६६०)

तीव्रसुदुपशद्रोपहव्याख्येषु त्रिषु एकाहेषु "अयमु ते समतसि" [२०.४५] "इमा उ त्वा पुरूवसो" [२०.१०४] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः ॥

तथा व्युष्टिद्व्यहे एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तद् उक्तं वैताने। "तीव्रसुदुशोपहव्येष्वयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरूवसो इति । व्युष्टिद्व्यहे च" इति [वै० ८. १] ॥

तथा संसर्पचतुर्वीरयोश्चतुरहयोः सर्वेष्वहःसु एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "संसर्पचतुर्वीरयोरयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरूवसो इति" इति [वै० ८. ३] ॥

तीव्र सुदुप शद्रोपहव्य नामक तीन एकाहोंमें "अयमु ते समतसि" (२० । ४५) "इमा उ त्वा पुरूवसो" (२० । १०४) ये क्रमशः आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"तीव्रसुदुपशद्रोपहव्येष्वयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरूवसो इति । व्युष्टिद्व्यहे च" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा चार दिनमें होने वाले संसर्प और चतुर्वीरके सब दिनोंमें ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"संसर्पचतुर्वीरयोरयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरूवसो इति" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

अयम् । ऊँ इति । ते । सम् । अतसि । कपोतःऽइव । गर्भऽधिम् ॥

वचः । तत् । चित् । नः । ओहसे ॥ १ ॥

जिस हमारे वचनकी आप तर्कना करते हैं, उस हमारे वचन को कपोत जसे गर्भधारण करने वाली गर्भधि (कपोती) को प्राप्त होता है तिस प्रकार आप प्राप्त होवें अर्थात् हमारे वचनका सेवन करें ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूति-रस्तु सूनृता ॥ २ ॥

स्तोत्रम् । राधानाम् । पते । गिर्वाहः । वीर । यस्य । ते ॥ विऽभूतिः । अस्तु । सूनृता ॥ २ ॥

हे धनोंके स्वामी ! स्तुतियें आपको प्राप्तकराने वाली हैं, हे वीर ! ऐसे आपकी विभूति सूनृता हो ॥ २ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वः । तिष्ठ । नः । ऊतये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ सम् । अन्येषु । ब्रवावहै ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! इस युद्धमें वा यज्ञमें आप हमारी रक्षाके लिये ऊँचे खड़े हूजिये । हम अन्य पुरुषोंकी स्पर्धा करते हुए अपने लिये भली प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टम सूक्तसमाप्त (६६१)

स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु अभिप्लवे च "सं चोदय चित्रमर्वाक्" [२०. ७१. ११] "प्रणेतारं वस्यो अच्छा" [२०.४६] एतौ आश्वपृष्ठस्तोत्रियौ पर्यायेण भवतः । तद् उक्तं वैताने । "स्वरसामसु संचोदय चित्रमर्वाक् प्रणेतारं वस्यो अच्छेति पर्यायेण । अभिप्लवे च" इति [वै० ८. ४] ॥

स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें और अभिप्लवमें भी "सं चोदय चित्रमर्वाक्" (२० । ७१ । ११) "प्रणेतारं वस्यो अच्छा" (२० । ४६) ये पर्यायसे आश्वपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"स्वरसामसु संचोदय चित्रमर्वाक् प्रणेतारं वस्यो अच्छेति पर्यायेण । अभिप्लवे च" (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

प्रऽनेतारम् । वस्यः । अच्छ । कर्तारम् । ज्योतिः । समत्ऽसु ॥
ससह्वांसम् । युधा । अमित्रान् ॥ १ ॥

भली प्रकार प्रसन्न करने वाले पापोंमें उत्कृष्ट ज्योतिको करने वाले, नेता, और युद्ध करके शत्रुओंको दबाने वाले (इंद्र का मैं आह्वान करता हूँ) ॥ १ ॥

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो
विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥

सः । नः । पप्रिः । पारयाति । स्वस्ति । नावा । पुरुऽहूतः ॥
इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विषः ॥ २ ॥

वह पुरुहूत पालक इन्द्रदेव हमको स्वस्तिमयी नौकासे पार लगावें, वह इन्द्रदेव सब शत्रुओंसे हमें अधिक रक्खें ॥ २ ॥

स त्वं न॑ इन्द्र वाजे॑भिर्दशस्या च॑ गातुया च॑ । अच्छा॑ च नः सुम्नं ने॑षि ॥ ३ ॥

सः । त्वम् । नः । इन्द्र । वाजे॑भिः । दशस्य । च । गातुऽया । च ॥ अच्छ । च । नः । सुम्नम् । नेषि ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! वह आप हमको अन्नसे; और गमन करने वाली दश अंगुलियोंसे हमारे अभिमुख सुखको लाते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (६६२)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थेषु "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२. ४७] "महाँ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] इत्येतौ स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु प्रातःसवने "इन्द्रा याहि चित्रभानो" [२०. ८४] "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] "महाँ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] इत्येते यथाक्रमम् आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "छन्दोमेष्विन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तोत्रियाः" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां ऽयहाणां द्वितीयेष्वहःसु यथासंभवम् "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] "अस्तावि मन्म पूर्व्यम्" [२०. ११६] "तं ते मदं गृणीमसि" [२०. ६१] एते आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "द्वितीयेषु तमिन्द्र

वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्व्यं तं ते मदं गृणीमसीति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा साकमेधत्र्यहस्य तृतीयेऽहनि "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] "आयन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "साकमेधस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यमिति" इति [वै० ८. ३]॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थोंमें "तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४। ३)॥

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंके प्रातः सवनमें "इन्द्रा याहि चित्रभानो" (२०। ८४) "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२०। ४७) "महाँ इन्द्रो य ओजसा" (२०। १३८) ये यथाक्रम आज्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"छन्दोमेष्विन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तोत्रियाः" (वैतानसूत्र ६। ३)

तथा वैश्वदेव आदि त्र्यहोंके द्वितीय दिनोंमें यथासंभव "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२०। ४७) "अस्तावि मन्म पूर्व्यम्" (२०। ११६) "तं ते मदं गृणीमसि" (२०। ६१) ये आज्यपृष्ठ उत्तरस्तोत्रिय होते हैं। "द्वितीयेषु तमिन्द्रं वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्व्यं तं ते मदं गृणीमसि" (वैतानसूत्र ८। ३)॥

तथा साकमेध त्र्यहके तृतीय दिनमें "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२०। ४७) "आयन्त इव सूर्यम्" (२०। ५८) ये दोनों आज्य पृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"साकमेधस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यम्" (वैतानसूत्र ८। ३)॥

तमिंद्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥ १॥

तम् । इन्द्रम् । वाजयामसि । महे । वृत्राय । हन्तवे ॥ सः । वृषा ।
वृषभः । भुवत् ॥ १ ॥

हम विशाल वृत्रासुर (वा मेघ) का संहार करनेके लिये उन इन्द्रको पुष्ट करते हैं, कामनाओंकी वर्षा करने वाले वह इन्द्र सबमें श्रेष्ठ होवें ॥ १ ॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी
श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

इन्द्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः ।
द्युम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥ २ ॥

वह बली इन्द्र (पापियोंका निग्रह करनेके लिये) रज्जुके रूपमें किये गए हैं, वह प्रसन्नता करने वाले यज्ञमें आहित होते हैं। वह इन्द्रदेव दमकने वाले हैं, प्रशंसनीय हैं और सौम्य हैं ॥ २ ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष
ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्ऽभृतः । सऽबलः । अनपऽच्युतः ॥
ववक्षे । ऋष्वः । अस्तृतः ॥ ३ ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले, वज्रकी समान बलसे भरे हुए हैं। यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंको यजमानों पर) पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं
वाणीरनूषत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥
इन्द्रम् । वाणीः । अनूषत ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । हर्योः । सचा । सम्ऽमिश्लः । आ । वचःऽयुजा ॥
इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, वह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि ।
गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ६ ॥

इन्द्रने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ा दिया है और सूर्यात्मक इन्द्र किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

आ । याहि । सुसुम । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिब । इमम् ॥

आ । इदम् । बर्हिः । सदः । मम ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन बिछी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ ७ ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मऽयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिना ॥

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले अभीष्ट स्थान को लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी नामक घोड़े आपको (हमारे यज्ञमें) लावे, आप आकर हमारे आह्वानको सुनिये ८

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥

सुतऽवन्तः । हवामहे । ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नम् । अरुषम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।
रोचना । दिवि ॥ १० ॥

महान् दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए, इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते है और वह दमकते हुए अश्व द्युलोकमें दमकते हैं ॥ १० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विऽपक्षसा । रथे ॥
शोणा । धृष्णू इति । नृऽवाहसा ॥ ११ ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरिनामक अश्वोंको जोतते हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करवटोंमें रहते हैं रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ११ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥

केतुम् । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।
उषत्ऽभिः । अजायथाः ॥ १२ ॥

हे मरणधर्मी मनुष्यों ! अज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

उदु॒त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑ । दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म् ॥ १३ ॥

उत् । ऊं इति । त्यम् । जा॒तऽवे॑दसम् । दे॒वम् । व॒ह॒न्ति॒ । के॒तवः॑ ॥ दृ॒शे । विश्वा॑य । सूर्य॑म् ॥ १३ ॥

किरणें वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले सूर्यात्मक इन्द्रदेवको सबको दिखानेके लिये ऊपरको लाती हैं १३

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ । सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥ १४ ॥

अप॑ । त्ये । ता॒यवः॑ । य॒था॒ । नक्ष॑त्रा । य॒न्ति॒ । अ॒क्तुऽभिः॑ । सूरा॑य । वि॒श्वऽच॑क्षसे ॥ १४ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ भाग जाते हैं ॥ १४ ॥

अदृ॑श्रन्नस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑ । भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ १५ ॥

अदृ॑श्रन् । अ॒स्य॒ । के॒तवः॑ । वि । र॒श्मयः॑ । जना॑न् । अनु॑ ॥ भ्राज॑न्तः । अ॒ग्नयः॑ । य॒था॒ ॥ १५ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ज्ञानदाता किरणें प्रत्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १५ ॥

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य । विश्व॒मा भा॑सि रोचन ॥ १६ ॥

तरणिः। विश्वऽदर्शतः। ज्योतिःऽकृत्। असि। सूर्य॥ विश्वम्।

आ। भासि। रोचन॥ १६॥

हे सूर्यात्मक कमनीय इन्द्रदेव! आप (संसारसागरकी) नौकारूप हैं आप सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं आप सबको प्रकाशित करते हैं॥ १६॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥ १७॥

प्रत्यङ्। देवानाम्। विशः। प्रत्यङ्। उत्। एषि। मानुषीः॥

प्रत्यङ्। विश्वम्। स्वः। दृशे॥ १७॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र! आप प्रत्येक मानुषी और दैवी प्रजाको सामने रख कर उनके सामने उदित होते हैं, प्रत्येक पुरुषको देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं॥ १७॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥ १८॥

येन। पावक। चक्षसा। भुरण्यन्तम्। जनान्। अनु॥ त्वम्।

वरुण। पश्यसि॥ १८॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक इन्द्र! पूर्वके पुण्यात्मा पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको आप जिस अनुग्रहदृष्टिसे देखते हैं (उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं)

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः। पश्यं जन्मानि सूर्य॥ १९॥

वि । द्याम् । एषि । रजः । पृथु । अहः । मिमानः । अक्तुऽभिः ॥ पश्यन् । जन्मानि । सूर्य ॥ १९ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप उत्पन्न हुए सब प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये उनको देखते हुए, तथा रात्रियों सहित दिनका निर्माण करते हुए द्युलोक भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ १९ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २० ॥

सप्त । त्वा । हरितः । रथे । वहन्ति । देव । सूर्य । शोचिःऽकेशम् । विऽचक्षणम् ॥ २० ॥

हे देव ! दमकती हुई किरणों वाले सूक्ष्मद्रष्टा आपको रथमें सात घोड़े सवारी देते हैं ॥ २० ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥

अयुक्त । सप्त । शुन्ध्युवः । सूरः । रथस्य । नप्त्यः ॥ ताभिः । याति । स्वयुक्तिऽभिः ॥ २१ ॥

इति पञ्चमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

सूर्यात्मक इन्द्रदेवने सात पवित्र रक्षक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं २१

पञ्चम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६३)

विपुवति सौर्यपृष्ठे "अभि त्वा वर्चसा गिरः" इति चतुर्थः स्तोत्रियः ॥

विपुवत् सौर्यपृष्ठमें "अभि त्वा वर्चसा गिरः" यह चतुर्थ स्तोत्रिय है ॥

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

आ । अयम् । गौः । पृश्निः । अक्रमीत् । असदत् । मातरम् । पुरः ॥ पितरम् । च । प्रऽयन् । स्वः ॥ ४ ॥

जैसे विचरण करने वाली गौएँ बछड़ेके अभिमुख जाती हैं, इसी प्रकार वाणियें वर्चसे आपका सिञ्चन करती हुई आपके अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

जैसे उत्पन्न हुएकी रक्षा करने वाली उत्पन्न हुए शिशुको हृदयसे लगाती है, इसी प्रकार शुभ्र स्तुतियें वर्चसे इन्द्रको संयुक्त करती हैं ॥ २ ॥

यह वज्रापवसाधी है, यह मुझ म्रियमाणको कीर्ति आयु घृत और पयः प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

यह तेजसे व्याप्त गमनशील सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल पर आगए हैं और इन्होंने उदयाचल पर चढ़ पूर्वदिशामें दौड़कर सब प्राणियोंकी जननी भूमिको अपनी किरणोंसे ढक दिया है, तदनन्तर इन्होंने चल कर वृष्टिरूप वीर्यको सींचनेसे सब जगत्के उत्पादक पिता स्वर्लोक और अन्तरिक्षलोकको व्याप्त कर लिया है। यही वृष्टिजलरूप अमृतका दोहन करनेसे गौ कहलाते है ॥ ४ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५ ॥

अन्तः। चरति। रोचना। अस्य। प्राणात्। अपानतः॥ वि। अख्यत्। महिषः। स्वः॥ ५ ॥

प्राणन व्यापारके अनन्तर अपानन व्यापारको करने वाले इन प्राणियोंके शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूपसे दमकती हुई सूर्यकी प्रभा विचरती रहती हैं। अधिभूतरूपसे वर्तमान महान् सूर्यदेव स्वर्ग आदि ऊपरके समस्त लोकोंको प्रकाशित करते हैं ५

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥

त्रिंशत्। धाम। वि। राजति। वाक्। पतङ्गः। अशिश्रियत्॥ प्रति। वस्तोः। अहः। द्युऽभिः॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकादशं सूक्तम्॥

दिन और रात्रिके अवयवभूत तीस मुहूर्तरूप अंश इन सूर्यदेवकी किरणोंसे ही प्रतिक्षण विशेषरूपसे दमकते रहते हैं तथा

वेदत्रयीरूप वाणी पक्षीकी समान शीघ्रगामी सूर्यका आश्रय लेकर रहती है ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (६६१)

त्रिपुवति सौर्यपृष्ठे "यच्छक्रा वाचमारुहन्" इति षष्ठः स्तोत्रियः ॥
त्रिपुनत् सौर्यपृष्ठमें "यच्छक्रा वाचमारुहन्" यह छठा स्तोत्रिय है।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति । विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४

तम् । नः । दस्मम् । ऋतिऽसहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः । अभि । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीःऽभिः । नवामहे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जब अन्तरिक्षको देना चाहते हुए स्तोता वाणी पर आरूढ़ होते हैं, तब देवता हर्षको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

शक्र अधृष्ट पुरुष पर अपनी वाणीकी और विशाल वाणीकी घर्षणा न करें,–उसमे कठोर वचन न कहें सानुग्रह भरे वचन कहें । हे मंहिष्ठ ! आप द्युलोकमें मदमें भरिये ॥ २ ॥

हे शक्र ! आप वाणीका कठोरभावसे उच्चारण न करें, विशेषरूपसे मदमें भरते हुए और कुशाओं पर आते हुए धामधर्म न विराज रहे हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति करते हैं। यह इन्द्रदेव दर्शनीय हैं अर्थात् फलाभिलाषियोंको इन का दर्शन अवश्य करना चाहिये। यह आर्तिका नाश करने वाले हैं और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें भरे रहते हैं। जैसे सूर्य जिन दिनोंको करता है, उन दिनोंके आने जाने के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई बछड़ोंकी ओरको दूध पिलाने लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये) इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ ४ ॥

द्युत्तं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ५

द्युत्तम् । सुऽदानुम् । तविषीभिः । आऽवृतम् । गिरिम् । न । पुरुऽभोजसम् ।
क्षुऽमन्तम् । वाजम् । शतिनम् । सहस्रिणम् । मक्षु । गोऽमन्तम् । ईमहे ॥ ५ ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य बलप्रद, स्तुतिके पात्र, सैकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार दुर्भिक्षमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नों से सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

तत् त्वा॑ यामि सु॒वीर्यं॒ तद् ब्रह्म॑ पू॒र्वचि॑त्तये।
येना॒ यति॑भ्यो॒ भृग॑वे॒ धने॑ हि॒ते येन॒ प्रस्क॑ण्व॒माविथ

तत्। त्वा। यामि। सुऽवीर्यम्। तत्। ब्रह्म। पूर्वऽचित्तये।
येन। यतिऽभ्यः। भृगवे। धने। हिते। येन। प्रस्कण्वम्।
आविथ ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव! मैं आपसे सुन्दर वीर्य सम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ, उस अन्नकी पूर्वमज्ञानके लिये याचना करता हूँ। जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कण्व नामक ऋषिके पुत्र प्रस्कण्व ऋषिकी रक्षा की थी। उस धनकी हम याचना करते हैं ६

येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑।
स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुचक्र॒दे

येन। समुद्रम्। असृजः। महीः। अपः। तत्। इन्द्र। वृष्णि।
ते। शवः।
सद्यः। सः। अस्य। महिमा। न। सम्ऽनशे। यम्। क्षोणीः।
अनुऽचक्रदे ॥ ७ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि में समुद्रको पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है। वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है। जलोंसे समुद्रपूर्ति आदि

इनकी महिमाको बढ़ाने शत्रु नहीं पा सकते। इनकी महिमाका पृथ्वीवासी वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६६५)

वाजपेये क्रतौ "कन्नव्यो अतसीनाम्" इति सामगायो भवति। तद् उक्तं वैताने। "कन्नव्यो अतसीनामिति सामगायः" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा गवामयनादौ संवत्सरे माध्यंदिने सवने "कन्नव्यो अतसीनाम्" इति कद्वान् सामगायो भवति। तद् उक्तं वैताने। माध्यंदिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्वान् सामगायः" इति [वै० ६. ४] ॥

वाजपेय क्रतुमें "कन्नव्यो अतसीनाम्" यह सामगाय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-कन्नव्यो अतसीनामिति सामगायः" (वैतानसूत्र ४। ३) ॥

तथा गवामयनादि संवत्सरमें और माध्यन्दिन सवनमें "कन्नव्यो अतसीनाम्" यह कद्वान् सामगाय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"माध्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्वान् सामगायः" (वैतानसूत्र ६। ४) ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥

कत्। नव्यः। अतसीनाम्। तुरः। गृणीत। मर्त्यः।

नहि। नु। अस्य। महिमानम्। इन्द्रियम्। स्वः। गृणन्तः। आनशुः।

जो क्षीण न होने वाले दिन रातोंमें नवीन ही रहते हैं, वेगवान् हैं किसी कारणसे मर्त्यके आकारको धारण कर लेते हैं, उन की हे स्तोताओं! तुम स्तुति करो, इनकी ऐश्वर्यसम्पन्न महिमा

का पूर्णरूपसे गान न कर सकने पर भी थोड़ासा भी गान करते हुए पुरुष स्वर्गको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

कद्उ स्तुवन्तं ऋतयन्त देवता ऋषिः को विप्र ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः

कत् । ऊं इति । स्तुवन्तः । ऋतऽयन्त । देवता । ऋषि । कः । विप्रः । ओहते ।

कदा । हवम् । मघऽवन् । इन्द्र । सुन्वतः । कत् । ऊं इति । स्तुवतः । आ । गमः ॥ २ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे धनवान् इन्द्र ! किस कारणसे सत्यकी इच्छा करते हुए देवता आपकी स्तुति करते हैं, कौनसा विप्र ऋषि आपके विषय में गर्जना करता है । और किस कारणसे कब आप अभिषव करने वाले स्तोताके आह्वान पर आते हैं ॥ २ ॥

पञ्चम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (६६७)

- चतुर्विंशे माध्यंदिने सवने "अभि प्र वः सुराधसम्" [२०.५१] "प्र सु श्रुतं सुराधसम्" [२०.५१, ३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः । तदु उक्तं वैताने । "अभि प्र वः सुराधसं प्र सु श्रुतं सुराधसमिति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ" इति [वै० ६. १] ॥

तथा अभिप्लवे युग्मेष्वहःसु द्वितीयचतुर्थषष्ठेषु "अभि प्र वः सुराधसम्" "प्र सु श्रुतं सुराधसम्" इति बार्हतौ प्रगाथौ पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तदु उक्तं वैताने । "अभि प्र वः सुराधसमिति युग्मेषु" इति [वै० ६. १] ॥

तथा विषुवति अनुरूपादनन्तरम् "तं वो दस्ममृतीषहम्" [२०. ४६. ४] "अभि प्र वः सुराधसम्" [२०. ५१] इति नौधसश्यैतयोनी इच्छया शंसति। तद् उक्तं वैताने। "अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीषहम् अभि प्र वः सुराधसम् इति नौधसश्यैतयोनी कामम्" इति [वै० ६. ३]॥

तथा त्र्यहाणां तृतीयेष्वहःसु यथासंभवम् "महाँ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] "अभि प्र वः सुराधसम्" [२०. ५१] 'एवा ह्यसि वीरयुः" [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति। तद् उक्तं वैताने। तृतीयेषु महाँ इन्द्रो य ओजसाभि प्र वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति" इति [वै० ८. ३]

चतुर्विंशके माध्यन्दिन सवनमें "अभि प्र वः सुराधसम्" (२० । ५१) "प्र सु श्रुतं सुराधसम्" (२० । ५१ । ३) ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बाहत प्रगाथ होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"अभि प्र वः सुराधसमिति युग्मेषु" (वैतानसूत्र ६ । १)॥

तथा विषुवत्में अनुरूपके, अनन्तर "तं वो दस्ममृतीषहम्" २० । ४६ । ४) अभि प्र वः सुराधसम् (२० । ५१) इनको नौधसश्यैतयोनी इच्छासे कहता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीषहम् अभि प्र वः सुराधसम् इति नैधसश्यैतयोनीकामम्" (वैतानसूत्र ६ । ३)॥

तथा त्र्यहोंके तृतीय दिनोंमें यथासंभव 'महाँ इन्द्रो य ओजसा' (२० । १३८) "अभि प्र वः सुराधसम्" (२० । ५१) "एवा ह्यसि वीरयुः" (२० । ६०) ये आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"तृतीयेषु महाँ इन्द्रो य ओजसाभि प्र वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति १

अभि । प्र । वः । सुऽराधसम् । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।
यः । जरितृऽभ्यः । मघऽवा । पुरुऽवसुः । सहस्रेणऽइव । शिक्षति

हे स्तोताओं ! जो विशाल धन वाले मघवा इन्द्र स्तुति करने वालोंको सहस्र संख्यासे दान देते हैं, उन सुन्दरतासे अन्न प्रदान करने वाले इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर सकूँ, तिस प्रकार तुम उसका पूजन करो ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः

शतानीकाऽइव । प्र । जिगाति । धृष्णुऽया । हन्ति । वृत्राणि । दाशुषे
गिरेःऽइव । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुऽभोजसः

जो इन्द्रदेव हवि देने वाले यजमानके लिये सैंकड़ों सेनाओं की समान अपने धर्षक बलसे आवरक शत्रुओंको जीत लेते हैं और मार डालते हैं, इन बहुत उपभोग्यके योग्य इन्द्रदेवके सुवर्ण पर्वतसे रसोंके निकलनेकी समान हविर्दान करने वाले यजमानके लिये सिञ्चित होते हैं ॥ २ ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥३॥

प्र । सु । श्रुतम् । सुऽराधसम् । अर्च । शक्रम् । अभिष्टये ।

यः । सुन्वते । स्तुवते । काम्यम् । वसु । सहस्रेणऽइव । मंहते ३

जो इन्द्रदेव सोमाभिषव करने वाले और स्तुति करने वाले यजमानको अभिलषित धन सहस्रों करके देते हैं, उन सुन्दर हविरूप अन्नके पात्र, याचकोंकी प्रार्थनाको भली प्रकार सुनने वाले इन्द्रदेवकी तुम पूजा करो ॥ ३ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः

शतऽअनीकाः । हेतयः । अस्य । दुस्तराः । इन्द्रस्य । सम्ऽइषः । महीः ।

गिरिः । न । भुज्मा । मघवत्ऽसु । पिन्वते । यत् । ईम् । सुताः । अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके आयुध सैंकड़ों सेनाओंकी समान बल रखते हैं, असत् पुरुष उनको तर नहीं सकते, यदि अभिषव किये हुए सोम इनको हर्षमें भर देते हैं तो भोगमद पर्वत जैसे धनवानोंको अपने पदार्थोंसे सींचता है, तिस प्रकार, इन इन्द्रके विशाल अन्न यजमानका सेचन करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (६६७)

"वयं घ त्वा सुतावन्तः" इत्यस्य विनियोगः "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" [२०. ४०] इत्यत्रोक्तः ॥

तथा पृष्ठ्यस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठानां चतुर्णामह्नाम् "वयं घ त्वा सुतावन्तः" इत्यादीनामष्टानां तृचानां द्वौ द्वौ यथाक्रमं स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तत्र "वयं घ त्वा" [२०. ५२] "क ई

वेद" [२०. ५३] इति तृतीयेऽह्नि स्तोत्रियानुरूपौ भवतः। "विश्वाः पृतनाः" [२०. ५४] "तमिन्द्रम्" [२०. ५५] इति चतुर्थे। "इन्द्रो मदाय" [२०. ५६] "मदेमदे हि" [२०. ५६. ४] इति पञ्चमे। "सुरूपकृत्नुम्" [२०. ५७] "शुष्मिन्तमं नः" [२०. ५७. ४] इति षष्ठे। तद्व उक्तं वैताने। "तृतीयादीनां वयं घ त्वा सुतावन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" इति [वै०६.२]

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु "वयं घ त्वा सुतावन्तः" "क ईं वेद सुते सचा" इति प्रथमेऽहनि माध्यंदिने स्तोत्रियानुरूपौ भवतः। "क ईं वेद सुते सचा" "वयं घ त्वा सुतावन्तः" इति द्वितीये। "अयन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] "बण्महाँ असि सूर्य" [२०. ५८. ३] इति तृतीये। तद्व उक्तं वैताने। "वयं घ त्वा सुतावन्तः इत्यादि बण्महाँ असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" इति [वै० ६. ३]॥

"वयं घ त्वा सुतावन्तः" इसका विनियोग "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" (२० । ४०) में कह दिया है।

तथा पृष्ठ्यके तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ इन चार दिनोंमें "वयं घ त्वा सुतावंतः" इन आठ तृचोंसे दो दो यथाक्रम स्तोत्रियानुरूप होते हैं। इनमेंसे "वयं घ त्वा" (२० । ५२) "क ईं वेद" (२० । ५३) ये तृतीय दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। "विश्वाः पृतनाः" (२० । ५४) "तमिन्द्रम्" (२० । ५५) ये चतुर्थदिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। "इन्द्रो मदाय" (२०।५६) "मदे मदे हि" (२० । ५६ । ४) ये पञ्चम दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। "सुरूपकृत्नुम्" (२० । ५७) "शुष्मिन्तमं नः" (२० । ५७ । ४) ये छठे दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"तृतीयादीनां वयं घ त्वा सुतावन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" (वैतानसूत्र ६ । २)

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंमें "वयं घ त्वा सुतावन्तः" "क ईं वेद सुते सचा" ये प्रथम दिनके माध्यन्दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। "क ईं वेद सुते सचा" "वयं घ त्वा सुतावंतः" ये द्वितीय दिनमें, "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८) "बण्महाँ असि सूर्य" (२० । ५८ । ३) यह तृतीय दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वयं घ त्वा सुतावन्त इत्यादि बण्महाँ असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

वयं घं त्वा सुतावंन्त आपो न वृक्तबंर्हिषः ।
पवित्रंस्य प्रस्रवंणेषु वृत्रहन् परिं स्तोतारं आसते १

वयम् । घ । त्वा । सुतऽवन्तः । आपः । न । वृक्तऽबर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रऽस्रवणेषु । वृत्रऽहन् । परिं । स्तोतारः । आसते १

हे इन्द्र ! जलकी समान अभिषव करके पतले किये हुए अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम ऋत्विज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १ ॥

स्वरंन्ति त्वा सुते नरो वसों निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गंम इन्द्रं स्वब्दीव वंसंगः २

स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।
कदा । सुतम् । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वब्दीऽइव । वंसगः ॥ २ ॥

हे वासयितः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर बहुत उक्थ-

गान करने वाले मनुष्य ऋत्विज आपका स्वरोंसे आह्वान कर रहे हैं, कि—कब आप वननीयगति स्वच्छ वृषभकी समान तृषामें भर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे २

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ३

कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजम् । दर्षि । सहस्रिणम् ।
पिशङ्गऽरूपम् । मघऽवन् । विऽचर्षणे । मक्षु । गोऽमन्तम् । ईमहे ३

इति पञ्चमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे धर्षक इन्द्रदेव! आप धनको दबा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तिको भी विदीर्ण कर डालते हैं। हे विद्वान् इन्द्र! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे शीघ्रतापूर्वक याचना करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त (६६८)

त्रिकद्रुकशाहस्याहीनस्य नवस्वहःसु "शग्ध्यू षु शचीपते" [२०. ११८] "अभि प्र गोपतिं गिरा" [२०. ९२] "तं वो दस्ममृतीषहम्" [२०. ४९. ४] "वयमेनमिदा ह्यः" [२०. ६७] "इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्" [२०. ३८. ४] "श्रायन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] "क ईं वेद सुते सचा" [२०. ५३] "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" [२०. ५४] "यदिन्द्र प्रागपागुदक्" [२०. १२०] इत्येते नव पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "त्रिकद्रुकशाहस्य नवसु शग्ध्यू षु शचीपतेऽभि प्रगोपतिं गिरा तं वो दस्ममृतीषहं वयमेनमिदा ह्य

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहच्छ्रायन्त इव सूर्यं क ईं वेद सुते सचा विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं यदिन्द्र मागपाग्रुदगिति" इति [वै० ८.४]

त्रिककुद्दशाह अहीनके नौ दिनोंमें "शग्ध्यू ष्पु शचीपते" (२० । ११८) "अभि म गोपतिं गिरा" (२०।९२) "तं वो दस्ममृतीषहम्" (२० । ४९ । ४) "वयमेनमिदा ह्यः" (२० । ९७) "इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्" (२० । ३८ । ४) "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८) "क ईं वेद सुते सचा" (२०।५३) "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" (२० । ५४) "यदिन्द्र माग- पागुदक्" (२० । १२०) ये नौ यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"त्रिककुद्दशाहस्य नवसु शग्ध्यू षु शचीपतेऽभि मगोपतिं गिरा तं वो दस्ममृतीषहं वयमे- नमिदा ह्य इन्द्रमिद्गाथिनो बृहद् आयन्त इव सूर्यम् क ईं वेद सुते सचा विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् यदिन्द्र मागपागुद- गिति" (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥१

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कत् । वयः । दधे । अयम् । यः । पुरः । विऽभिनत्ति । ओजसा । मन्दानः । शिप्री । अन्धसः ॥ १ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि—सोमका अभिषव होने पर साथ २ कौनसे अन्नको ये धारण करते हैं। यह सुन्दर ठोडी वाले हविरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके शत्रुपुरीको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ १ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा २

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुऽत्रा । चरथम् । दधे ।
नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।
ओजसा ॥ २ ॥

मदमत्त मृगकी समान वारण करने वाले आप रथमें बैठ कर अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा कोई नहीं है जो आपको रोक सके । आप बलसे महान् बनते हुए विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये २

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ३

यः । उग्रः । सन् । अनिःऽस्तृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।
यदि । स्तोतुः । मघऽवा । शृणवत् । हवम् । न । इन्द्रः ।
योषति । आ । गमत् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके लिये तयार होने पर स्थिर रहते हैं यदि वह मघवा इन्द्र स्तुति करने वालेके आह्वानको सुने तो स्त्रीके पास जानेकी समान आवेंगे ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (६६९)

पृष्ठ्यषडहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेऽहनि एकाहैकीभूते

"इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" [२०. ४१] "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" [२०. ५४] "एवा ह्यसि वीरयुः" [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति" इति [वै० ८. २]॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्व्यहानां द्वितीयेष्वहस्सु "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरमिति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्याहीनस्य अष्टमेऽहनि एष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । सूत्रं पूर्वसूक्ते उक्तम् ॥

पृष्ठयषडहके एकविंशस्तोमक चतुर्थदिनके एकाहैकीभूतमें "इन्द्रो दधीचो अस्थभिः" (२०।४१) "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" (२०।५४) "एवाह्यसि वीरयुः" (२० । ६०) ये आज्यपृष्ठोक्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति" (वैतानसूत्र ८ । २)॥

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्व्यहोंके द्वितीय दिनोंमें "विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" यह स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

तथा त्रिककुद् दशाह अहीनके अष्टम दिनमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । सूत्र पहिले सूक्तमें कह दिया है ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्वा वरिष्ठं वरं आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

विश्वाः । पृतनाः । अभिऽभूतरम् । नरम् । सऽजूः । ततक्षुः ।

इन्द्रम् । जजनुः । च । राजसे ।

क्रत्वा । वरिष्ठम् । वरे । आऽमुरिम् । उत । उग्रम् । ओजिष्ठम् ।

तवसम् । तरस्विनम् ॥ १ ॥

सकल सेनाओंने अभिभव करने वाले नेता शत्रुओंको पूर्णरूपसे मर्दित करने वाले, उग्र बलवान् तरस्वी इन्द्रको वरणीय संग्राममें प्रेमपूर्वक वरण किया और प्रकट किया है ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः २

सम् । ईम् । रेभासः । अस्वरन् । इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये ।

स्वःऽपतिम् । यत् । ईम् । वृधे । धृतऽव्रतः । हि । ओजसा । सम् ।

ऊतिऽभिः ॥ २ ॥

ये स्तोता सोमपान करनेके लिये इन इन्द्रकी भली प्रकार स्तुति कर रहे हैं, और धृतव्रत सोम भी इन स्वर्गपतिकी ओर अपनी रक्षक शक्तियों सहित बढ़ता है ॥ २ ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ३

नेमिम् । नमन्ति । चक्षसा । मेषम् । विप्राः । अभिऽस्वरा ।

सुऽदीतयः । वः । अद्रुहः । अपि । कर्णे । तरस्विनः । सम् ।

ऋक्वऽभिः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

स्तुति करते हुए विप्र इनके मेषकी समान भक्षक वज्रको दृष्टि पड़ने पर प्रणाम करते हैं । हे स्तोताओं ! ऋक्व नामक पितरों के साथ इस वज्रकी सुन्दर दमकें भी तुम्हारे कानमें द्रोह न पहुँचावें अर्थात् तुम्हारे कानोंको कष्ट न दें॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सत्रहवां सूक्त समाप्त (६७०)

"तमिन्द्रं जोहवीमि" इत्यस्य विनियोगः "वयं घ त्वा सुतावन्तः" [२०. ५२] इति सूक्ते उक्तः ॥

"तमिन्द्रं जोहवीमि" सूक्तका सूत्र "वयं घ त्वा सुतावन्तः" इस (२० । ५२) सूक्तके साथ कह दिया है ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । जोहवीमि । मघऽवानम् । उग्रम् । सत्रा । दधानम् । अप्रतिऽस्कुतम् । शवांसि ।
मंहिष्ठः । गीःऽभिः । आ । च । यज्ञियः । ववर्तत् । राये । नः । विश्वा । सुऽपथा । कृणोतु । वज्री ॥ १ ॥

मैं उन इन्द्रका आह्वान करता हूँ, कि–जो धनवान् हैं उग्र हैं, संग्राममें मुख नहीं मोड़ते हैं और बलोंको धारण करने वाले हैं, स्तुतियोंसे पूजनीय स्तोत्र चल रहा है, वज्रधारी इन्द्र धनके लिये हमारे समस्त मार्गोंको सुन्दर करें ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः २

याः । इन्द्र । भुजः । आ । अभरः । स्वःऽवान् । असुरेभ्यः ।
स्तोतारम् । इत् । मघऽवन् । अस्य । वर्धय । ये । च । त्वे इति ।
वृक्तऽबर्हिषः ॥ २ ॥

हे स्वर्गके स्वामी इन्द्र ! आप असुरोंके लिये जिन भुजाओं को धारण करते हैं, उन भुजाओंसे इस यजमानके स्तुति करने वालेको बढ़ाइये और जो ऋत्विज आपमें परायण रहते हैं, उनको भी बढ़ाइये ॥ २ ॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥

यम् । इन्द्र । दधिषे । त्वम् । अश्वम् । गाम् । भागम् । अव्ययम् ।
यजमाने । सुन्वति । दक्षिणाऽवति । तस्मिन् । तम् । धेहि । मा ।
पणौ ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप जिस घोड़े गौ और अव्यय रहने वाले भाग को पुष्ट करते हैं, उसको अभिषव करने वाले और दक्षिणा देने वाले यजमानमें स्थापित करिये, पणि नामक असुरमें स्थापित न करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टादश सूक्त समाप्त (६७१)

पृष्ठ्यषष्ठाहस्य पञ्चमेऽहनि "उत्तिष्ठन्नोजसा सह" [२०. ४२. ३] "इन्द्रो मदाय वावृधे" [२०. ५६] "इन्द्राय साम गायत" [२०. ६२. ५-७] इत्येते आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति तद् उक्तं वैताने । "पञ्चम उत्तिष्ठन्नोजसा सहेन्द्रो मदाय वावृध इन्द्राय साम गायतेति" इति [वै० ८. ३]॥

पष्ठ्यषष्ठाहके पञ्चम दिनमें "उत्तिष्ठन्नोजसा सह" (२० । ४२ । ३) "इन्द्रो मदाय वावृधे" (२० । ५६) "इन्द्राय साम गायत" (२० । ६२ । ५-७) ये आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"पञ्चम उत्तिष्ठन्नो जसा सहेन्द्रो मदाय वावृध इन्द्राय साम गायतेति" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्

इन्द्रः । मदाय । वृवृधे । शवसे । वृत्रऽहा । नृऽभिः ।

तम् । इत् । महत्ऽसु । आजिषु । उत । ईम् । अर्भे । हवामहे ।

सः । वाजेषु । प्र । नः । अविषत् ॥ १ ॥

वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्रदेवको मनुष्य मद और बलके लिये बढ़ाते हैं । हम उनको विशाल संग्रामोंमें और इस छोटेसे यज्ञमें आह्वान करते हैं, वह युद्धोंमें हममें व्याप्त होजावें ?

सेन्योसि भूरि परादुदिः ।

चेद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते

॥ २ ॥

। सेन्यः । असि । भूरि । पराऽददिः ।

चेत् । वृधः । यजमानाय । शिक्षसि । सुन्वते ।

॥ २ ॥

सेनाके योग्य हैं, शत्रुओंका भयंकर खण्डन
: तुच्छ पुरुषको आप यजमानके कारण दण्ड
ापके लिये अभिषव करता है, आपका
: लिये ही है ॥ २ ॥

ायो धृष्णवे धीयते धना ।

॥ हरी कं हनः कं वसौ दधोस्माँ इन्द्र

। ३ ॥

आजयः । धृष्णवे । धीयते । धना ।

। हरी इति । कम् । हनः । कम् । वसौ । दधः ।

। वसौ । दधः ॥ ३ ॥

। लगता है और धर्षक पुरुषमें धन स्थापित
आप मदमत्त हरी नामक घोड़ोंको जोड़, कर
र किसमें धन स्थापित करेंगे ? हे इन्द्र ! उस
न स्थापित करिये ॥ ३ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवांमृजुक्रतुः।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४ ॥

मदेऽमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवाम् । ऋजुऽक्रतुः ।
सम् । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसु । शिशीहि । रायः । आ । भर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आपका यज्ञ सरल है, आप प्रत्येक वार हर्षमें भरने पर हमें गौओंके झुण्ड देते हैं। आप सैंकड़ों वार दोनों हाथोंसे बहुतसे धनको ग्रहण करके तीक्ष्ण करिये और हमें प्रदान करिये ४

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥

मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे ।
विद्म । हि । त्वा । पुरुऽवसुम् । उप । कामान् । ससृज्महे । अथ । नः । अविता । भव ॥ ५ ॥

हे शूर इन्द्र ! आप सहायक बन कर सोमका अभिषव होने पर मदमें भरिये और बलको साधिये, हम आपको विशाल धन वाला जानते हैं, हम आपसे अपनी कामनाओंसे संयुक्त रहें आप हमारे रक्षक हूजिये ॥ ५ ॥

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥

एते । ते । इन्द्र । जन्तवः । विश्वम् । पुष्यन्ति । वार्यम् ।
अन्तः । हि । ख्यः । जनानाम् । अर्यः । वेदः । अदाशुषाम् ।
तेषाम् । नः । वेदः । आ । भर ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! ये जन्तु आपके समग्र वीर्यको पुष्ट करते हैं, आप स्वामी हैं आपकी निन्दा करने वालोंके भीतर जो धन स्थित हैं उन हवि प्रदान न करने वालोंके धनको आप हमें प्रदान करिये ६

पञ्चम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त (६७२)

अह्नोर्याम्णि क्रतौ तृतीयसवने "सुरूपकृत्नुमूतये" [२०. ५७] "शुष्मिन्तमं न ऊतये" [२०. ५७. ४] इति स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तत्र "सुरूपकृत्नुमूतये" इति स्तोत्रियमभितः प्राकृतः स्तोत्रियो भवति । "शुष्मिन्तमं न ऊतये" इत्यनुरूपमभितः प्राकृतोऽनुरूपो भवति । तदु उक्तं वैताने । "तृतीयसवने सुरूपकृत्नुमूतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तोत्रियानुरूपावभितः स्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४. ३]॥

तथा महाव्रते प्रातःसवने "सुरूपकृत्नुमूतये" इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । तदु उक्तं वैताने । "महाव्रते सुरूपकृत्नुमूतय इत्याज्यस्तोत्रियः" इति [वै० ६. ४] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु "सुरूपकृत्नुमूतये" [२०. ५७] "इमा मन्दन्तु सोमाः" [२०. ६३] एतौ आज्यस्तो-

त्रियौ विकल्पितौ भवतः। त्वामिद्धि हवामहे" इति [२०. ९८] पृष्ठस्तोत्रियो भवति। तद्व उक्तं वैताने। "श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमूतय उत्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामह इति" इति [वै० ८. १]॥

अप्तोर्याम क्रतुके तृतीयसवनमें "सुरूपकृत्नुमूतये" (२०।५७) "शुष्मिन्तमं न ऊतये" (२० । ५७ । ४) ये स्तोत्रियानुरूप होते हैं। यहाँ "सुरूपकृत्नुमूतये" यह स्तोत्रियके अभितः माकृत स्तोत्रिय होता है। "शुष्मिन्तमं न ऊतये" यह अनुरूपके अभितः माकृत अनुरूप होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"तृतीयसवने सुरूपकृत्नुमूतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तोत्रियानुरूपावभितः स्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा महाव्रतके प्रातः सवनमें "सुरूपकृत्नुमूतये" (२० । ५७) ये आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"महाव्रते सुरूपकृत्नुमूतये इत्याज्यस्तोत्रियः" (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रोंके एकाहोंमें "सुरूपकृत्नुमूतये" (२० । ५७) "उत्वा मन्दन्तु स्तोमाः" (२० । ६३) ये विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होते हैं। "त्वामिद्धि हवामहे" (२० । ९८) ये पृष्ठस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमूतय उत्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामह इति" (वैतानसूत्र ८ । ४)।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

सुरूपऽकृत्नुम्। ऊतये। सुदुघाम्ऽइव। गोऽदुहे॥ जुहूमसि। द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

जैसे दूध दुहने वालेके लिये सरलतासे दुहाने वाली गौको बुलाया जाता है, इसी प्रकार हम रक्षाके लिये प्रत्येक अवसर पर इन्द्रदेवका आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

उप । नः । सवना । आ । गहि । सोमस्य । सोमऽपाः । पिब ॥ गोऽदाः । इत् । रेवतः । मदः ॥ २ ॥

इन्द्रदेव गौएँ देने वाले हैं, हर्षसे भरे रहते हैं, धनसम्पन्न हैं, ऐसे इन्द्रदेव हम रे सोमसवनोंके समीप आइये और सोमका पान करिये ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

अथ । ते । अन्तमानाम् । विद्याम । सुऽमतीनाम् ॥ मा । नः । अति । ख्यः । आ । गहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम आपके समीप रहने वाली सुन्दर बुद्धियोंको जानते हैं आप हमारी अधिक निन्दा न कराइये और हमारे पास आइये ॥ ३ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥

शुष्मिन्ऽतमम् । नः । ऊतये । द्युम्निनम् । पाहि । जागृविम् ॥ इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ ४ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आप हमारी रक्षा करनेके लिये इस बलप्रद ज्योतिःसम्पन्न-जागरूक रखनेवाले सोमका पान करिये ४

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चऽसु ॥ इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ ५ ॥

हे बहुकर्मन् इन्द्र ! आपकी जो इन्द्रियें देवता पितर आदि पञ्च जनोंमें हैं । हे इन्द्र ! मैं उन इन्द्रियोंका वरण करता हूँ ॥ ५ ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् ॥ दधिष्व । दुस्तरम् ॥ उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे, और आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकते हुए धनोंको हममें स्थापित करिये और हम आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं ६

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । अथो इति । शक्र । पराऽवतः ।
ऊं इति । लोकः । यः । ते । अद्रिऽवः । इन्द्र । इह । ततः ।
आ । गहि ॥ ७ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! आप समीपके स्थलमें हों तो समीपके स्थलसे और दूरके स्थलमें हों तो दूरके स्थानसे हमारे पास आइये, हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपका जो उत्तम लोक है, उस स्थानसे भी आप सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । सत् । अप । चुच्यवत् ॥ सः । हि । स्थिरः । विऽचर्षणिः ॥ ८ ॥

हे आत्मा वा ऋत्विज ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं, और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इन्द्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनको च्युत नहीं कर सकता। और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देनेवालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

इन्द्रः । च । मृलयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अघम् । नशत् । भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ९ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख दें, यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावें और सामने हमारा मङ्गल होवे ॥ ९ ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रः । आशाभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । करत् ॥ जेता । शत्रून् । विऽचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु हैं उनको देखने वाले हैं ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कत् । वयः । दधे । अयम् । यः । पुरः । विऽभिनत्ति । ओजसा । मन्दानः । शिप्री । अन्धसः ॥ ११ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि-सोमका अभिषव होनेपर साथ २ यह कौनसे अन्नको धारण करते हैं, यह सुन्दर ठोढ़ी वाले हवीरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके शत्रु-पुरोंको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ ११ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा १२

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुऽत्रा । चरथम् । दधे । नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि । ओजसा ॥ १२ ॥

मदमत्त मृगकी समान वारण करने वाले आप रथमें बैठ कर अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा कोई नहीं है जो आपको रोक सके, आप बलसे महान् बनते हुए विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये १२

य उग्रः सन्ननिंष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदिं स्तोतुर्मघवां शृणवद्धवं नेन्द्रों योषत्या गमत्

यः । उग्रः । सन् । अनिऽस्तृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।
यदि । स्तोतुः । मघऽवा । शृणवत् । हवम् । न । इन्द्रः ।
योषति । आ । गमत् ॥ १३ ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके लिये तयार होने पर अहिंसित रहते हैं, यदि यह मघवा इन्द्र स्तुति करने वालेके आह्वानको सुनें तो स्त्रीके पास जानेकी समान आवेंगे ॥ १३ ॥

वयं घं त्वा सुतावंन्त आपो न वृक्तबंर्हिषः ।
पवित्रंस्य प्रस्रवंणेषु वृत्रहन् परिं स्तोतारं आसते १४

वयम् । घ । त्वा । सुतऽवन्तः । आपः । न । वृक्तऽबर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रऽस्रवणेषु । वृत्रऽहन् । परि । स्तोतारः । आसते १४

हे इन्द्र ! अभिषव करके जलकी समान पतले किये गए अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम ऋत्विज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥

स्वरंन्ति त्वा सुते नरो वसों निरेक उक्थिनंः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥

स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।

कदा । सुतम् । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वब्दीऽइव । वंसगः ॥ १५ ॥

हे वासयितः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर अधिकतासे स्तवगान करने वाले पुरुष ऋत्विज आपका स्वरोंसे आह्वान कर रहे हैं, कि—कब आप वननीय गति स्वब्दी वृषभकी समान तृषामें भर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे ॥ १५ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे १६

कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजम् । दर्षि । सहस्रिणम् ।
पिशङ्गऽरूपम् । मघऽवन् । विऽचर्षणे । मक्षु । गोऽमन्तम् । ईमहे ।

इति पञ्चमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे धर्षक इन्द्रदेव ! आप धनको दबा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से भी सम्पन्न व्यक्तिको विदीर्ण कर डालते हैं, हे विद्वन् इन्द्र ! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे याचना करते हैं ॥ १६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त (६७१)

त्रिपुरति सौर्यपृष्ठे "बपण्महाँ असि सूर्य" [२०, ५८, ३] "आयन्त इव सूर्यम्" [२०, ५८, १] इति विकल्पिता पृष्ठस्तो-

त्रियानुरूपौ भवतः । तद्व उक्तं वैताने । "बण्महाँ असि सूर्य आयन्त इव सूर्यमिति वा" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तीव्रसुच्चतुःपर्याययोः साहस्रान्त्ययोर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे "आयन्त इव सूर्यम्" इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति ॥

तथा साद्यःक्राभिधानेषु एकाहेषु श्येनयागवर्जितेषु "अहमिद्धि पितुष्परि" [२०. ११५] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । चकारात् "आयन्त इव सूर्यम्" इत्याज्यस्तोत्रियो भवति ॥

तद्व उक्तं वैताने । "तीव्रसुच्चतुःपर्याययोः सहस्रान्त्ययोर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च" इति [वै० ८. २] ॥

तथा साकमेधस्य तृतीयेऽहनि अस्य सूक्तस्य विनियोग उक्तः । स च "तमिन्द्रं वाजयामसि" इति सूक्ते [२०. ४७] द्रष्टव्यः ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु "आयन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] "त्वं न इन्द्रा भर" [२०. १०८] एतौ पृष्ठोक्यस्तोत्रियौ भवतः । तद्व उक्तं वैताने । "चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यं त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः "क ईं वेद सुते सचा" इति सूक्ते [२०. ५३] उक्तः ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठमें "बण्महाँ असि सूर्य" (२० । ५८ । ३) "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८ । १) ये विकल्पसे पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"बण्महाँ असि सूर्य आयन्त इव सूर्यमिति वा" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा सहस्रांत्य तीव्र सुच्चतुः पर्यायोंके दशपेय विभ्रंश यज्ञमें "आयन्त इव सूर्यम्" यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है ।

तथा श्येनयागवर्जित साद्यःक्र नामक एकाहोंमें "अहमिद्धि

पितुष्परि" (२० । ११५) ये आज्यस्तोत्रिय होता है। चकार से "आयन्त इव सूर्यम्" यह आज्यस्तोत्रिय होता है।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"तीव्रसुच्चतुः पर्यायोः सहस्रान्त्ययोर्दशपेये विश्रशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति। साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च" (वैतानसूत्र ८ । २)

तथा साकमेधके तृतीय दिनमें इस सूक्तका विनियोग कहा है। उसको "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) सूक्तमें देखना चाहिये।

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ४८) "त्वं न इन्द्राभर" (२० । १०८) ये पृष्ठोक्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यम् त्वं न इन्द्रा भरेति" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुद्दशाहमें इसका विनियोग "कईं वेद सुते सचा" (२० । ५३) सूक्तमें देखना चाहिये।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम १

आयन्तःऽइव। सूर्यम्। विश्वा। इत्। इन्द्रस्य। भक्षत। वसूनि। जाते। जनमाने। ओजसा। प्रति। भागम्। न। दीधिम ॥ १ ॥

जिस प्रकार किरणें प्रतिदिन सूर्यका उपस्थान करती हैं— सूर्यके समीप रहती हैं, इसी प्रकार मध्यस्थानक उदकेश्वर इन्द्र के समीप रहती हैं, उन इन्द्रके जलरूप सब धनोंको अपने लिये या सब जनोंके लिये हम बाँटना चाहते हैं। और जैसे इन्द्र भूत

भविष्यत् वर्तमानके धनोंको अपने ऐश्वर्यबलसे बाँटना चाहते हैं और उस भागसे प्राणी उपजीवन करते हैं । इसी प्रकार हम भी उस भागका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

अनर्शरातिं वसुदामुपं स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥

अनर्शऽरातिम् । वसुऽदाम् । उप । स्तुहि । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ।
सः । अस्य । कामम् । विधतः । न । रोषति । मनः । दानाय ।
चोदयन् ॥ २ ॥

हे स्तोतः ! अश्लीलता रहित दान वाले धनदाता इन्द्रकी मन से धारण लेकर तुम स्तुति करो । इन इन्द्रके दान कल्याणमय हैं । वह इन्द्रदेव इस अपने भक्तके धारण किये हुए मनोरथोंको नष्ट नहीं करते हैं और जो इस प्रकार स्तुति करके याचना करता है वह इन्द्रके मनको दानके लिये प्रेरित करता है ॥ २ ॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ असि ३

बट् । महान् । असि । सूर्य । बट् । आदित्य । महान् । असि ।
महः । ते । सतः । महिमा । पनस्यते । अद्धा । देव । महान् ।
असि ॥ ३ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप महान् हैं, यह सत्य है, हे अदिति-पुत्र ! आप महान् हैं यह सत्य है । आप सत्स्वरूपपूज्यकी महिमा भी प्रशंसा पाती है, हे देव ! आप महान् हैं, यह सत्य है ।३।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ४

बट् । सूर्य । श्रवसा । महान् । असि । सत्रा । देव । महान् । असि ।
मह्ना । देवानाम् । असुर्यः । पुरःऽहितः । विऽभु । ज्योतिः ।
अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे सूर्य ! आप हविरूप अन्नसे महान् हैं, यह सत्य है और हे देव ! साथ ही आप स्वयं भी महान् हैं । आप अपनी महिमा से असुरोंसे भिड़ने वाले देवश्रेष्ठ हैं, आगे २ हित करते हैं और आप अहिंस्य व्यापक ज्योति हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त (६७४)

दशरात्रस्य दशमेहनि माध्यंदिने सवने "उदु त्ये मधुमत्तमाः" [२०. ५९. १] "उदिन्न्वस्य रिच्यते" [२०. ५९. ३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद्व उक्तं वैताने । "उदु त्ये मधुमत्तमा उदिन्न्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ६. ३] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें माध्यन्दिन सवनके अवसर पर "उदु त्ये मधुमत्तमाः" (२० । ५९ । ३) ये पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"उदु त्ये मधुमत्तमा उदिन्न्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ६।३) ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १

उत् । ऊं इति । त्ये । मधुमत्ऽतमाः । गिरः । स्तोमासः । ईरते ।

सत्राऽजितः । धनऽसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयन्तः ।

रथाःऽइव ॥ १ ॥

ये आगे कहे जाने जाने वाले प्रगीतमन्त्रसाध्य त्रिवृत् आदि स्तोत्र और अप्रगीत मन्त्रसाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियें प्रादुर्भूत हो रहीं हैं ये धन प्रदान करनेवाली हैं और एक वार ही शत्रुओंको जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दौड़ता है, तैसे ही यह इन्द्रके सन्तोषके लिये प्रकट होती हैं ।१।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कण्वाःऽइव । भृगवः । सूर्याःऽइव । विश्वम् । इत् । धीतम् । आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महऽयन्तः । आयवः । प्रियऽमेधासः । अस्वरन् ॥ २ ॥

कण्वगोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रों से इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

उदिन्न्वस्य रिच्यतेंशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

सत् । इत् । नु । अस्य । रिच्यते । अंशः । धनम् । न । जिग्युषः । यः । इन्द्रः । हरिऽवान् । न । दभन्ति । तम् । रिपः । दक्षम् । दधाति । सोमिनि ॥ ३ ॥

विजेताके धनकी समान इन इन्द्रदेवका यज्ञभाग होता है, जो इन्द्रदेव हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न हैं, उनको पाप बाँध नहीं सकते और यह इन्द्रदेव सोमप्रदाता यजमानमें बलको स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा । पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ४

मन्त्रम् । अखर्वम् । सुऽधितम् । सुऽपेशसम् । दधात । यज्ञियेषु । आ । पूर्वीः । चन । प्रऽसितयः । तरन्ति । तम् । यः । इन्द्रे । कर्मणा । भुवत् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

हे स्तोताओं ! यज्ञिय स्तोत्रोंमें महाप्रभावसम्पन्न सुन्दर दीप्ति ... वाले मन्त्रोंका प्रयोग करो, जो कर्मसे इन्द्रकी सेवामें परायण रहता है वह पूर्व बन्धनों (पापों) से छूट जाता है ४

पञ्चम अनुवाकमें बाईसवाँ सूक्त समाप्त (६३५)

अभिप्लवमध्यमेष्वहःसु द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमेषु । "एवा ह्यसि वीरयुः" इत्यादयोऽष्टौ ऋचास्तृतीयसवने उक्थस्तोत्रियानु-

रूपा यथाक्रमं भवन्ति । एवं च "एवा ह्यसि वीरयुः" [२०. ६०] "एवा ह्यस्य सूनृता" [२०. ६०. ४–६] इति स्तोत्रियानुरूपौ द्वितीये । "तं ते मदं गृणीमसि" [२०. ६१] "तम्वभि प्र गायत" [२०. ६१. ४–६] इति तृतीये । "वयमु त्वामपूर्व्य" [२०. ६२, १] "यो न इदमिदं पुरा" [२०. ६२, ३] इति चतुर्थे । "इन्द्राय साम गायत" [२०. ६२. ५–७] "तम्वभि प्र गायत" [२०. ६१. ४–६] इति पञ्चमे । तद् उक्तं वैताने । "मध्यमेष्वेवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपा" इति [वै० ६.१] ॥

तथा वैकृतस्य पृष्ठ्यत्र्यहस्य द्वितीयेऽहनि "एवा ह्यसि वीरयुः" इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "पृष्ठ्यत्र्यहस्य एवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थे" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा तस्यैव तृतीयेऽहनि अस्य विनियोगः "अभि प्र वः सुराधसम्" इति सूक्ते [२०. ५१] उक्तः ॥

तथा पृष्ठ्यपञ्चाहस्य द्वितीयेऽहनि "एवा ह्यसि वीरयुः" इति पृष्ठोक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "पृष्ठ्यपञ्चाहस्यैवा ह्यसि वीरयुरिति" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा पृष्ठ्यषडहस्य द्वितीयेऽहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "पृष्ठ्यस्य द्वितीय एवा ह्यसि वीरयुरिति" इति [वै० ८. ४] ॥

अभिप्लवके मध्यमदिनमें दूसरे तीसरे चौथे पाँचवेंमें "एवा ह्यसि वीरयुः" इत्यादि आठ तृच तृतीयसवनमें यथाक्रम स्तोत्रिय और अनुरूप होते है । इसी प्रकार "एवा ह्यसि वीरयुः" (२० । ६०) "एवा ह्यस्य सूनृता (२० । ६० । ४-६) ये स्तोत्रिय और अनुरूप दूसरे दिनमें होते हैं । "तं ते मदं गृणीमसि" (२०।६१) "तम्वभि प्र गायत" (२० । ६१ । ४–६) ये तृतीय दिनमें होते हैं । "वयमु त्वामपूर्व्य" (२० । ६२, १) "यो न इदमिदं

पुरा" (२० । ६२, ३) ये चौथे दिनमें होने हैं । "इन्द्राय साम गायत" (२० । ६२ । ५–७) "तम्वभि मगायत" (२०।६१। ४–६) ये पञ्चम दिनमें होते हैं ॥ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"मध्यमेष्वेवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपाः" इति (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा वैकृत पृष्ठ्यत्र्यहके द्वितीय दिनमें "एवा ह्यसि वीरयुः" यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"पृष्ठ्यत्र्यहस्य एवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थे" (वैतानसूत्र ८.२)

तथा इसीके तृतीयदिनमें इसका जो विनियोग "अभि प्र वः सुराधसम्" (२० । ५१) सूक्तमें कहा है, उसको देखना चाहिये।

तथा पृष्ठ्यपञ्चाहके द्वितीय दिनमें "एवा ह्यसि वीरयुः" यह पृष्ठोक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि– "पृष्ठ्यपञ्चाहस्यैवा ह्यसि वीरयुरिति" (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

एवा ह्यसिं वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

एव । हि । असि । वीरऽयुः । एव । शूरः । उत । स्थिरः ॥ एव । ते । राध्यम् । मनः ॥ १ ॥

आप वीरोंको हटाने वाले हैं, शूर हैं और स्थिर हैं, आपका मन राध्य ॥ १ ॥

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥

एव । रातिः । तुविऽमघ । विश्वेभिः । धायि । धातृऽभिः । अध । चित् । इन्द्र । मे । सचा ॥ २ ॥

हे बहुतसे धनसे सम्पन्न इन्द्रदेव! अपनी पुष्ट करने वाली समस्त शक्तियोंके साथ हममें दानशक्तिको स्थापित करिये, हे इन्द्र! फिर आप मेरे सहायक बनिये ॥ २ ॥

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तन्द्रयुः । भुवः । वाजानाम् । पते ॥ मत्स्व । सुतस्य । गोऽमतः ॥ ३ ॥

हे अन्नोंके स्वामी आप ब्रह्माजीकी समान तन्द्रयु न बनिये और बुद्धि प्रदान करने वाले अभिषुत सोमसे आनन्दमें भरिये३

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृता । विऽरप्शी । गोऽमती । मही ॥ पक्वा । शाखा । न । दाशुषे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर, गोप्रदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करनेवाले यजमानको पक्व शाखाकी समान (फलप्रदान करने वाली है)

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

एव । हि । ते । विऽभूतयः । ऊतयः । इन्द्र । माऽवते ॥ सद्यः । चित् । सन्ति । दाशुषे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्षक विभूतियें, हवि देने वाले यजमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

एव । हि । अस्य । काम्या । स्तोमः । उक्थम् । च । शंस्या ॥ इन्द्राय । सोमऽपीतये ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रको सोम पिलाते समय स्तोम उक्थ और शंस्या (नामक स्तुतियें) इन्द्रदेवकी कमनीय हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तेईसवाँ सूक्त समाप्त (६७६)

अभिप्लवे "तं ते मदं गृणीमसि" इत्यस्य विनियोगः पूर्वेण [२०. ६०] सह उक्तः ॥

तथा व्युष्टयाङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्व्यहानां प्रथमेऽहनि "तं ते मदं गृणीमसि" इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "व्युष्टयाङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्व्यहानां तं ते मदं गृणीमसीति" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यहाणां द्वितीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः "तमिन्द्रं वाजयामसि" इति सूक्ते [२०. ४७] उक्तः ॥

अभिप्लवमें "तं ते मदं गृणीमसि" इसका विनियोग पूर्वसूक्त (२०।६०) के साथ कह दिया है ।

तथा व्युष्टय आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्व्यहोंके प्रथम दिनमें "तं ते मदं गृणीमसि" यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"व्युष्टयांगिरसकापिवनचैत्ररथद्व्यहानां तं ते मदं गृणीमसीति" (वैतानसूत्र ८।३)॥

तथा वैश्वदेव आदि छन्दोंके द्वितीय दिनोंमें इसका विनियोग "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) सूक्तमें कहा है ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

तम् । ते । मदम् । गृणीमसि । वृषणम् । पृत्ऽसु । ससहिम् । ऊं इति । लोकऽकृत्नुम् । अद्रिऽवः । हरिऽश्रियम् ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! हम फलोंकी वर्षा करने वाले, सेनाओं में शत्रुओंका अभिभव करने वाले और हरी नामक घोड़ोंकी श्रीसे सम्पन्न आपके लोककृत्नु मदकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

येन । ज्योतींषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ । मन्दानः । अस्य । बर्हिषः । वि । राजसि ॥ २ ॥

आपने जिस सोमके प्रभावसे आयु और मनुके लिये ज्योतिर्मय उपायोंको प्राप्त कराया था, उस सोमसे हर्षमें भरे हुए आप इस यजमानके कुशासन पर विराज रहे हैं ॥ २ ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तत् । अद्य । चित् । ते । उक्थिनः । अनु । स्तुवन्ति । पूर्वऽथा । वृषऽपत्नीः । अपः । जय । दिवेऽदिवे ॥ ३ ॥

ये उक्थगान करनेवाले आपके पूर्व कर्मोंकी स्तुति कर रहे हैं, आप प्रत्येक विजिगीषाके अवसर पर धर्मकृत्य करके विजय पाइये

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । प्र । गायत । पुरुऽहूतम् । पुरुऽस्तुतम् ।
इन्द्रम् । गीःऽभिः । तविषम् । आ । विवासत ॥ ४ ॥

बहुतोंसे आहूत और बहुतोंसे स्तुत उन इन्द्रदेवका ही तुम यशोगान करो, महान् इन्द्रदेवको ही तुम स्तुतिरूपा वाणियोंसे आवासित करो ॥ ४ ॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥

यस्य । द्विऽबर्हसः । बृहत् । सहः । दाधार । रोदसी इति ।
गिरीन् । अज्रान् । अपः । स्वः । वृषऽत्वना ॥ ५ ॥

जिस द्विबर्हस् इन्द्रके धर्मभावके कारण द्यावा पृथिवी उनके महान् बल पर्वत वज्र अन्न और स्वर्गको धारण करते हैं (हे स्तोताओं) तुम उन इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ५ ॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

सः । राजसि । पुरुऽस्तुतः । एकः । वृत्राणि । जिघ्नसे ।
इन्द्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानेके लिये दमकने हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चौसठवां सूक्त समाप्त (६५)

"वयमु त्वामपूर्व्य" इत्याद्यृचस्य विनियोगः [२०. १४] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा "इन्द्राय साम गायत" [२०. ६२. ५]इत्यस्य विनियोगः "इन्द्रो मदाय वावृधे" [२०. ५६]इत्यनेन सह उक्तः॥

"वयमुः त्वामपूर्व्य" सूक्तका विनियोग (२०।१४) में कह दिया है ।

तथा "इन्द्राय साम गायत" (२० । ६५ । ५) इसका विनियोग "इन्द्रो मदाय वावृधे" (२० । ५६) के साथ कह दिया है।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्व्य । स्थूरम् । न । कत् । चित् । भरन्तः । अवस्यवः । वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे वारम्बार गमन करने पर भी नवीन ही रहनेवाले अपूर्व्य ! (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता) इन्द्र ! आप पूजनीयका अन्नमाप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं, आप हमारी ओर ही विजय दिलानेके लिये आइये हमारे प्रतिपक्षियोंकी ओर न जाइये,क्योंकि–हम ही आपका आवाहन कर रहे है । जैसे मनुष्य किसी परमगुणी राजाको अभिमत फल देकर पुष्ट करते हैं, उस को ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं, इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम ।
यः । धृषत् ।
त्वाम् । इत् । हि । अवितारम् । ववृमहे । सखायः । इन्द्र ।
सानसिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव! युद्ध आदि कर्मके आने पर रक्षाके लिये हम आप की शरणमें जाते हैं। जो इन्द्रदेव शत्रुओंको दबा देते हैं, नित्य तरुण रहते हैं, प्रचण्ड बली हैं, वह इन्द्रदेव हमको सहायकरूप से प्राप्त होवें। हे इन्द्रदेव! मित्ररूप हम प्रीति करने वाले और रक्षा करने वाले आपका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

यः । नः । इदम्ऽइदम् । पुरा । प्र । वस्यः । आऽनिनाय । तम् ।
ऊं इति । वः । स्तुषे । सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ ३ ॥

हे समान ख्याति वाले मित्र हुए यजमानो! मैं तुम्हारी रक्षा के लिये उन इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ, कि-जो इन्द्रदेव पहिले हमारे लिये यह गौ है आदिक रीतिसे धन देचुके हैं। उन ही अभिमत फल देने वाले इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

हरिऽअश्वम् । सत्ऽपतिम् । चर्षणिऽसहम् । सः । हि । स्म । यः । अमन्दत ।
आ । तु । नः । सः । वयति । गव्यम् । अश्व्यम् । स्तोतृऽभ्यः । मघऽवा । शतम् ॥ ४ ॥

जिन इन्द्रदेवके हरिनामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ धर्म करने वाले मनुष्योंके पालक हैं, और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ। जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ। वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ४

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

इन्द्राय । साम । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत् ॥ धर्मऽकृते । विपःऽचिते । पनस्यवे ॥ ५ ॥

हे स्तोताओं ! तुम धर्मकर्ता विद्वान्, स्तुत्य विशाल इन्द्रदेवके लिये बृहत्सामका गायन करो ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिऽभूः । असि । त्वम् । सूर्यम् । अरोचयः ॥

विश्वऽकर्मा । विश्वऽदेवः । महान् । असि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं, आपने सूर्यको आकाशमें दीप्त किया है, आप विश्वकर्मा विश्वदेव और महान् हैं ॥ ६ ॥

विभ्राजं ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥

विऽभ्राजन् । ज्योतिषा । स्वः । अगच्छः । रोचनम् । दिवः ।

देवाः । ते । इन्द्र । सख्याय । येमिरे ॥ ७ ॥

आप अपनी ज्योतिसे स्वर्गको दमकाने वाले सूर्यको दमकाते हुए, स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं, हे इन्द्र ! देवता आपके सखित्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । प्र । गायत । पुरुऽहूतम् । पुरुऽस्तुतम् ॥

इन्द्रम् । गीःऽभिः । तविषम् । आ । विवासत ॥ ८ ॥

हे स्तोताओं ! तुम अनेक यजमानोंसे बुलाये हुए और अनेक स्तोताओंसे स्तुत इन इन्द्रकी ही स्तुति करो, उन बलवान् इन्द्र को ही स्तुतिवाणियोंसे आच्छादित करो ॥ ८ ॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥

यस्यं । द्विऽबर्हसः । बृहत् । सहः । दाधारं । रोदंसी इति ॥

गिरीन् । अज्रान् । अपः । स्वः । वृषऽत्वना ॥ ६ ॥

जिस द्विबर्हस् इन्द्रके धर्मभावके कारण द्यावापृथिवी उनके महान् बल पर्वत वज्र जल और स्वर्गको धारण करते हैं। हे स्तोताओं ! तुम इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ६ ॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

सः । राजसि । पुरुऽस्तुत । एकः । वृत्राणि । जिघ्नसे ॥ इन्द्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ १० ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुष्टुत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानेके लिये दमकते हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥१०॥

पञ्चम अनुवाकमें पच्चीसवाँ सूक्त समाप्त (६७८)

पृष्ठ्यस्य षष्ठेहनि "इमा नु कं भुवना सीषधाम" [२०.६३.१] "इत्वाय देवा असुरान् यदायन्" [२०. ६३. २] इति द्वैपदौ पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । "षष्ठ इमा नु कं भुवना सीषधाम इत्वाय देवा असुरान् यदायन्निति द्वैपदौ पच्छः" इति [वै० ६. २]॥

वाजपेये तृतीयसवने माकृतयोः स्तोत्रियानुरूपयोः मरुत्याम्नायकौ "य एक इद् विदयते" [२०. ६३. ४] "य इन्द्र सोमपातमः" [२०. ६३. ७] एतौ उक्थस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "तृतीयसवने य एक इद् विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा अभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च तृतीयसवने एतौ उक्थस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने "अभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च य एक इद्ध विदयते य इन्द्रसोमपातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ६. १]॥

तथा विश्वजिति एकाहीभूते "य एक यद्द विदयते" इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "विश्वजिति य एक इद्द विदयत इति" इति [वै० ८. २]॥

तथा चतुरहाणां चतुर्थेष्वहःसु "महाँ इन्द्रो य ओजसा" [२०.१३८] "य एक इद्द विदयते" [२०.६३.४] एतौ आज्योक्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद्द विदयत इति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा अभिसवपञ्चाहस्य "य एक इद्द विदयते" इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "अभिसवपञ्चाहस्य य एक इद्द विदयत इति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा अभिप्लवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं भवति तदा "य एक इद्द विदयते" [२०. ६३. ४] "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" [२०. १११] एतौ उक्थस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "षष्ठमुक्थ्यं चेद्द य एक इद्द विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा द्वादशाहस्य छन्दोमत्र्यहस्य प्रथमान्त्ययोरह्नोः 'त्वं न इन्द्रा भर" [२०. १०८] "य एक इद्द विदयते" एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । "द्वादशाहस्य छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद्द विदयत इति" इति [वै० ८. ४]॥

पृष्ठ्यके छठे दिन "इमा नु कम् भुवना सीषधाम" (२०।६३।१) "इन्द्राय देवा असुरा यदायन्" (२०।६३।२) इन द्वैपदों

को पद २ करके कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"इमा नु कं भुवना सीषधाम इत्वाय देवा असुरान् यदापजिति द्वैपदी पच्छः" । वैतानसूत्र ६ । २) ॥

वाजपेयके तृतीय सवनमें माकत स्तोत्रियानुरूपोंके मरुत्वान्नामक "य एक इद्द विदयते" (२० । ६३ । ४) "य इन्द्र सोमपातमः" (२० । ६३ । ७) ये उक्थ स्तोत्रियानुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"तृतीयसवने य एक इद्द विदयते य इंद्र सोमपातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र४।३)

तथा अभिजित् विपुवत् विश्वजित् महाव्रतके भी तृतीयसवनमें ये उक्थस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च य एक इद्द विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा एकहीभूत विश्वजित्में "य एक इद्द विदयते" यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"विश्वजिति य एक इद्द विदयते" (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा चतुरहोंके चौथे दिनोंमें "महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद्द विदयते" इति ये आज्योक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद्द विदयते" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवपञ्चाहका "य एक इद्द विदयते" यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमें कहा है, कि–"अभिसवपञ्चाहस्य य एक इद्द विदयते" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवका छठा दिन उक्थ्यसंस्थ होता है तब "य एक इद्द विदयते" (२० । ६३ । ४) "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" (२० । १११) ये विकल्पित उक्थ्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बात

को वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"पष्ठमुक्थ्यं चेद्ध य एक इद्ध विदयते यत् सोममिन्द्रविष्णवीति" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा द्वादशाह छन्दोमत्र्यहके पहिले तीसरे दिनोंमें "त्वं न इन्द्रा भर" (२० । १०८) "य एक इद्ध विदयते" ये यथाक्रम उक्थ और स्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"द्वादशाहस्य छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्राभर य एक विदयते" (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥

इमा । नु । कम् । भुवना । सीसधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः । यज्ञम् । च । नः । तन्वम् । च । प्रऽजाम् । च । आदित्यैः । इन्द्रः । सह । चीक्लृपाति ॥ १ ॥

ये सम्पूर्ण विश्वेदेवता, इन्द्र तथा भुवन सुखको पानेकी चेष्टा करते हैं, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञको शरीरको और प्रजाको समर्थ करें ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सऽगणः । मरुत्ऽभिः । अस्माकम् । भूतु । अविता । तनूनाम् ।

। इत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आयन् । देवाः । देवऽत्वम् ।

अभिऽरक्षमाणाः ॥ २ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ३

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवऽहितम् । सनेम । मदेम । शतऽहिमाः । सुऽवीराः ३

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे सम्पन्न देखा है । इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावें और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रह कर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो

अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

यः । एकः । इत् । विऽदयते । वसु । मर्ताय । दाशुषे ॥ ईशानः ।

अप्रतिऽस्कुतः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ४ ॥

जो अप्रतिभट स्वामी इन्द्र हवि देने वाले यजमानको धन देनेमें अद्वितीय हैं ॥ ४ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः

शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

कदा । मर्तम् । अराधसम् । पदा । क्षुम्पम्ऽइव स्फुरत् ॥ कदा ।

नः । शुश्रवत् । गिरः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ५ ॥

हवि या स्तुतिसे अपनी आराधना न करने वाले मनुष्यको इन्द्रदेव कब पैरसे ताड़ित करेंगे और कब हम स्तोताओंकी वाणियोंको सुनेंगे ॥ ५ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

यः । चित् । हि । त्वा । बहुऽभ्यः । आ । सुतऽवान् । आऽवि-

वासति ॥ उग्रम् । तत् । पत्यते । शवः । इन्द्रः । अङ्गः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! जो अभिषुत सोम वाला पुरुष आपकी बहुतसी स्तुतियोंसे प्रार्थना करता है, वह प्रचण्ड बलसे ऐश्वर्यमें भर जाता है ॥ ६ ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि

न्य१त्त्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

यः । इन्द्र । सोमऽपातमः । मदः । शविष्ठ । चेतति ॥ येन । हंसि ।

नि । अत्रिणम् । तम् । ईमहे ॥ ७ ॥

जो इन्द्रदेव सोमके बड़े पियक्कड़ हैं और बलमय मद जिनमें उदित होता है, और हे इन्द्र ! जिसके द्वारा भक्षणशील राक्षसों

को आप मारते हैं, उस बलकी हम याचना करते हैं ॥ ७ ॥

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥

येन । दशऽग्वम् । अध्रिऽगुम् । वेपयन्तम् । स्वःऽनरम् ॥ येन । समुद्रम् । आविथ । तम् । ईमहे ॥ ८ ॥

जिस प्रभावके द्वारा आपने दशगु अध्रिगु काँपते हुए स्वर्नर की रक्षा की थी और समुद्रकी रक्षा की थी उस प्रभावकी हम याचना करते हैं ॥ ८ ॥

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

येन । सिन्धुम् । महीः । अपः । रथान्ऽइव । प्रऽचोदयः ॥ पन्थाम् । ऋतस्य । यातवे । तम् । ईमहे ॥ ९ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

जिस प्रभावसे आपने विशाल जलोंको सिंधुकी ओर रथकी समान चला रक्खा है, अमृतके मार्गमें जानेके लिये हम उस प्रभावकी याचना करते हैं ॥ ९ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छब्बीसवाँ सूक्त समाप्त (६७९)

अभिप्लवस्य पञ्चमेऽहनि "एन्द्र नो गधि प्रियः" इति तृचः स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "पञ्चम एन्द्र नो गधि प्रिय इति" इति [वै० ८. ३] ॥

अभिप्लवके पञ्चम दिनमें "एन्द्र नो गधि प्रियः" ये तृच-

स्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, "...
एन्द्र नो गधि प्रियः" (वैतानसूत्र ८। ३) ॥

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

आ। इन्द्र। नः। गधि। प्रियः। सत्राऽजित्। अगोह्यः॥ गिरिः। न। विश्वतः। पृथुः। पतिः। दिवः ॥ १ ॥

हे इन्द्र! आप हमारे प्रिय हैं, हमको प्रियरूपमें ग्रहण करिये, आप सत्यसे विजय पाने वाले हैं, कोई आपको छिपा नहीं सकता, आप पर्वतकी समान विशाल हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ॥ १ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

अभि। हि। सत्य। सोमऽपाः। उभे इति। बभूथ। रोदसी इति॥ इन्द्र। असि। सुन्वतः। वृधः। पतिः। दिवः ॥ २ ॥

हे सत्य इन्द्र! आप अभिमुख होकर सोमका पान ... हैं द्युलोक और पृथिवीलोक दोनोंमें आप प्रकट होजाते हैं, इन्द्र! आप अभिषव करने वालेको बढ़ाने वाले और ... हैं ॥ २ ॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

त्वम्। हि। शश्वतीनाम्। इन्द्र। दर्ता। पुराम्। असि॥ हन्ता। दस्योः। मनोः। वृधः। पतिः। दिवः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शाश्वत पुरोंको तोड़ने वाले हैं, दस्युओंका संहार करने वाले हैं, मनुको बढ़ाने वाले हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ३

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

आ । इत् । ऊं इति । मध्वः । मदिन्ऽतरम् । सिञ्च । वा । अध्वर्यो इति । अन्धसः । एव । हि । वीरः । स्तवते । सदाऽवृधः ४

हे अध्वर्यो ! मधुसे भी अधिक मद करने वाले अन्नके भागसे इन इन्द्रदेवको तृप्त करो, यजमानको सदा बढ़ोतरी करने वाले वह इन्द्र स्तुति पाते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रं स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

इन्द्र । स्थातः । हरीणाम् । नकिः । ते । पूर्व्यऽस्तुतिम् ॥ उत् । आनंश । शवसा । न । भन्दना ॥ ५ ॥

हे हरि नामक घोड़ों पर स्थित होने वाले इन्द्र ! आपके पूर्व कर्मोंके कारण की जाने वाली स्तुतिको और कल्याणोंको कोई बलसे नहीं पासका है ॥ ५ ॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

तम् । वः । वाजानाम् । पतिम् । अहूमहि । श्रवस्यवः । अप्राऽयुभिः । यज्ञेभिः । ववृधेन्यम् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

अन्नको चाहने वाले हम, हविरूप अन्नके स्वामी इन्द्रका आह्वान करते हैं। यह इन्द्रदेव सावधानतापूर्वक किये हुए यज्ञों से बारम्बार बढ़ते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त (६८०)

दशाहस्य नवमेहनि "एतो न्विन्द्रं स्तवाम" इति स्वयस्तोत्रियो भवति। तदुक्तं वैताने। "नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति" इति [वै० ८. ४] ॥

दशाहके नवम दिनमें "एतो न्विन्द्रं स्तवाम" यह स्वयस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति" (वैतानसूत्र ८। ४.) ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

एतो इति । नु । इन्द्रम् । स्तवाम । सखायः । स्तोम्यम् । नरम् ॥ कृष्टीः । यः । विश्वाः । अभि । अस्ति । एकः । इत् ॥१॥

मित्ररूप हम इस ओर आनेके लिये इन्द्रकी स्तुति करते हैं, यह इन्द्र स्तुतिके पात्र हैं, नेता हैं, यह इन्द्र सकल कर्मफलोंको असाधारणरूपसे प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥

अगोऽरुधाय । गोऽइषे । द्युक्षाय । दस्म्यम् । वचः ॥ घृतात् । स्वादीयः । मधुनः । च । वोचत ॥ २ ॥

गौओंको न रोकने वाले, वाणीरूप अन्न वाले, दमकने वाले,

दर्शनीय इन्द्रके लिये हे स्तोताओं ! तुम घृत और शहदसे भी मधुर वचनका उच्चारण करो ॥ २ ॥

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यस्य । अमितानि । वीर्या । न । राधः । परिऽएतवे ॥ ज्योतिः । न । विश्वम् । अभि । अस्ति । दक्षिणा ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवमें कार्यको साधनेके लिये अमित वीर्य हैं और दमकती हुई दक्षिणा हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अट्ठाईसवाँ सूक्त समाप्त (६८१)

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

स्तुहि । इन्द्रम् । व्यश्वऽवत् । अनूर्मिम् । वाजिनम् । यमम् ॥ अर्यः । गयम् । मंहमानम् । वि । दाशुषे ॥ १ ॥

हे ऋत्विज ! घोड़ोंको छोड़कर यज्ञमें निश्चल भावसे विराजमान धनी और प्रशंसाके पात्र इन्द्रकी आप हविर्दाता यजमानके कल्याणके लिये स्तुति करिये ॥ १ ॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

एव । नूनम् । उप । स्तुहि । वैयश्व । दशमम् । नवम् ॥ सुऽविद्वांसम् । चर्कृत्यम् । चरणीनाम् ॥ २ ॥

हे वैयश्व ! आप सदा नवीन, दशम, परम विद्वान्, चरणियों का वारम्बार कर्तन करने वाले इन्द्रदेवकी स्तुति करिये ॥ २॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजंम् । अहंरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

वेत्थ । हि । निःऽऋतीनाम् । वज्रऽहस्त । परिऽवृजम् । अहःऽअहः । शुन्ध्युः । परिपदाम्ऽइव ॥ ३ ॥

पञ्चमेनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥
इति पञ्चमोनुवाकः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जैसे शोधक आदित्य प्रतिदिन परिपदों को (चारों ओर पतन करने वाली किरणें आदिको) जानते हैं, इसी प्रकार आप पीड़ा देनेवाली शक्तियोंके समूहको जानते हैं ३

पञ्चम अनुवाकमें उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त (६८२)
पञ्चम अनुवाक समाप्त

पृष्ठ्यषडहस्य षष्ठेहनि प्रातःसवनमाध्यंदिनयोर्द्वयोः सवनयोः प्राकृतीनां प्रस्थितयाज्यानां पुरस्तात् "वनोति हि" इत्याद्याः पारुच्छेप्याख्या ऋचः संबध्नाति । तदु उक्तं वैताने । "पृष्ठ्यषष्ठे वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः [२०. ६७] विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते [२०. ७२] इति पारुच्छेपीरुपदधाति द्वयोः सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्यानाम्" इति [वै० ६. १]॥

पृष्ठ्य षडहके छठे दिन प्रातः सवन और माध्यन्दिन दोनों सवनोंमें प्राकृती प्रस्थितयाज्याओंसे पहिले "वनोति हि" आदिक पारुच्छेप्या नामक ऋचाएँ पढ़ी जाती हैं । इसी बातको वैतान-सूत्रमें कहा है, कि-"पृष्ठ्यषष्ठे वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः (२० । ६७) विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते (२० । ७२)

इति पाकच्छेपीरुपदधाति द्वयोः सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्यानाम्" (वैतानसूत्र ६ । १)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृंतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥१॥

वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयम् । परीणसः । सुन्वानः । हि । स्म ।
यजति । अव । द्विषः । देवानाम् । अव । द्विषः ।
सुन्वानः । इत् । सिषासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः ।
सुन्वानाय । इन्द्रः । ददाति । आऽभुवम् । रयिम् । ददाति । आऽभुवम् ॥ १ ॥

सोमका अभिषव करने वाला पुरुष बहुतसे घरोंको प्राप्त करता है, सोमका अभिषव करता हुआ अपने शत्रुओंका अवयजन करता है,और देवशत्रुओंका अवयजन करता है। सोमका अभिषव करने वाला सहस्रों वस्तुओंका दान करना चाहता है, अन्नसे सम्पन्न रहता है, और शत्रुओंसे घिरा हुआ नहीं रहता है। अभिषव करने वालेके लिये इन्द्रदेव पृथ्वीभरका धन देते हैं १

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

अस्मासु तन्मरुतो यच्चं दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम्

मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौंस्यां । सना ।
भुवन् । द्युम्नानि । मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषुः ।
यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।
अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् ।
च । दुस्तरम् ॥ २ ॥

(हे मरुद्गणों !) आपके जो दमकते हुए पुरुषार्थमय तापक तेज हैं, वे हमारे अभिमुख न होवें, वे हमें जीर्ण न करें, वे हमें जीर्ण न करें आपका जो घोषके कारण अमर्त्य नव्य चायनीय बल है, उसको हममें स्थापित करो, उस शत्रुओंसे दुस्तर बल को हममें स्थापित करो ॥ २ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जात-
वेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः

अग्निम् । होतारम् । मन्ये । दास्वन्तम् । वसुम् । सूनुम् । सहसः ।
जातऽवेदसम् । विप्रम् । न । जातऽवेदसम् ।
यः । ऊर्ध्वया । सुऽअध्वरः । देवः । देवाच्या । कृपा ।

घृतस्य । विऽभ्राष्टिम् । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुह्वानस्य । सर्पिषः ॥ ३ ॥

अग्निदेवको मैं देवताओंका होता, धनका प्रदान करनेवाला, बलका अनुज, उत्पन्न होने वालोंको जाननेवाले विप्रकी समान जातवेदा मानता हूँ। यह अग्निदेव अपनी देवताओंको पहुँचने वाली समर्थ ऊँची लपटसे यज्ञको सुन्दर बनाते हैं और होमेहुए घृतकी दमकको और घृतकी विन्दुओंकी कामना करते हैं ॥३॥

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामंछुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।

आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥

यज्ञैः । सम्ऽमिश्लाः । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । यामन् । शुभ्रासः । अञ्जिषु । प्रियाः । उत ।

आऽसद्य । बर्हिः । भरतस्य । सूनवः । पोत्रात् । आ । सोमम् । पिबत । दिवः । नरः ॥ ४ ॥

हे भरण करने वाले इन्द्रके छोटे भाई मरुद्गणो ! तुम स्वर्गके नेता हो, तुम फलप्रदानके अवसर पर अपनी दीसती हुई पृषती नामक घोड़ियोंके द्वारा यज्ञोंमें आते हो, तुम प्रिय हो और शुभ्र हो, ऐसे आप कुशाओं पर बैठ कर पोत्रसे सोमका पान करो ४

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।

प्रति॑ वी॒हि प्रस्थि॑तं सो॒म्यं मधु॒ पिबाग्नी॑ध्रात् तव॑ भा॒गस्य॑ तृप्णुहि ॥ ५ ॥

आ । व॒क्षि॒ । दे॒वान् । इ॒ह । वि॒प्र॒ । यक्षि॑ । च॒ । उ॒शन् । हो॒तः॒ । नि । स॒द॒ । योनि॑षु । त्रि॒षु ।

प्रति॑ । वी॒हि॒ । प्रऽस्थि॑तम् । सो॒म्यम् । मधु॑ । पिब॑ । आग्नी॑ध्रात् । तव॑ । भा॒गस्य॑ । तृ॒प्णु॒हि॒ ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! आप इस यज्ञमें देवताओंको लाइये, और उनका पूजन करिये, हे कामयमान होतः ! आप तीनों स्थानोंमें विराजमान हूजिये, प्रस्थित भागको पहुँचानेके अनन्तर स्वयं भी भक्षण करिये, और आग्नीध्रसे सोम्य मधुका पान करिये, इस प्रकार अपने भागसे तृप्त हूजिये ॥ ५ ॥

ए॒ष स्य ते॑ त॒न्वो॑ नृम्ण॒वर्ध॑नः॒ सह॒ ओजः॑ प्र॒दिवि॑ बा॒ह्वोर्हि॒तः ।

तुभ्यं॑ सु॒तो म॑घव॒न् तुभ्य॒माभृ॑त॒स्त्वम॑स्य॒ ब्राह्म॑णा॒दा तृ॒पत् पि॑ब ॥ ६ ॥

ए॒षः । स्यः । ते॒ । त॒न्वः॑ । नृ॒म्ण॒ऽवर्ध॑नः । सहः॑ । ओजः॑ । प्र॒ऽदिवि॑ । बा॒ह्वोः । हि॒तः ।

तुभ्य॑म् । सु॒तः । म॒घ॒ऽव॒न् । तुभ्य॑म् । आऽभृ॑तः । त्वम् । अ॒स्य॒ । ब्राह्म॑णात् । आ । तृ॒पत् । पि॒ब॒ ॥ ६ ॥

हे मघवन् ! यह सोम आपके शरीरके बलको बढ़ाने वाला है, विजिगीषाके लिये आपकी भुजाओंमें दूसरोंको दबानेकी शक्ति और ओज भरा हुआ है, हे इन्द्र ! यह सोम आपके लिये अभिषुत हुआ है, आपके लिये ही पात्रमें भरा गया है आप ब्राह्मणके द्वारा तृप्ति पर्यन्त इसका पान करिये ॥ ६ ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥

यम् । ऊं इति । पूर्वम् । अहुवे । तम् । इदम् । हुवे । सः । इत् । ऊं इति । हव्यः । ददिः । यः । नाम । पत्यते ।

अध्वर्युऽभिः । प्रऽस्थितम् । सोम्यम् । मधु । पोत्रात् । सोमम् । द्रविणःऽदः । पिब । ऋतुऽभिः ॥ ७ ॥

इति षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं जिन इन्द्रदेवका पहिले आह्वान किया करता था, अब भी उनका ही आह्वान करता हूँ, यह वही हव्य दिया जारहा है, जो ऐश्वर्यसम्पन्न करता है, हे धनप्रद इन्द्र ! अध्वर्युओंके दिये हुए इस सोम्य मधुका समयानुसार पान करिये ॥ ७ ॥

छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६८३)

छन्दोमानां प्रथमेहनि प्रातःसवने "सुरूपकृत्नुमूतये" इति द्वादश ऋच आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । "सुरूपकृत्नुमूतय इति द्वादशर्चः" इति [वै० ६. ३] ॥

हमारे शत्रु भी हमारे सौभाग्यका बखान करें, हम इन्द्रके धन प्रदान करने पर दर्शनीय खेतियों वाले होवें ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

आ । ईम् । आशुम् । आशवे । भर । यज्ञऽश्रियम् । नृऽमादनम् ॥ पतयत् । मन्दयत्ऽसखम् ॥ ७ ॥

हे स्तोतः ! इन यज्ञकी शोभारूप, मनुष्योंको हर्षित करने वाले, मित्रोंको प्रसन्न करने वाले आशुकारी इन्द्रको आशके ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

अस्य । पीत्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । घनः । वृत्राणाम् । अभवः ॥ म । आवः । वाजेषु । वाजिनम् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! आप इसके (सोमको) पीकर आवरक शत्रुओंके घन हूजिये । और युद्धोंमें हमारे घोड़ेकी रक्षा करिये ॥८॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

तम् । त्वा । वाजेषु । वाजिनम् । वाजयामः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ धनानाम् । इन्द्र । सातये ॥ ९ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! हम आप यज्ञान्नसे सम्पन्नको यज्ञ वा संग्राममें आह्वान करते हैं। हे इन्द्र ! हम धनप्राप्तिके लिये संग्राम में वा यज्ञमें आपका आवाहन करते हैं ॥ ६ ॥

यो रायो॒ऽवनि॑र्म॒हान्त्सु॑पा॒रः सु॑न्व॒तः सखा॑। तस्मा॒ इन्द्रा॑य गायत ॥ १० ॥

यः। रायः। अवनिः। महान्। सुऽपारः। सुन्वतः। सखा॥ तस्मै। इन्द्राय। गायत ॥ १० ॥

जो इन्द्र धनके बड़े भारी रक्षक हैं, सुन्दरतासे पालन करने वाले हैं और सोमका अभिषव करने वालेके मित्र हैं, उन इन्द्र के लिये हे स्तोताओं ! तुम स्तुतिका गान करो ॥ १० ॥

आ त्वे॒ता नि षी॑द॒तेन्द्र॑म॒भि प्र गा॑यत। सखा॑यः॒ स्तोम॑वाहसः ॥ ११ ॥

आ। तु। आ। इत। नि। सीदत। इन्द्रम्। अभि। प्र। गायत॥ सखायः। स्तोमऽवाहसः ॥ ११ ॥

हे स्तोमका वहन करने वाले मित्ररूप स्तोताओं ! तुम आओ और इधर बैठो तथा इन्द्रका गान करो ॥ ११ ॥

पु॒रु॒तमं॑ पु॑रू॒णामीशा॑नं॒ वार्या॑णाम्। इन्द्रं॒ सोमे॒ सचा॑ सु॒ते ॥ १२ ॥

पुरुऽतमम्। पुरूणाम्। ईशानम्। वार्याणाम्। इन्द्रम्। सोमे। सचा। सुते ॥ १२ ॥

इति षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

परमविशाल, और बड़े २ बरछीयोंके स्वामी इन्द्रदेवको का अभिषव होनेके साथ ही (आह्वान करो) ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८४)

छन्दोमानां द्वितीयेहनि "स घा नो योग आ भुवत्" इति द्वात्रिंशतम् ऋच आवपते । तद् उक्तं वैताने । "स घा नो योग आ भुवदिति द्वात्रिंशतम्" इति [वै० ६. ३] ॥

छन्दोमोंके द्वितीय दिनमें "स घा नो योग आभवत्" इस द्वात्रिंशत्‌की ऋचाएँ पढ़ी जाती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"स घा नो योग आभुवदिति द्वात्रिंशतम्" (वैतान सूत्र ६ । ३) ॥

स घां नो योग् आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् । गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

सः । घ । नः । योगे । आ । भुवत् । सः । राये । सः । पुरम्ऽध्याम् ॥ गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥ १ ॥

पुरोंकी चिन्ताके अवसर पर वह इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट होते हैं, वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवें ॥ १ ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

यस्य । सम्ऽस्थे । न । वृण्वते । हरी इति । समत्ऽसु । शत्रवः ॥ तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ २ ॥

जिन इन्द्रदेवके स्थित होने पर संग्रामोंमें शत्रु इन्द्रके हरी

नामक घोड़ोंको नहीं घेरते हैं, उन इन्द्रदेवके लिये हे स्तोताओ! तुम स्तुतिका गान करो ॥ २ ॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥

सुतऽपाव्ने। सुताः। इमे। शुचयः। यन्ति। वीतये। सोमासः। दधिऽआशिरः ॥ ३ ॥

यह दधि पड़े, अभिषुत पवित्र सोम, अभिषुत सोमका पान करने वाले इन्द्रदेवके भक्षणके लिये जारहे हैं ॥ ३ ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥

त्वम्। सुतस्य। पीतये। सद्यः। वृद्धः। अजायथाः ॥ इन्द्र। ज्यैष्ठ्याय। सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥ ४ ॥

हे सुक्रतो इन्द्र! आप अभिषुत सोमका बड़ा पान करनेके लिये शीघ्र ही बड़े होजाते हैं ॥ ४ ॥

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥

आ। त्वा। विशन्तु। आशवः। सोमासः। इन्द्र। गिर्वणः ॥ शम्। ते। सन्तु। प्रऽचेतसे ॥ ५ ॥

हे स्तुतियोंसे संभजनीय इन्द्र! फुर्ती देने वाले सोम आपमें अभिमुख होकर प्रवेश करें। और आपके चित्तको शांति देने वाले होवें ॥ ५ ॥

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥

त्वाम् । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वाम् । उक्था । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वाम् । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ६ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! स्तोम आपको बढ़ाते हैं, उक्थ्य आपको बढ़ाते हैं और हमारी वाणियें आपको बढ़ावें ॥ ६ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

अक्षितऽऊतिः । सनेत् । इमम् । वाजम् । इन्द्रः । सहस्रिणम् ॥ यस्मिन् । विश्वानि । पौंस्या ॥ ७ ॥

जिसमें सैंकड़ों प्रकारके सहस्रों पुरुषार्थ भरे हुए हैं उस यज्ञ का अक्षुण्ण रक्षा वाले इन्द्रदेव सेवन करें ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

मा । नः । मर्ताः । अभि । द्रुहन् । तनूनाम् । इन्द्र । गिर्वणः ॥ ईशानः । यवय । वधम् ॥ ८ ॥

हे स्तुतियोंसे संभजनीय इन्द्र ! मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें आप हमारे ईश्वर हैं, अतः हमारे वधनिमित्तको दूर करिये ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति॑ ब्र॒ध्नम॑रु॒षं चर॑न्तं॒ परि॑ त॒स्थुषः॑ । रोच॑न्ते

रोच॒ना दि॒वि ॥ ९ ॥

युञ्जन्ति॑ । ब्र॒ध्नम् । अ॒रु॒षम् । चर॑न्तम् । परि॑ । त॒स्थुषः॑ ॥ रोच॑न्ते ।

रोच॒ना । दि॒वि ॥ ९ ॥

महान्, दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए इन्द्रके रथमें हरि नामक अश्व जुतते हैं और वह दमकते हुए अश्व द्युलोकमें दमकते हैं ॥ ९ ॥

युञ्जन्त्य॑स्य॒ काम्या॒ हरी॒ विप॑क्षसा॒ रथे॑ । शोणा॑ धृ॒ष्णू

नृ॒वाह॑सा ॥ १० ॥

युञ्जन्ति॑ । अ॒स्य॒ । काम्या॑ । हरी॒ इति॑ । विऽप॑क्षसा । रथे॑ ॥

शोणा॑ । धृ॒ष्णू इति॑ । नृ॒ऽवाह॑सा ॥ १० ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते हैं। ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करवटोंमें रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्यों को सवारी देने वाले हैं ॥ १० ॥

के॒तुं कृ॒ण्वन्न॑के॒तवे॒ पेशो॑ मर्या अपे॒शसे॑ । समु॒षद्भि॑-

रजायथा ॥ ११ ॥

के॒तुम् । कृ॒ण्वन् । अ॒के॒तवे॑ । पेशः॑ । म॒र्याः॒ । अ॒पे॒शसे॑ ॥ सम् ।

उ॒षत्ऽभिः॑ । अ॒जा॒य॒थाः॒ ॥ ११ ॥

हे मरणधर्मसहित मनुष्यों! अज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने

वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, या अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

आत् । अहः । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भऽत्वम् । आऽईरिरे ॥ दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इति षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर ये मरुद्गण स्वधा देने वाले गर्भत्वको प्राप्त होजाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१८५)

छन्दोमानां तृतीयेहनि "वीलु चिदारुजत्नुभिः" इति षट्त्रिंशतम् ऋचः आवापस्थाने आवपते। तदु उक्तं वैताने। "वीलु चिदारुजत्नुभिरिति षट्त्रिंशतम् आवपते" इति [वै० ६, ३]॥

छन्दोमके तृतीय दिनमें "वीलु चिदारुजत्नुभिः" इस षट्त्रिंशत्को ऋचाओंके आवापस्थानमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥

वीलु । चित् । आरुजत्नुऽभिः । गुहा । चित् । इन्द्र । वह्निऽभिः ॥ अविन्दः । उस्रियाः । अनु ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आपने अपनी मकाशक भेदन करने वाली शक्तियों से, उत्सर्पणशील उषाके अनन्तर ही गुफामें स्थित धनको प्राप्त किया है ॥ १ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद् वसुं गिरः । महामनूपत श्रुतम् ॥ २ ॥

देवऽयन्तः । यथा । मतिम् । अच्छ । विदत्ऽवसुम् । गिरः । महाम् । अनूषत । श्रुतम् ॥ २ ॥

हे स्तुतिवाणियों ! जिस प्रकार हम देवताओंकी कामना करने वाले अपनी मतिको उनके अभिमुख कर सकें, उन प्रसिद्ध और महान् इन्द्रकी तुम स्तुति करो ॥ २ ॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दृक्षसे । सम्ऽजग्मानः । अबिभ्युषा ॥ मन्दू इति । समानऽवर्चसा ॥ ३ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए सदा ही देखे जाते हैं, मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रमुदित होते है और आप दोनोंकी दीप्ति समान है ॥३॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति ॥ गणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ ४ ॥

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यह शोभा पाता है ॥ ४ ॥

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥

अतः। परिऽज्मन्। आ। गहि। दिवः। वा। रोचनात्। अधि॥
सम्। अस्मिन्। ऋञ्जते। गिरः ॥ ५ ॥

हे व्यापनशील इन्द्र ! आप इस भूलोकसे वा रोचनशील द्युलोकसे आइये, इन इन्द्रदेवमें वाणियें संयुक्त होती हैं ॥ ५ ॥

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥ ६ ॥

इतः। वा। सातिम्। ईमहे। दिवः। वा। पार्थिवात्। अधि।
इन्द्रम्। महः। वा। रजसः ॥ ६ ॥

हम इन्द्रदेवकी प्राप्तिको वह इस पार्थिव लोकमें हों तो इस लोकसे, स्वर्गमें हों तो स्वर्गसे, महर्लोकमें हों तो महर्लोकमें चाहते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणी रनूषत ॥ ७ ॥

इन्द्रम्। इत्। गाथिनः। बृहत्। इन्द्रम्। अर्केभिः। अर्किणः॥
इन्द्रम्। वाणीः। अनूषत ॥ ७ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा विशाल इन्द्रका ही पूजन करते हैं और वाणियें भी इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वंचोयुजा । इन्द्रों वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । इत् । हर्योः । सचा । सम्ऽमिश्लः । आ । वचःऽयुजा ॥ इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथ में संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि । गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेवने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥ ९ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥

इन्द्र । वाजेषु । नः । अव । सहस्रऽप्रधनेषु । च ॥ उग्रः । उग्राभिः । ऊतिऽभिः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! सहस्रों उत्कृष्ट धन वाले संग्राममें आप रक्षा करिये, आप उग्र हैं अतः अपनी प्रचण्ड ... हमारी रक्षा करिये ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥

इन्द्रम् । वयम् । महाऽधने । इन्द्रम् । अर्भे । हवामहे । युजम् । वृत्रेषु । वज्रिणम् ॥ ११ ॥

हम महाधनप्राप्तिके अवसर पर वा स्वल्पप्राप्तिके समय इन्द्र का आह्वान करते हैं, वह आवरक शत्रुओं पर वज्रको संयुक्त करने वाले हैं ॥ ११ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ १२ ॥

सः । नः । वृषन् । अमुम् । चरुम् । सत्राऽदावन् । अप । वृधि ॥ अस्मभ्यम् । अप्रतिऽस्कुतः ॥ १२ ॥

हे फलोंकी वर्षा करने वाले, और सत्य दान देने वाले इन्द्र ! आप इस चरुका सेवन करिये और किसीसे न हटने वाले आप हमको बढ़ाइये ॥ १२ ॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

तुञ्जेऽतुञ्जे । ये । उत्ऽतरे । स्तोमाः । इन्द्रस्य । वज्रिणः ॥ न । विन्धे । अस्य । सुऽस्तुतिम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दानके अवसर पर, उत्तरोत्तर दानमें परितुष्ट हुआ [वज्रधारी इन्द्रके जिन २ स्तोत्रोंका विचार करता हूँ, उनकी समाप्तिको ही मैं नहीं पाता ॥ १३ ॥

यूथा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥

यूथा । यूथाऽइव । वंसगः । कृष्टीः । इयर्ति । ओजसा ॥ ईशानः । अप्रतिऽस्कुतः ॥ १४ ॥

आप यूथपति वननीयगति वृषभके खेतिर्गोको प्रेरित करने की समान बलसे फलोंको प्रेरित करते हैं, आप ईशान हैं, और अप्रतिष्कृत हैं ॥ १४ ॥

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

यः । एकः । चर्षणीनाम् । वसूनाम् । इरज्यति ॥ इन्द्रः । पञ्च । क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

जो इन्द्रदेव अद्वितीय रूपमें मनुष्यों और धनोंके स्वामी हैं और यह इन्द्रदेव पञ्च क्षितियोंके स्वामी हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥

इन्द्रम् । वः । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् । अस्तु । केवलः ॥ १६ ॥

हम चारों ओरके प्राणियोंकी ओरसे (हटा कर) … आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १६ ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥

आ। इन्द्र। सानसिम्। रयिम्। सऽजित्वानम्। सदाऽसहम्। वर्षिष्ठम्। ऊतये। भर ॥ १७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रीति देने वाले, धनरूप, सजित्वा, सदासह और फलोंकी वर्षा करने वाले अपने बलको हमारी रक्षा करनेके लिये धारण करिये ॥ १७ ॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥

नि। येन। मुष्टिऽहत्यया। नि। वृत्रा। रुणधामहै। त्वाऽऊतासः। नि। अर्वता ॥ १८ ॥

आपकी रक्षा वाले हम घोड़े वाले होकर आवरक एक शत्रुओं को मुक्कोंकी मारसे मार डालें ॥ १८ ॥

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥

इन्द्र। त्वाऽऊतासः। आ। वयम्। वज्रम्। घना। ददीमहि। जयेम। सम्। युधि। स्पृधः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! आपकी रक्षा वाले हम वज्रको प्रचण्डरूपसे ग्रहण

करें और स्पर्धा करने वालोंको युद्धमें जीत लें ॥ १९ ॥

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

वयम् । शूरेभिः । अस्तृऽभिः । इन्द्र । त्वया । युजा । वयम् ॥ ससह्याम । पृतन्यतः ॥ २० ॥

इति षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपसे और अहिंसित शूरोंसे, सम्पन्न होकर, सेना लेकर अपने ऊपर चढ़ने वाले शत्रुओंको दबावें २०

छठे अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१८६)

"सं चोदय चित्रमर्वाक्" [२०. ७१. ११] इत्यस्य विनियोगः "प्रणेतारं वस्यो अच्छा" [२०. ४६] इत्यनेन सह उक्तः ॥

"सं चोदय चित्रमर्वाक्" (२० । ७१ । ११ इसका विनियोग "प्रणेतारं वस्यो अच्छा" (२० । ४६) के साथ कह दिया है

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

महान् । इन्द्रः । परः । च । नु । महिऽत्वम् । अस्तु । वज्रिणे ॥ द्यौः । न । प्रथिना । शवः ॥ १ ॥

इन्द्रदेव महान् हैं और उत्कृष्ट हैं उन इन्द्रदेवके लिये महत्त्व हो उनका बल द्युलोककी समान विस्तृत होवे ॥ १ ॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥

समुऽमोहे । वा । ये । आशत । नरः । तोकस्य । सनितौ ।

विप्रासः । वा । धियाऽयवः ॥ २ ॥

जो बुद्धि चाहने वाले मेधावी पुरुष हैं, वे नेता प्रेमपात्र युद्ध में पुत्रके साथ भी युद्धमें व्याप्त होजाते हैं ॥ २ ॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥

यः । कुक्षिः । सोमऽपातमः । समुद्रःऽइव । पिन्वते ॥ उर्वीः । आपः । न । काकुदः ॥ ३ ॥

जो सोमका पान करने वाले इन्द्रदेवकी कुक्षि है वह ककुद वाले वृषभकी समान और विशाल जल वाले समुद्रकी समान बढ़ती है ॥ ३ ॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृता । विऽरप्शी । गोऽमती । मही ॥ पक्वा । शाखा । न । दाशुषे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर गोप्रदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करने वाले यजमानको पक्व शाखाकी समान (फलप्रदान करने वाली है ॥४

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

नरः । हि । ते । विऽभूतयः । ऊतयः । इन्द्र । माऽवते ॥ सद्यः ।

चित् । सन्ति । दाशुषे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्षक विभूतियें, हवि देने वाले यजमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

एव । हि । अस्य । काम्या । स्तोमः । उक्थम् । च । शंस्या ॥ इन्द्राय । सोमऽपीतये ॥ ६ ॥

इन्द्रको सोमका पान कराते समय स्तोम उक्थ और शंस्या (नामक स्तुतियें) इन्द्रदेवको कमनीय होती हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

इन्द्र । आ । इहि । मत्सि । अन्धसः । विश्वेभिः । सोमपर्वऽभिः ॥ महान् । अभिष्टिः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आइये और सकल सोमपर्वोंसे तथा सोमरूपी अन्नसे आनन्दमें भरिये, आपकी अभिष्टि ओजसे बड़ी है ॥७॥

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

आ । ईम् । एनम् । सृजत । सुते । मन्दिम् । इन्द्राय । मन्दिने ॥ चक्रिम् । विश्वानि । चक्रये ॥ ८ ॥

हे अध्वर्युओं ! छिपे हुए ज्वयपात्रोंसे और आप गोमकी रचना करो, यह सोम अभिषुत होने पर प्रसन्नता मय इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है संस्कृत कर्मोंसे सम्पन्न करते हुए इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है ॥ ८ ॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥

मत्स्व । सुऽशिप्र । मन्दिऽभिः । स्तोमेभिः । विश्वऽचर्षणे सचा । एषु । सवनेषु । आ ॥ ९ ॥

हे सबके साक्षी सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ! आप सवनोंमें साथ ही साथ इन आनन्दमद स्तोत्रोंसे भी हर्षमें भरिये ॥ ९ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

असृग्रम् । इन्द्र । ते । गिरः । प्रति । त्वाम् । उत् । अहासत ॥ अजोषाः । वृषभम् । पतिम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! प्रीति न करने वाली स्त्रियें जैसे वृषभ पतिको त्याग देती हैं, क्या इसी प्रकार स्तुतियें आपको त्यागती हैं ! नहीं ॥ १० ॥

सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

म् । चोदय । चित्रम् । अर्वाक् । राधः । इन्द्र । वरेण्यम् ॥

असत् । इत् । ते । विऽभु । प्रऽभु ॥ ११ ॥

हे इन्द्रदेव ! कमनीय धनको हमारी ओर प्रेरित करिये, जो आपका प्रभु वा विभु धन हो उसको प्रेरित करिये ॥ ११ ॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥

अस्मान् । सु । तत्र । चोदय । इन्द्र । राये । रभस्वतः ॥ तुविऽद्युम्न । यशस्वतः ॥ १२ ॥

हे परम दमकने वाले इन्द्र ! आप हमको यशस्वी महान् पुरुषके धनके लिये प्रेरित करिये ॥ १२ ॥

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥

सम् । गोऽमत् । इन्द्र । वाजऽवत् । अस्मे इति । पृथु । श्रवः । बृहत् ॥ विश्वऽआयुः । धेहि । अक्षितम् ॥ १३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमको गौओंसे, यज्ञान्नसे सम्पन्न विशाल यश प्रदान करिये और हमको क्षीणतारहित विशाल आयु प्रदान करिये ॥ १३ ॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥

अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । सहस्रऽसातमम् ।

इन्द्र । ताः । रथिनीः । इषः ॥ १४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हममें सहस्रोंसे सेवनीय विशाल दमकते... को प्रदान करिये और रथिनी इषाओंको प्रदान करिये ॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्तं ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥

वसोः । इन्द्रम् । वसुऽपतिम् । गीःऽभिः । गृणन्तः । ऋग्मियम् ।

होम । गन्तारम् । ऊतये ॥ १५ ॥

स्तुतिमयी वाणियोंसे स्तुति करते हुए इस धनके स्वामी, वसुपति, ऋग्मिय और होमको प्राप्त होने वाले इन्द्रकी रक्षाकी रक्षाकी पूजा करते हैं ॥ १५ ॥

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥

सुतेऽसुते । निऽओकसे । बृहत् । बृहते । आ । इत् । अरिः ॥

इन्द्राय । शूषम् । अर्चति ॥ १६ ॥

षष्ठेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति षष्ठोनुवाकः ॥

न्योकसमें बृहत् इन्द्रके लिये प्रत्येक बार सोमका अभिषव होने पर अरि इन्द्रके बलकी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

छठे अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६८७)

छठा अनुवाक समाप्त

पृष्ठ्यषडहस्य षष्ठेऽहनि "विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते" इत्यस्य विनियोगः "वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः" [२०, ६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

पृष्ठ्यषडहके छठे दिन "विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते" इसका विनियोग "वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः" (२० । ६७) के साथ कह दिया है।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः

पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः १

विश्वेषु । हि । त्वा । सवनेषु । तुञ्जते । समानम् । एकम् । वृषऽमण्यवः । पृथक् । स्वरिति स्वः । सनिष्यवः । पृथक् ।

तम् । त्वा । नावम् । न । पर्षणिम् । शूषस्य । धुरि । धीमहि ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । चितयन्त । आयवः । स्तोमेभिः । इन्द्रम् । आयवः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथक् २ स्वर्गको चाहने वाले फलवर्षाके लिये दीनता करने वाले, सब सवनोंमें केवल एक आपसे ही दान माँगते हैं। हम नौकारूप, अन्नके पूले वाले आपको बलके बोझ में नियुक्त करते हैं। यज्ञोंसे इन्द्रको सबोधित करते हुए हम लोकवासी स्तोत्रोंसे (इन्द्रकी स्तुति करते हैं) ॥ १ ॥

वि त्वां ततस्रे मिथुना अंवस्यवो व्रजस्यं साता गव्यं-
स्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्तां समूहंसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र स- ७॥

वि । त्वा । ततस्रे । मिथुनाः । अवस्यवः । व्रजस्य । साता ।
गव्यस्य । निःऽसृजः । सक्षन्तः । इन्द्र । निःऽसृजः ।
यत् । गव्यन्ता । द्वा । जना । स्वः । यन्ता । सम्ऽऊहसि ।
आविः । करिक्रत् । वृषणम् । सचाऽभुवम् । वज्रम् । इन्द्र । सचाऽभुवम्

अन्न चाहने वाले मिथुन, गव्य व्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंको भली प्रकार पहिचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायक रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो
हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिं चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः३

उतो इति । नः । अस्याः । उषसः । जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि ।
हविषः । हवीमऽभिः । स्वःऽसाता । हवीमऽभिः ।

...व् । इन्द्र । हन्तवे । भुवः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि ।

...ा । मे । अस्य । वेधसः । नवीयसः । मन्म । श्रुधि । नवीयसः

इति सप्तमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सूर्यकी ज्ञापिका इस उषाकी हविको हम स्वर्गका उपभोग करनेके लिये हवन करते हैं, हे वर्षक इन्द्र ! आप संग्राम करने वालोंको नष्ट करनेके लिये अपने वज्रको उठाते हैं, आप इस नवीन स्रष्टा (मेरे) मननीय स्तोत्रको सुनिये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६८८)

पृष्ठ्यस्य चतुर्थेहनि "तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा" इति पुरस्तात्संपातसूक्तात् षड्च आवपते। तासां प्रथमास्तिस्र ऋचः अर्धर्चशः शंसति । तद्व उक्तं वैताने । "चतुर्थे तुभ्यदिमा सवना शूर विश्वेति षट् पुरस्तात्संपाताः । तिस्रोऽर्धर्चशः" इति [वै० ६. २]

पृष्ठ्यके चौथे दिन "तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा" इसकी छः ऋचाओंको सम्पातसूक्तसे पहिले पढ़े । इनमें पहिली तीन ऋचाओंको अर्धर्चशः पढे । इसी बातको वैतानसूत्र ६ । २ में कहा है, कि–"चतुर्थे तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वेति षट् पुरस्तात् सम्पाताः" ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

तुभ्य । इत् । इमा । सवना । शूर । विश्वा । तुभ्यम् । ब्रह्माणि । वर्धना । कृणोमि । त्वम् । नृऽभिः । हव्यः । विश्वधा । असि १

हे शूर ! यह सब सवन आपके ही लिये हैं । मैं आपके लिये

ही इन मन्त्रोंको वर्धक करता हूँ। आप मनुष्योंसे आहुति पाने के पात्र हैं और आप सबको पुष्ट करने वाले हैं ॥ १ ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

नु। चित्। नु। ते। मन्यमानस्य। दस्म। उत्। अश्नुवन्ति।
महिमानम्। उग्र। न। वीर्यम्। इन्द्र। ते। न। राधः॥२॥

हे अभिमान रखने वाले उग्र इन्द्र! आपकी महिमा दुःखरूपले वीर्य और धनको अन्य नहीं पासकते ॥ २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

प्र। वः। महे। महिऽवृधे। भरध्वम्। प्रऽचेतसे। प्र। सुऽमतिम्।
कृणुध्वम्। विशः। पूर्वीः। प्र। चर। चर्षणिऽप्राः॥ ३ ॥

हे याजकों! तुम महत्त्व पानेके लिये महिवृध् प्रचेतस इन्द्रको हविमे भरण करो, सुमति करो, हे मनुष्योंको अभिमत फलसे पूर्ण करने वाले! आप प्रकृष्टरूपसे हविका भक्षण करिये ॥३॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि
सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥

यदा । वज्रम् । हिरण्यम् । इत् । अथ । रथम् । हरी इति । यम् ।

अस्य । वहतः । वि । । सूरिऽभिः ।

आ । तिष्ठति । मघऽवा । सनऽश्रुतः । इन्द्रः । वाजस्य । दीर्घ-

ऽश्रवसः । पतिः ॥ ४ ॥

जब सबको वशमें रखने वाले इन्द्रके हरी नामक अश्व सुवर्णमय वज्रको और रथको लगामोंसे खेंचने लगते हैं, तब तपसे प्रसिद्ध पशान्न और विशाल कीर्तिके स्वामी मघवा इन्द्र रथ पर अधिष्ठित होते हैं ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभिः प्रुष्णुते ।

अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

सो इति । चित् । नु । वृष्टिः । यूथ्या । स्वा । सचा । इन्द्रः ।

श्मश्रूणि । हरिता । अभि । प्रुष्णुते ।

अव । वेति । सुऽक्षयम् । सुते । मधु । उत् । इत् । धूनोति ।

वातः । यथा । वनम् ॥ ५ ॥

बड़ी भारी वृष्टि इन्द्रकी अपनी ही है, और वह सहायक इन्द्र सोमलताओंसे अपनी मूँछोंको स्नान करा देते हैं, जैसे वायु वनको कँपाता है, इसी प्रकार वह सोमका अभिषव होने पर घर घर आते हैं और मधुको कंपित करते हैं ॥ ५ ॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान। तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥

यः । वाचा । विऽवाचः । मृध्रऽवाचः । पुरु । सहस्रा । अशिवा । जघान ।

तत्ऽतत् । इत् । अस्य । पौंस्यम् । गृणीमसि । पिताऽइव । यः । तविषीम् । ववृधे । शवः ॥ ६ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जो इन्द्रदेव विकृत बोलने वालोंको अपनी वाणियोंसे कोमल वाणी वाले कर देते हैं, सहस्रों अशुभकारियोंको मार डालते हैं, इन्द्रदेवके उन २ पुरुषार्थोंकी हम स्तुति करते हैं, जो पिताकी समान महान् बलको बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८९)

पृष्ठ्यस्य पञ्चमेऽहनि पुरस्तात् संपातात् पङ्क्तिच्छन्दस्कम् "यच्चिद्धि सत्य सोमपाः" इति सूक्तम् आवपते । तस्य शंसनधर्ममपि सूत्रकार आह । तद् उक्तं वैताने । "पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति पाङ्क्तं सप्तर्चम् । द्वौ द्वाववसाय पञ्चमं सन्तनोति । अयं वावसाय द्वयम्" इति [वै० ६. २] ॥ अस्य अर्थः पाङ्क्तस्य एकैकस्य द्वौ द्वौ पादौ संहतौ अवसाय अर्धर्चेष्वस्यन्तत् पञ्चमं पादं प्रणवेनोपसंतनोति संबध्नाति । पादत्रयं संहतं वा अवसाय अन्त्यपादद्वयं संहतं प्रणवेनोपसंतनोति इति ॥

पृष्ठ्यके पञ्चम दिनमें सम्पातसे पहिले पंक्ति छन्द वाले

"यच्चिद्धि सत्य सोमपाः" इस सूक्तको पढ़े। इसके शंसनधर्म को भी सूत्रकारने कहा है, कि–"पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति पांक्तं सप्तर्चम्। द्वौ द्वाववसाय पञ्चमं सन्तनोति। त्रयं वाऽवसाय द्वयम्" (वैतानसूत्र ६। २) इसका अर्थ यह है, कि—पांक्तयके एक २ मन्त्रके दो दो मिले हुए पादोंका अवमान करके अर्धर्चशस्यकी समान प्रणवसे उपसन्तान करता हुआ संपंथन करे। वा तीनों संहत पादोंका अवसान करके अन्तिम मिले हुए दो पादोंको प्रणवसे उपसन्तान करे।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

यत्। चित्। हि। सत्य। सोमऽपाः। अनाशस्ताःऽइव। स्मसि। आ। तु। नः। इन्द्र। शंसय। गोषु। अश्वेषु। शुभ्रिषु। सहस्रेषु। तुविऽमघ ॥ १ ॥

हे सोमका पान करने वाले सत्य इन्द्र! आप अनाशस्ता ही हैं, हे बहुधन इन्द्र! आप हमारी सहस्रों गौओंमें घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें अनाशस्तत्वको कहिये ॥ १ ॥

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना। आ तू० २

शिप्रिन्। वाजानाम्। पते। शचीऽवः। तव। दंसना। ० २

हे सुन्दर ठोड़ी वाले धनोंके स्वामी शक्तिपति इन्द्र! शत्रुओं को डसनेकी शक्ति आपकी है, हे बहुधन इन्द्र उसको आप हमारे सहस्रों गौ घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें कहिये ॥ २ ॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने । आ तू० ।

नि । स्वापय । मिथुऽदृशा । सस्ताम् । अबुध्यमाने । इति ।० ३

दोनों नेत्रोंसे आप सुलाइये, अबुध्यमान होकर दोनों नेत्र सोवें, हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौओंमें घोड़ोंमें और पवित्र सहस्रों प्राणियोंमें निद्राको प्रदान करिये ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः । आ तू० ४

ससन्तु । त्या । अरातयः । बोधन्तु । शूर । रातयः । ॥ ४ ॥

वे शत्रु निद्राके आधीन होजावें, हे शूर ! धन जागृत होजावें, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे सहस्रों घोड़े गौ और पवित्र प्राणियोंमें धनको कहिये ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । आ तू० ५

सम् । इन्द्र । गर्दभम् । मृण । नुवन्तम् । पापया । अमुया ।०।५

हे इन्द्र ! इस पापवृत्तिसे खदेड़ते हुए गधेका आप संहार करिये और हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे घोड़े आदिमें संहारक शक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि आ तू० ६

पताति । कुण्डृणाच्या । दूरम् । वातः । वनात् । अधि ।० ।६।

कुण्डृणाचीके द्वारा वायु वनसे दूर जाता है हे बहुधन इंद्र ! आप हमारी गौ घोड़े और सहस्रों पवित्र प्राणियोंमें कुण्डृणाची कहिये ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

सर्वम् । परिऽक्रोशम् । जहि । जम्भय । कृकदाश्वम् ।

आ । तु । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप सब परिक्रोशको दूर करिये, और कृकदाश्व का नाश करिये, और हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौ घोड़े और पवित्र प्राणियोंमेंसे परिक्रोशको हटाइये ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६९०)

पृष्ठयस्य षष्ठेहनि पुरस्तात् संपातात् "वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः" इति तिस्रः सप्तपदा आवपते सूत्रोक्तप्रकारेण प्रणवेनोपसंतनोति च । तद् उक्तं वैताने । "षष्ठे वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यव इति । सप्तपदानामेकैकमवसाय द्वयं संतनोति । द्वयमवसाय द्वयम्" इति [वै० ६. २]॥ अस्य अर्थः । सप्तपदानां तिसृणामृचाम् एकैकस्यामृचि एकैकं पदम् अवसाय पदत्रयं प्रणवेनोपसंतनोति । ततः परं पादद्वयमवसाय अपरं पादद्वयं प्रणवेनोपसंतनोति ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन सम्पातसे पहिले "वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः" इन तीन सप्तपदोंका आवपन करे और सूत्रोक्तरीति से प्रणवसे उपसन्तान भी करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है । "षष्ठे वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यव इति । सप्तपदानामेकैकमवसाय द्वयं सन्तनोति। द्वयमवसाय द्वयम् ।" (वैतानसूत्र६ । २)

इसका अर्थ यह है, कि-सप्तपदोंकी तीन ऋचाओंमेंसे एक एक ऋचामें एक २ पदका अवसान करके तीन पादोंका प्रणवसे उपसंतान करे।

त्रि त्वां ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजं।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्

वि। त्वा। ततस्रे। मिथुनाः। अवस्यवः। व्रजस्य। साता। गव्यस्य। निःसृजः। सक्षन्तः। इन्द्र। निःऽसृजः।
यत्। गव्यन्ता। द्वा। जना। स्वः। यन्ता। सम्ऽऊहसि।
आविः। करिक्रत्। वृषणम्। सचाऽभुवम्। वज्रम्। इन्द्र। सचाऽभुवम् ॥ १ ॥

अन्न चाहने वाले मिथुन, गव्य व्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंको भली प्रकार पहिचानते हैं, हे इन्द्र! उस समय आप अपने वर्षक सहायकरूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।

महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पुरवः । पुरः । यत् । इन्द्र । शारदीः । अवऽअतिरः । ससहानः । अवऽअतिरः । शासः । तम् । इन्द्र । मर्त्यम् । अयज्युम् । शवसः । पते । महीम् । अमुष्णाः । पृथिवीम् । इमाः । अपः । मन्दसानः । इमाः । अपः ॥ २ ॥

मनुष्य इन इन्द्रके वीर्योंको जानते हैं, कि-जो यह शरद् ऋतु का वस्तुओंमें अवतीर्ण होते हैं यह शत्रुओंको बारम्बार दबाते हुए अवतीर्ण होते हैं, हे बलके अधिष्ठात्री देवता इन्द्र! जो मरण-धर्मा पुरुष आपका यजन नहीं करता है, उसका आप शासन करिये, और इस विशालपृथिवीको और अमुष्ण जलोंको हर्षित करिये ॥ २ ॥

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत

आत् । इत् । ते । अस्य । वीर्यस्य । चर्किरन् । मदेषु । वृषन् । उशिजः । यत् । आविथ । सखिऽयतः । यत् । आविथ । चकर्थ । कारम् । एभ्यः । पृतनासु । प्रऽवन्तवे ।

ते । अन्याम्ऽअन्याम् । नद्यम् । सनिष्णत । श्रवस्यन्तः । सनिष्णत ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे वृषन् ! अब हम आपके वीर्यको (कहते हैं, कि-) हे कांतिमय जलों ! तुम इन्द्रदेवको मद होने पर रक्षा करते हो, सखिभाव रखने वालोंकी रक्षा करते हो, और पृतनाओंमें सेवन करने के लिये कृत्योंको करते हो, तुम दूसरी २ नदियोंका आश्रय लो, अन्न देते हुए स्नान कराओ ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६९१)

पृष्ठ्यस्य षष्ठेहन्येव पूर्वोक्तसप्तपदाभ्योनन्तरं पुरस्तात् संपातात् "वने न वा यो न्यधायि चाकन्" इत्यष्टर्चम् आवपते । तद् उक्तं वैताने । "वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च" इति [वै० ६. २]॥

तथा छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरह्नोः माध्यंदिने सवने उपरिष्टात् संपाताद् अष्टर्चम् [२०. ७६] "आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी" [२०. ७७] इति सूक्तं चावपते । तद् उक्तं वैताने । "उत्तरयोरष्टर्चम् आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति चावपते" इति [वै० ६. ३]॥ "वने न वा यो न्यधायि चाकन्" इत्यस्य अष्टर्चम् इति संज्ञा ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन ही पूर्वोक्त सप्तपदाओंके अनन्तर सम्पातसे पहिले "वने न वा यो न्यधायि चाकन्" इस आठ ऋचा वाले सूक्तको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च" (वैतानसूत्र ६।२)

तथा छन्दोमोंके द्वितीय तृतीय दिनोंमें माध्यंदिन सवनमें संपातसे पहिले आठ ऋचा वाले (२० । ७६) को और "आ

सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी" इस ।(२० । ७७) सूक्तको भी पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"उत्तरयोरछावाकम् आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति चावपते" (वैतानसूत्र ६।१२) "वने न वा यो न्यधायि चाकन्" इसकी अपूर्व संज्ञा है ।

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

वने । न । वा । यः । नि । अधायि । चाकन् । शुचिः । वाम् । स्तोमः । भुरणौ । अजीगरिति ।
यस्य । इत् । इन्द्रः । पुरुऽदिनेषु । होता । नृणाम् । नर्यः । नृऽतमः । क्षपाऽवान् ॥ १ ॥

हे देवताओंका भरण करने वाले सुरूप अश्विनीकुमारो ! जो यह स्तोम हममें निहित है, यह दोषरहित है और पक्षिपुत्रके वृक्ष मेंसे देखनेकी समान इन्द्रकी कामना करता है (यह वह स्तोम है, कि–) जिसके इन्द्र बहुत दिनोंसे आहाता थे, कि–इसमें कोई मेरी स्तुति करे । वह इन्द्रदेव मनुष्योंमें भी मनुष्यतम हैं अर्थात् शूरोंमें भी शूर हैं, और सोमका भाग पाने वाले हैं, यह स्तोम उन ही की ओर जाता है ॥ १ ॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।

अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २ ॥

प्र । ते । अस्याः । उषसः । प्र । अपरस्याः । नृतौ । स्याम । नृऽतमस्य । नृणाम् ।

अनु । त्रिऽशोकः । शतम् । आ । अवहत् । नॄन् । कुत्सेन । रथः । यः । असत् । ससऽवान् ॥ २ ॥

हम इस दूसरी उषाके पारको प्राप्त होवें, और शूरोंमें शूर इन्द्रकी नृतिमें रहें, त्रिशोक नामक ऋषि मनुष्योंको सैंकड़ों उषाओं को प्राप्त करा चुके हैं, जो संसाररूपी रथ है वह कुत्स ऋषि के द्वारा अन्न वाला हुआ है ॥ २ ॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

कः । ते । मदः । इन्द्र । रन्त्यः । भूत् । दुरः । गिरः । अभि । उग्रः । वि । धाव ।

कत् । वाहः । अर्वाक् । उप । मा । मनीषा । आ । त्वा । शक्याम् । उपऽमम् । राधः । अन्नैः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! कौनसा हर्षप्रद स्तोम आपको प्रसन्न करता हुआ हमारे लिये दाता होसकता है, हे उग्र ! आप स्तोत्ररूप वाणियों की ओर दौड़िये, कौनसा अश्व बुद्धिसे आपको मेरे पास लावेगा आप उपमाके योग्यको मैं अन्नोंसे (हवियोंसे) साध सकूँगा ३

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥

कत् । ऊँ इति । द्युम्नम् । इन्द्र । त्वाऽवतः । नॄन् । कया । धिया । करसे । कत् । नः । आ । अगन् ।
मित्रः । न । सत्यः । उरुऽगाय । भृत्यै । अन्ने । समस्य । यत् । असन् । मनीषाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आप अपनी शरणमें रहने वाले मनुष्योंको किस बुद्धिसे दमकते हुए करते हैं, हे विशालकीर्ति ! आप सच्चे मित्रकी समान भृतिके लिये अन्नमें जो इसकी बुद्धिमें हों (उनको करिये)

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५

प्र । ईरय । सूरः । अर्थम् । न । पारम् । ये । अस्य । कामम् । जनिधाःऽइव । ग्मन् ।

गिरः । च । ये । ते । तुविऽजात । पूर्वीः । नरः । इन्द्र । प्रतिऽशिक्षन्ति । अन्नैः ॥ ५ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप हमको अर्थकी समान पार पहुँचाइये, जो इसकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये माताकी समान प्राप्त होती हैं, और हे तुविजात ! जो आपकी प्राचीन स्तुतियें हैं (उनको आप इस यजमानके हितके लिये प्रेरित करिये) हे इंद्र ! नेता पवन इसको अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

मात्रे इति । नु । ते । सुमिते इति सुऽमिते । इन्द्र । पूर्वी इति । द्यौः । मज्मना । पृथिवी । काव्येन ।
वराय । ते । घृतऽवन्तः । सुतासः । स्वाद्मन् । भवन्तु । पीतये । मधूनि ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! निर्माता सुमित् आपके लिये पूर्वी पृथिवी और द्यौ अपने वंधक काव्यके साथ (हितकारी हों) ये घृत वाले निचोड़े हुए सोम आपके पीनेके लिये स्वाद वाले होवें ॥ ६ ॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।

स वांवृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

आ । मध्वः । अस्मै । असिचन् । अमंत्रम् । इन्द्राय । पूर्णम् । सः । हि । सत्यऽराधाः ।

सः । वृवृधे । वरिमन् । आ । पृथिव्याः । अभि । क्रत्वा । नर्यः । पौंस्यैः । च ॥ ७ ॥

इस पात्रको इन्द्रदेवके लिये पूर्णरूपसे मधुसे भर दिया गया है, वह इन्द्रदेव ही सत्यसे साधे जाते हैं, वह मनुष्योंके हितकारी अपने पुरुषार्थों करके पृथ्वीसे बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

व्यांनळिन्द्रः पृतंना स्वोजा आस्मैं यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।

आ स्मा रथं न पृतंनासु तिष्ठ यं भद्रयां सुमत्या चोदयांसे ॥

वि । आनट् । इन्द्रः । पृतनाः । सुऽओजाः । आ । अस्मै । यतन्ते । सख्याय । पूर्वीः ।

आ । स्म । रथम् । न । पृतनासु । तिष्ठ । यम् । भद्रया । सुऽमत्या । चोदयासे ॥ ८ ॥

॥ इति सप्तमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

सुन्दर बल वाले इन्द्र इन सेनाओंमें व्याप्त होगए हैं, इनकी मित्रता करनेके लिये बहुतसी सेनाएँ चेष्टाएँ करती हैं, आप

जिसे अपनी सुमतिसे प्रेरणा करते हैं, उस सुमतिसे आप रथ की समान हमारी सेनामें स्थित हूजिये ॥ ८ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६९२)

छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरह्नोः "आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी" इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

छन्दोमके द्वितीय तृतीय दिनोंमें "आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी" इसका विनियोग पूर्वसूक्तमें कहा है ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः

आ । सत्यः । यातु । मघऽवान् । ऋजीषी । द्रवन्तु । अस्य । हरयः । उप । नः ।
तस्मै । इत् । अन्धः । सुसुम । सुऽदक्षम् । इह । अभिऽपित्वम् । करते । गृणानः ॥ १ ॥

सत्य, धनवान्, सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव आवें, इनके घोड़े हमारे पासको दौड़ें, हम उनके लिये ही सोमरूपी अन्नका अभिषव कर रहे हैं, इसी कारण जो स्तुति करने वाला है, वह यहाँ ही स्नान आदि कर रहा है ॥ १ ॥

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म

अव । स्य । शूर । अध्वनः । न । अन्ते । अस्मिन् । नः । अद्य । सवने । मन्दध्यै ।

शंसाति । उक्थम् । उशनाऽइव । वेधाः । चिकितुषे । असुर्याय । मन्म ॥

हे शूर ! हमारे पासमें आप मार्गको बाँधसा दीजिये और आज इस हमारे यज्ञमें मदमें भरिये, यह वेधा ज्ञानवान् इन्द्रके लिये शुक्राचार्यकी समान मननीय उक्थका उच्चारण कर रहे हैं २

कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

कविः । न । निण्यम् । विदथानि । साधन् । वृषा । यत् । सेकम् । विऽपिपानः । अर्चात् ।
दिवः । इत्था । जीजनत् । सप्त । कारून् । अह्ना । चित् । चक्रुः । वयुना । गृणन्तः ॥ ३ ॥

फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्र वर्षा करके पृथ्वीको पूर्ण करते हुए आवें इस लिये चतुर ऋत्विज निश्चितसा यज्ञोंको साध रहा है, विजिगीपासे इस प्रकार सात स्तोताओंको प्रकट किया है और वह सुन्दर स्तोत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं ॥३॥

स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

स्वः । यत् । वेदि । सुऽदृशीकम् । अर्कैः । महि । ज्योतिः । रुरुचुः । यत् । ह । वस्तोः ।

अन्धा । तमांसि । दुधिता । विऽचक्षे । नृऽभ्यः । चकार । नृतमः । अभिष्टौ ॥ ४ ॥

जिन मन्त्रोंके द्वारा भली प्रकार देखने योग्य स्वर्ग जाना जाता है और जो मन्त्र दिनकी परम ज्योति-सूर्य-को दमकाते हैं और जो सूर्यात्मक इन्द्र दूर होने पर भी घोर अन्धकारको दूर करके प्रकाश करते हैं और जो परम शूर अभिष्टि स्थापित कर देते हैं, (उनके लिये प्रणाम है) ॥ ४ ॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥

ववक्षे । इन्द्रः । अमितम् । ऋजीषी । उभे इति । आ । पप्रौ । रोदसी इति । महिऽत्वा ।

अतः । चित् । अस्य । महिमा । वि । रेचि । अभि । यः । विश्वा । भुवना । बभूव ॥ ५ ॥

यह सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव अमित धनको (यजमानोंके पास) पहुँचाते हैं और अपनी महिमा द्युलोक और भूलोक दोनोंको भर देते हैं, जो यह सब भुवनोंमें व्याप्त होगए हैं, इस लिये इनकी महिमा अधिक है ॥ ५ ॥

विश्वा॑नि श॒क्रो नर्या॑णि वि॒द्वान॒पो रि॑रेच॒ सखि॑भि॒-
  र्निका॑मैः ।
अश्मा॑नं चि॒द् ये बि॑भि॒दुर्वचो॑भिर्व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒
  वि व॑व्रुः ॥ ६ ॥

विश्वा॑नि । श॒क्रः । नर्या॑णि । वि॒द्वान् । अ॒पः । रि॒रे॒च॒ । सखि॑ऽ-
  भिः । निऽका॑मैः ।
अश्मा॑नम् । चि॒त् । ये । बि॒भि॒दुः । वचः॑ऽभिः । व्र॒जम् । गोऽ-
  म॑न्तम् । उ॒शिजः॑ । वि । व॒व्रुरिति॑ व॒व्रुः ॥ ६ ॥

विद्वान् इन्द्रदेवने मनुष्योंका हित करने वाले जलोंको, इच्छा-नुसार चलने वाले मित्र (—रूप मेघों) से बढ़ाया है, वे जल अपनी वाणीसे (गड़गड़ाहटसे) पत्थरोंको भी विदीर्ण कर डालते हैं-अलग अलग कर देते हैं और कामना करते हैं तो गौओं वाले व्रजको घेर लेते हैं ॥ ६ ॥

अ॒पो वृ॒त्रं व॑व्रि॒वांसं॒ परा॑ह॒न् प्राव॑त् ते॒ वज्रं॑ पृथि॒वी
  सचे॑ताः ।
प्रार्णां॑सि समु॒द्रिया॑ण्यैनोः॒ पति॒र्भव॒ञ्छव॑सा शूर धृष्णो

अ॒पः । वृ॒त्रम् । व॒व्रि॒ऽवांस॑म् । परा॑ । अ॒ह॒न् । प्र । आ॒व॒त् । ते॒ ।
  वज्र॑म् । पृ॒थि॒वी । सऽचे॑ताः ।

प्र । अर्णांसि । समुद्रियाणि । ऐनोः । पतिः । भवन् । शवसा । शूर । धृष्णो इति ॥ ७ ॥

जलोंने आवरण करते हुए मेघको विदीर्ण कर डाला है और पृथिवी सावधान होकर (हे इन्द्र) आपके वज्रकी रक्षा करती है और समुद्रके जलोंकी रक्षा करती है, हे धर्षक शूर इन्द्र ! आप बलपूर्वक इसके स्वामी बनते हैं ॥ ७ ॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

अपः । यत् । अद्रिम् । पुरुऽहूत । दर्दः । आविः । भुवत् । सरमा । पूर्व्यम् । ते ।
सः । नः । नेता । वाजम् । आ । दर्षि । भूरिम् गोत्रा । रुजन् । अङ्गिरःऽभिः । गृणानः ॥ ८ ॥

इति सप्तमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंमे आहूत इन्द्र ! आप जो पर्वतको वा मेघको जल प्रदान करते हैं, वह आपसे पहिले ही प्रकट होकर चलते हैं, ऐसे नेता आप अंगिरागोत्री ऋत्विजोंसे स्तुति पाते हुए मेघोंको विदीर्ण करते हुए हमें बहुतसा अन्न प्रदान करते हैं ८

सप्तम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६६३)

वाजपेये "तद्व वो गाय" इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "तद्व नो गायेति स्तोत्रियः" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा बृहस्पतिसवे "तद् वो गाय सुते सचा" [२०. ७८] "वयमेनमिदाह्यः" [२०. ९७] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । "बृहस्पतिसवे तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्य इति" इति [वै० ८. १] ॥

तथा तत्रैव प्रातःसवनमाध्यंदिनसवनयोः एतावेव उक्थमुखीयं तृचपर्यासश्च भवतः माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम् । तद् उक्तं वैताने। "सवनयोरुक्थमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम्" इति [वै० ८. १] ॥

तथा सर्वजित्यृषभे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये च चतुर्ष्वेकाहेषु "तद् वो गाय सुते सचा" "वयमेनमिदाह्यः" एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "सर्वजित्यृषभे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्य इति" इति [वै० ८. १]॥

वाजपेयमें "तद् वो गाय" यह स्तोत्रिय होता है । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"तद् वो गायेति स्तोत्रियः" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा बृहस्पतिसवमें "तद् वो गाय सुते सचा" (२०।७८) "वयमेनमिदा ह्यः" (२० । ९७) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"बृहस्पतिसवे तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्यः" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा वहाँ ही प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवनमें ये ही उक्थमुखीय और तृचपर्यास होते हैं और माध्यन्दिनमें पर्यासाद्यतृच नहीं होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"सवनयोरुक्थमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम्" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा सर्वजित् ऋषभ मरुत्स्तोम और सहस्रान्त्य इन चारोंके एकाहोंमें "तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्य इति" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

तत् । वः । गाय । सुते । सचा । पुरुऽहूताय । सत्वने ॥ शम् । यत् । गवे । न । शाकिने ॥ १ ॥

अपने सोमका अभिषव होने पर जल वाले पुरुहूत इन्द्रके लिये स्तोत्रका गान करो, जिससे, कि-वह गौकी समान हम शाक (सोम) वालोंके लिये कल्याणकारी होवें ॥ १ ॥

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

न । घ । वसुः । नि । यमते । दानम् । वाजस्य । गोऽमतः ॥ यत् । सीम् । उप । श्रवत् । गिरः ॥ २ ॥

यह इन्द्रदेव यदि स्तुतिरूपा वाणीको सुन लेते हैं, तो वह उस यजमानके लिये वसुके और गोसम्पन्न अन्नके दानको नहीं रोकते हैं ॥ २ ॥

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

कुवित्ऽसस्य । प्र । हि । व्रजम् । गोऽमन्तम् । दस्युऽहा ॥ गमत् । शचीभिः । अप । नः । वरत् ॥ ३ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे धान्यसे सम्पन्न ! वृत्ररूपी दस्युका संहार करने वाले इन्द्र ! आप गौ (वाणी) वाले व्रज (यज्ञ) की ओर आवें और शक्तियोंसे हमको भरें ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (६९३)

वाजपेये माध्यन्दिने सवने "इन्द्र क्रतुं न आ भर" [२०. ७९] "इन्द्र ज्येष्ठम्" [२०. ८०] "उदु त्ये मधुमत्तमाः" [२०. ५९] इत्येतेषामन्यतमो विकल्पेन स्तोत्रियो भवति। तद् उक्तं वैताने। "माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः। इन्द्र ज्येष्ठम् उदुत्ये मधुमत्तमा इति वा" इति [वै० ४. ३]॥

तथा विषुवति सार्यपृष्ठे "इन्द्र क्रतुं न आ भर" "इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर" इति विकल्पेन स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने। "इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरेति वा" इति [वै० ६. ३]॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे "इन्द्र क्रतुं न आ भर" इति इमां पूर्वाभ्यां तृतीयाम् अर्धर्चशः मप्रयनो शंसति। तद् उक्तं वैताने। "इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्" इति [वै० ६. ३]॥

तथा इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे "इन्द्र क्रतुं न आ भर" [२०. ७९] "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" [२०. १०६] इत्येतौ पृष्ठोक्थ-स्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "इन्द्रस्तोम इन्द्रं क्रतुं न आ भर तव त्यदिन्द्रियम् बृहदिति" इति [वै० ८. १]॥

तथा विषुवति एकाहीभूते "इन्द्र क्रतुं न आ भर" इति पृष्ठ-स्तोत्रियो भवति। तद् उक्तं वैताने। "विषुवतीन्द्र क्रतुं न आ भरेति" इति [वै० ८. २]॥

वाजपेयके माध्यन्दिन सवनमें "इन्द्र क्रतुं न आ भर" (२०। ७९) "इन्द्र ज्येष्ठम्" (२० । ८०) "उदु त्ये मधुमत्तमाः" (२० । ५९) इनमेंसे कोई एक विकल्पसे स्तोत्रिय होता है।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्र ज्येष्ठम् उदु त्ये मधुमत्तमा इति वा" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विषुवत् संज्ञकपृष्ठमें "इन्द्र क्रतुं न आ भर" "इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर" ये विकल्पसे स्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आभरेति वा" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें "इन्द्र क्रतुं न आ भर" इसको दो पूर्वाओंसे, तृतीयाको अर्धर्चशः मग्रथनारूप कहे । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें "इन्द्र क्रतुं न आ भर" (२० । ७६) "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" (२० । १०६) ये पृष्ठोक्थ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"इन्द्रस्तोम इन्द्र क्रतुं न आ भर तव त्यदिन्द्रियं बृहदिति" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा एकाहीभूत विषुवत्में "इन्द्र क्रतुं न आ भर" यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"विषुवतीन्द्र क्रतुं न आभरेति" (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्र॒ क्रतुं॑ न॒ आ भ॑र पि॒ता पु॒त्रेभ्यो॒ यथा॑ ।
शि॒क्षा णो॑ अ॒स्मिन् पु॑रुहूत॒ याम॑नि जी॒वा ज्योति॑-
रशीमहि ॥ १ ॥

इन्द्र॑ । क्रतु॑म् । नः॒ । आ । भ॒र॒ । पि॒ता । पु॒त्रेभ्यः॑ । यथा॑ ।

शिक्ष । नः । अस्मिन् । पुरुऽहूत । यामनि । जीवाः । ज्योतिः । अशीमहि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पिता पुत्रोंको अभिमत वस्तु देता है, इसी प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभिमत वस्तु दीजिये, हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुहूत इन्द्रदेव ! आप हमको संसारयात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये और हम भी आपके प्रसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोकके सुखका अनुभव करना रूप ज्योतिको पावें ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो ३ माशिवासो अव क्रमुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

मा । नः । अज्ञाताः । वृजनाः । दुःऽआध्यः । मा । अशिवासः । अव । क्रमुः ।

त्वया । वयम् । प्रऽवतः । शश्वतीः । अपः । अति । शूर । तरामसि

इति सप्तमेऽनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शूर ! अज्ञात पाप हम पर आक्रमण न करें, दुष्ट व्याधियें हम पर आक्रमण न करें, अकल्याण करने वाली वार्तायें हम पर आक्रमण न करें, आपकी कृपासे हम मनुष्योंसे सम्पन्न रहते हुए सदा कर्मोंके पार पहुँचते रहें ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त (६९५)

वाजपेये माध्यन्दिने सवने "इन्द्र ज्येष्ठम्" इत्यस्य पूर्वसूक्तेन सह अस्य विनियोगः ॥

तथा विषुवति सौर्यपृष्ठे ऽस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः॥

वाजपेयके माध्यन्दिनसवनमें "इन्द्र ज्येष्ठम्" इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है।

तथा विषुवत् सौर्यपृष्ठमें इसका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कहा है।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः॥ १

इन्द्र। ज्येष्ठम्। नः। आ। भर। ओजिष्ठम्। पपुरि। श्रवः।
येन। इमे इति। चित्र। वज्रऽहस्त। रोदसी इति। आ।
उभे इति। सुऽशिप्र। प्राः॥ १॥

हे इन्द्र! आप अपने ज्येष्ठ ओजिष्ठ और पूर्ण करने वाले धनको हमें दीजिये, हे चायनीय वज्रहस्त सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र! आपने जिस धनसे दोनों द्युलोक और पृथिवीलोकको व्याप्त कर रखा है, उसे हमें दीजिये॥ १॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोमित्रान् सुषहान् कृधि॥ २॥

त्वाम्। उग्रम्। अवसे। चर्षणिऽसहम्। राजन्। देवेषु। हूमहे।
विश्वा। सु। नः। विथुरा। पिब्दना। वसो इति। अमित्रान्।
सुऽसहान्। कृधि॥ २॥

इति सप्तमेऽनुवाके नवमं सूक्तम्॥

हे राजन् ! हम देवताओंमेंसे आप चर्षणीसह उग्रका ही रक्षा के लिये आह्वान करते हैं। हे वासक इन्द्र ! हमारे भयके सब कारणोंको आप नष्ट करिये और शत्रुओंको भली प्रकार दबाने योग्य कर दीजिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (६९६)

अग्नोर्याम्णि क्रतौ माध्यंदिने सवने "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इति स्तोत्रियम् अभितः माक्रनः स्तोत्रियो भवति। "यदिन्द्र यावतस्त्वम्" [२०, ८२] इत्यनुरूपम् अभितः माक्रतोनुरूपः। तद् उक्तं वैताने। "माध्यंदिने यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४. २]॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" "यदिन्द्र यावतस्त्वम्" इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ" इति [वै० ६. ३]॥

तथा तनूपृष्ठे षडहे "अभि त्वा शूर नोनुमः" [२०. १२१] "त्वामिद्धि हवामहे" [२०. ९८] "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] "पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा" [२०. ११७] "कया नश्चित्र आ भुवत्" [२०. १२४] "रेवतीर्नः सधमादे" [२०. १२२] इति पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति। तद् उक्तं वैताने। "तनूपृष्ठेभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा कया नश्चित्र आ भुवद् रेवतीर्नः सधमाद इति" इति [वै० ८. ४]॥

अग्नोर्याम क्रतुके माध्यन्दिन सवनमें "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) यह स्तोत्रिय चारों ओरसे माक्रन स्तोत्रिय होता

है। "यदिन्द्र यावतस्त्वम्" (२० । ८२) यह अनुरूप अभितः प्राकृत अनुरूप हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"माध्यन्दिने यद्द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४ । ३)॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें "यद्द्याव इन्द्र ते शतम्" "यदिन्द्र यावतस्त्वम्" ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत प्रगाथ होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद्द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ (वैतानसूत्र ६ । ३)॥

तथा तनूपृष्ठ षडहमें "अभि त्वा शूर नोनुमः" (२० । १२१) "त्वामिद्धि हवामहे" (२० । ९८) "यद्द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) "पिबा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा" (२० । ११७) "कया नश्चित्र आभुवत् (२० । १२४) "रेवतीर्नः सधमादे" (२० । १२२) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"तनूपृष्ठेऽभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद्द्याव इन्द्र ते शतं पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा कया नश्चित्र आभुवद् रेवतीर्नः सधमाद इति" (वैतानसूत्र ८ । ४)

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥१॥

यत् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत । स्युरिति । स्युः ।
न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् । अष्ट । रोदसी इति ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! यदि सैंकड़ों द्युलोक सैंकड़ों भूमि और सहस्रों सूर्य आपके उपमानमें होजावें, तब भी हे वज्रधारिन् इंद्र ! आपमे नहीं बढ़ सकते ॥ १ ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृषन् विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघवन् गोम॑ति व्र॒जे वज्रिं॑ चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑ः ॥ २ ॥

आ । प॒प्राथ॒ । म॒हि॒ना । वृष्ण्या॑ । वृ॒षन् । विश्वा॑ । श॒वि॒ष्ठ॒ । शव॑सा ।
अ॒स्मान् । अ॒व॒ । म॒घ॒ऽव॒न् । गोऽम॑ति । व्र॒जे । व॒ज्रि॒न् । चि॒त्राभि॑ः । ऊ॒तिऽभि॑ः ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् फलप्रद इन्द्र ! हमारे गौओं वाले व्रजमें अपनी विचित्र रक्षक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और अपनी महिमासे बलपूर्वक हमको बढ़ाइये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६९)

अप्तोर्यामिण क्रतौ "यदिन्द्र यावतस्त्वम्" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे अस्य सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

अप्तोर्याम क्रतुमें "यदिन्द्र यावतस्त्वम् इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा विश्वजित् वैराज्यपृष्ठमें, इस, सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय १

यत् । इन्द्र । यावतः । त्वम् । एतावत् । अहम् । ईशीय ।
स्तोतारम् । इत् । दिधिषेय । रदवसो इति रदऽवसो । न ।
पापऽत्वाय । रासीय ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप जितने हैं, इतना मैं ईश्वर होजाऊँ, स्तोताओं को धन प्रदान करूँ, मैं पापत्वके लिये विलिखित न होऊँ अर्थात् पाप करके पक्षियोंके द्वारा नोचा न जाऊँ ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता
चन ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । इत् । महऽयते । दिवेऽदिवे । रायः । आ । कुहचित्ऽविदे ।
नहि । त्वत् । अन्यत् । मघऽवन् । नः । आप्यम् । वस्यः ।
अस्ति । पिता । चन ॥ २ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जो मुझसे बढ़ना चाहे (उसे संग्राममें मार कर) स्वर्गमें जानेका दण्ड दूँ, चाहे कहींसे धनको प्राप्त करूँ, हे मघवन् ! आपसे अतिरिक्त और कौन हमको पूर्ण करने वाला वासक और पालक है ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (६९८)

अप्तोर्याम्णि माकृतसाममगाथादनन्तरम् "इन्द्र त्रिधातु शरणम्" इति साममगाथो भवति । तद्द उक्तं वैताने । "साममगाथाद्द इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगाथः" इति [वै०४. ३] ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे "इन्द्र त्रिधातु शरणम्" इति साममगाथो भवति । तद्द उक्तं वैताने । "इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगाथः" इति [वै० ६. ३] ॥

अप्तोर्याममें मरुत साममगाथके अनन्तर "इन्द्र त्रिधातु शरणम्" यह साम मगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"साममगाथाद्द इन्द्र त्रिधातु शरणम्" (वैतानसूत्र ४ । ३)॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें "इन्द्र त्रिधातु शरणम्" यह साममगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगाथः" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

इन्द्रं त्रिधातुं शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः १

इन्द्र । त्रिऽधातु । शरणम् । त्रिऽवरूथम् । स्वस्तिऽमत् ।
छर्दिः । यच्छ । मघवत्ऽभ्यः । च । मह्यम् । च । यवय । दिद्युम् । एभ्यः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! त्रिधातु त्रिवरूथ और स्वस्तिसम्पन्न गृहको धनवानोंके लिये और मेरे लिये प्रदान करिये और इनसे दिद्युको अलग करिये-खण्डन करने वाले वज्रको अलग करिये ॥१॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अधं स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

ये । गऽयता । मनसा । शत्रुम् । आऽदभुः । अभिऽप्रघ्नन्ति । धृष्णुऽया ।

अध । स्म । नः । मघऽवन् । इन्द्र । गिर्वणः । तनूऽपाः । अन्तमः । भव ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

जो गमनशील मनसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं और अपनी धर्षक शक्तियोंसे शत्रुको विकटरूपसे पीटते हैं (वे आपके बल शत्रुओंको पीटें) इसके अनन्तर हे स्तुतिवाणियोंसे सेवनीय मघवन् इन्द्र ! आप हमारे पास रह कर हमारे शरीरकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६९९)

चतुर्विंशे द्वितीयेहनि प्रातःसवने "इन्द्रा याहि चित्रभानो" इति विकल्पेन आज्यस्तोत्रियो भवति। तदु उक्तं वैताने। "इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा" इति [वै० ६. १]॥

तथा छन्दोमाख्येषु त्र्यहःसु प्रातःसवने अस्य "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] इत्यनेन सह विनियोग उक्तः ॥

तथा चतुर्विंशे सांवत्सरिके एकाहीभूते "इन्द्रा याहि चित्रभानो" [२०. ८४] "मा चिदन्यद्वि शंसत" [२०. ८५] इत्याज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तदु उक्तं वैताने। "चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिदन्यद्वि शंसतेति" इति [वै० ८. २]॥

चतुर्विंशके द्वितीय दिनके प्रातःसवनमें "इन्द्रा याहि चित्रभानो" यह विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा" (वैतानसूत्र ६ । १)

तथा छन्दोमोंके तीनों दिनोंके प्रातःसवनमें इसका "तमिन्द्रं वाजयामसि" के साथ विनियोग कह दिया है।

तथा चतुर्विंश साम्वत्सरिक एकाहीभूतमें "इन्द्रा याहि चित्रभानो" (२० । ८४) "मा चिदन्यद् विशंसत" (२० । ८५) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिदन्यद् विशंसतेति" (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

इन्द्र । आ । याहि । चित्रभानो इति चित्रऽभानो । सुताः । इमे । त्वाऽयवः । अण्वीभिः । तना । पूतासः ॥ १ ॥

हे चित्रभानो इन्द्र ! आइये, यह सूक्ष्म (वस्त्रों) से निचोड़े हुए धनरूप सोम आपके ही हैं ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

०धिया । इषितः । विप्रऽजूतः । सुतऽवतः ॥ उप । ब्रह्माणि । वाघतः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ब्राह्मण आपको अपनेसे उत्कृष्ट समझते हैं। इस लिये बुद्धिसे प्रेरित होकर, इन अभिषुत सोम वाले और मन्त्रों (का उच्चारण करते हुए) ऋत्विजोंके पास आइये ॥ २ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

इन्द्र । आ । याहि । तुतुजानः । उप । ब्रह्माणि । हरिऽवः ।

सुते । दधिष्व । नः । चनः ।

इति सप्तमेऽनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप शीघ्रता करके स्तोत्रों की ओर आइये और हमारे अभिषुत सोमके पास अपने घोड़ों को कुछ ठहराइये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (७००)

चतुर्विंशे माध्यंदिने सवने "मा चिदन्यद् वि शंसत" [२०. ८५. १. २] "यच्चिद्धि त्वा जना इमे" [२०. ८५. ३. ४] इति विकल्पेन पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "मा चिदन्यद् वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा" इति [वै० ६. १] ॥

तथा चतुर्विंशे सांवत्सरिके एकाहीभूते "मा चिदन्यद् वि शंसत" इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

चतुर्विंश माध्यन्दिन सवनमें "मा चिदन्यद् विशंसत" (२० । ८५ । १, २) "यच्चिद्धि त्वा जना इमे" (२० । ८५ । ३, ४) ये विकल्पसे पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत प्रगाथ होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"मा चिदन्यद् विशंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा" (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा चतुर्विंश साम्वत्सरि एकाहीभूतमें "मा चिदन्यद् वि शंसत" इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत १

मा । चित् । अन्यत् । वि । शंसत । सखायः । मा । रिषण्यत ।

इन्द्रम् । इत् । स्तोत । वृषणम् । सचा । सुते । मुहुः । उक्था । च । शंसत ॥ १ ॥

हे मित्ररूप स्तोताओं ! तुम विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे और किसीकी स्तुति न करो तथा चित्तसे भी और किसी देवताके पास न जाओ, फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्रकी ही स्तुति करो हे इस अभिषुत सोमके पास रहने वाले होताओ ! तुम वारम्बार उक्थका गान करो ॥ १ ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

अवऽक्रक्षिणम् । वृषभम् । यथा । अजुरम् । गाम् । न । चर्षणिऽसहम् ।

विऽद्वेषणम् । सम्ऽवनना । उभयम्ऽकरम् । मंहिष्ठम् । उभयाविनम् ॥ २ ॥

अवक्रक्षी, वृषभ, अजुर, बैलकी समान चर्षणीसह, शत्रुओं से द्वेष करने वाले, संवननीय, मंहिष्ठ और दोनों लोकोंमें रक्षा करने वाले (इन्द्रदेवका मैं आह्वान करता हूँ) ॥ २ ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेहा विश्वा च वर्धनम् ३

यत् । चित् । हि । त्वा । जनाः । इमे । नाना । हवन्ते । ऊतये ।

अस्माकम् । ब्रह्म । इदम् । इन्द्र । भूतु । ते । अहा । विश्वा । च । वर्धनम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! ये बहुतसे पुरुष रक्षाके लिये अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे आपका आह्वान करते हैं, हे इन्द्र ! हमारा यह मन्त्रमय स्तोत्र सब दिन आपको बढ़ाने वाला होवे ॥ ३ ॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम्
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

वि । तर्तर्यन्ते । मघऽवन् । विपःऽचितः । अर्यः । विपः । जनानाम् । उप । क्रमस्व । पुरुऽरूपम् । आ । भर । वाजम् । नेदिष्ठम् । ऊतये ॥ ४ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

हे मघवन् ! विद्वान् पुरुष, यज्ञस्वामी और मनुष्योंकी अँगुलियें त्वरा कर रही हैं आप आइये और विशाल रूपको धारण करिये और रक्षा करनेके लिये अन्नको निकटतम करके प्रदान करिये ४

सप्तम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७०१)

संवत्सरे माध्यंदिने सवने सामप्रगाथाद् अनन्तरम् "ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि" इति आरम्भणीया भवति । तद् उक्तं वैताने । "ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मीत्यारम्भणीया" इति [वै० ६. ५] ॥

सम्वत्सरके माध्यन्दिन सवनमें सामप्रगाथके अनन्तर "ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि" यह आरम्भणीया होती है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मीत्यारंभणीया भवति" (वैतानसूत्र ६ । ५) ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥

ब्रह्मणा । ते । ब्रह्मऽयुजा । युनज्मि । हरी इति । सखाया । सधऽमादे । आशू इति ।
स्थिरम् । रथम् । सुऽखम् । इन्द्र । अधिऽतिष्ठन् । प्रऽजानन् । विद्वान् । उप । याहि । सोमम् ॥ १ ॥

इति सप्तमेनुवाके पञ्चदशं सूक्तम् ॥

कर्ममें लगे हुए मन्त्रके द्वारा मैं आपके हरिनामक शीघ्रगामी घोड़ोंको यज्ञमें आनेके लिये रथमें जोड़ता हूँ, हे इन्द्रदेव ! आप विद्वान् हैं अतः रथको स्थिर और सुखप्रद समझ उस पर चढ़ कर सोमके समीप आइये ॥ १ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त (७०२)

द्वितीये छन्दोमेहनि "अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्" [२०.८७] "यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्" [२०. ८८] "अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्" [२०. ८९] इत्यैकाहिकानि भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् इत्यैकाहिकानि" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तृतीये छन्दोमेहनि "अध्वर्यवोरुणम्" [२०.८७] "यो अद्रिभिद् प्रथमजा ऋतावा" [२०. ९०] "आ यात्विन्द्रः स्व-

पतिर्मदाय" [२०. ६४] इत्येतानि ऐकाहिकानि भवन्ति। तद् उक्तं वैताने। "तृतीयेऽध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित्। प्रथमजा ऋतावा यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति" इति [वै० ६. ३]॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें "अध्वर्यवोऽरुणम् दुग्धमंशुम्" (२०। ८७) "यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्" अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् (२०। ८६) ये ऐकाहिक होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"द्वितीयेऽध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् इत्यैकाहिकानि" (वैतानसूत्र ६। ३)॥

तथा तृतीय छन्दोम दिनमें "अध्वर्यवोरुणम् (२०। ८७) "यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा" (२०। ६०) "आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय" (२०। ६४) ये ऐकाहिक होते हैं, इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति" (वैतानसूत्र ६।३)॥

अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्। गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

अध्वर्यवः। अरुणम्। दुग्धम्। अंशुम्। जुहोतन। वृषभाय। क्षितीनाम्।
गौरात्। वेदीयान्। अवऽपानम्। इन्द्रः। विश्वाहा। इत्। याति। सुतऽसोमम्। इच्छन् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओं! तुम पृथ्वीके वर्षक इन्द्रके लिये सोमके अंश

अरुण दुग्धकी आहुति दो, विरवाहा विद्वान् इन्द्र सुतसोमको चाहता हुआ गौरसे अवपान पर आता है ॥ १ ॥

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥

यत् । दधिषे । प्रऽदिवि । चारु । अन्नम् । दिवेऽदिवे । पीतिम् । इत् । अस्य । वक्षि ।

उत । हृदा । उत । मनसा । जुषाणः । उशन् । इन्द्र । प्रऽस्थितान् । पाहि । सोमान् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जो द्युलोकमें चारु अन्नको धारण करते हैं, और प्रत्येक क्रीड़ाके अवसर पर जो इस सोमकी पीतिको धारण करते हैं, हे इन्द्र ! हृदय और मनसे इस सोमको चाहते हुए आप प्रस्थित सोमोंकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ३

जज्ञानः । सोमम् । सहसे । पपाथ । प्र । ते । माता । महिमानम् । उवाच ।

आ । इन्द्र । पप्राथ । उरु । अन्तरिक्षम् । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकर्थ ॥ ३ ॥

आप आविर्भूत होते ही बलके लिये सोम पर जाते हैं, अन्तरिक्ष आपकी महिमाको प्रकृष्टरूपसे कहता है । हे इन्द्रदेव ! आप विशाल अन्तरिक्षमें जाते हैं और आपने युद्ध करके देवताओंको धन प्रदान किया है ॥ ३ ॥

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥

यत् । योधयाः । महतः । मन्यमानान् । साक्षाम । तान् । बाहुऽभिः । शाशदानान् ।
यत् । वा । नृऽभिः । वृतः । इन्द्र । अभिऽयुध्याः । तम् । त्वया । आजिम् । सौश्रवसम् । जयेम ॥ ४ ॥

आप अपनेको बड़ा मानने हुओंसे युद्ध करते हैं, उन भुजाओंसे विशारण करते हुओंसे हम संगत होवें, अथवा हे इन्द्र ! आप मनुष्योंसे घिर कर युद्ध करिये आपके प्रभाववश हम सुन्दर यश के साथ युद्धको जीतें ॥ ४ ॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसंहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥

प्र । इन्द्रस्य । वोचम् । प्रथमा । कृतानि । प्र । नूतना । मघऽवा । या । चकार ।

यदा। इत्। अदेवीः। असहिष्ट॥ मायाः। अथ। अभवत्।

केवलः। सोमः। अस्य॥ ५॥

मैं इन्द्रके पहिले किये हुए कृत्योंका वर्णन कर रहा हूँ और धनी इन्द्रदेवने जो नवीन कर्म किये हैं उनका वर्णन करता हूँ, जो इन्होंने आसुरी मायाओंको सहा है, इससे सोम केवल इन के लिये होगया है॥ ५॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं १ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।

गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः

तव। इदम्। विश्वम्। अभितः। पशव्यम्। यत्। पश्यसि।

चक्षसा। सूर्यस्य।

गवाम्। असि। गोऽपतिः। एकः। इन्द्र। भक्षीमहि। ते। प्रऽय-

तस्य। वस्वः॥ ६॥

हे इन्द्रदेव! आप सूर्यरूपी नेत्रसे जिसको देखते हैं यह सब पशुधन आपका ही है, हे इन्द्रदेव! आप गौओंके असाधारण गोपालक हैं हम, आप प्रयत अपने भक्तफलरत्वमें प्रकृष्टरूपसे लगे रहने वालेके धनका उपभोग करें॥ ६॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥

बृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशाथेइति ।
उत । पार्थिवस्य ।
धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

हे बृहस्पते ! आप और इन्द्रदेव तुम दोनों ही द्युलोकके और भूलोकके धनके स्वामी हैं आप स्तुति करनेवाले स्तोताके लिये धनको दीजिये और अपनी रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करिये,॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें सोलहवाँ सूक्त समाप्त (३०३)

द्वितीये छन्दोमेऽहनि "यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्" इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें "यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान्" इसका विनियोग पूर्व सूक्तके साथ कह दिया है ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

यः । तस्तम्भ । सहसा । वि । ज्मः । अन्तान् । बृहस्पतिः ।
त्रिऽसधस्थः । रवेण ।
तम् । प्रत्नासः । ऋषयः । दीध्यानाः । पुरः । विप्राः । दधिरे ।
मन्द्रऽजिह्वम् ॥ १ ॥

जिन त्रिसधस्थ बृहस्पतिने अपने घोषसे पृथ्वीके छोर तक को स्तम्भित कर दिया था, प्राचीन ऋषि, उनका बारम्बार ध्यान करते हैं और ब्राह्मण उन हर्षमद जिह्वा वालेको पहिले रखते हैं ॥ १ ॥

धुनेतंयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २

धुनऽइतयः । सुप्रकेतम् । मदन्तः । बृहस्पते । अभि । ये । नः । ततस्रे ।

पृषन्तम् । सृप्रम् । अदब्धम् । ऊर्वम् । बृहस्पते । रक्षतात् । अस्य । योनिम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! ध्वनिको प्रेरित करते हुए आनन्दमें भरे हुए जो ऋत्विज आपको हमारी ओर प्रेरित करते हैं । हे बृहस्पते ! उस ऋत्विक्संघके कारण, गमनशील, सबसे अहिंसित बलवान् घृतबिन्दु वाले की आप रक्षा करिये ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ तं ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वं श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥

बृहस्पते । या । परमा । पराऽवत् । अतः । आ । ते । ऋतऽस्पृशः । नि । सेदुः ।

तुभ्यम् । खाताः । अवताः । अद्रिऽदुग्धाः । मध्वः । श्चोतन्ति ।
अभितः । विऽरप्शम् ॥ ३ ॥

हे बृहस्पते ! आपकी परम रक्षक शक्ति रक्षा करती है, इसी कारण घृतस्पृश् ऋत्विज् आपके पास बैठे हैं, आपके लिये तोडे हुए, रक्षित और पहाड़ परसे लाये हुए मधुके अधिकरण चारों ओरसे विशाल परिमाणमें मधुको बरसाते हैं ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ४

बृहस्पतिः । प्रथमम् । जायमानः । महः । ज्योतिषः । परमे ।
विऽओमन् ।
सप्तऽआस्यः । तुविऽजातः । रवेण । वि । सप्तऽरश्मिः । अधमत् ।
तमांसि ॥ ४ ॥

बृहस्पति देव ज्योतिषके महिमामय चक्रसे परम व्योममें प्रकट होते हैं, तब वह तुविजात सप्तास्य सप्तरश्मि बन अपने शब्दसे अन्धकारोंको नष्ट कर डालते हैं ॥ ४ ॥

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत्

सः । सुऽस्तुभा । सः । ऋक्वता । गणेन । वलम् । रुरोज ।
फलिऽगम् । रवेण ।

बृहस्पतिः । उस्रियाः । हव्यऽसूदः । कनिक्रदत् । वावशतीः ।
उत । आजत् ॥ ५ ॥

बृहस्पति देव सुन्दरतासे स्तुति करने वाले ऋचामयगणसे और रवसे मेघको विदीर्ण कर डालते हैं—वर्षा करते हैं। हव्यसे प्रेरित हुए बृहस्पति देव कामना करती हुई गौओंके लिये बारम्बार शब्द करते हैं और प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ६

एव । पित्रे । विश्वऽदेवाय । वृष्णे । यज्ञैः । विधेम । नमसा ।
हविःऽभिः ।
बृहस्पते । सुऽप्रजाः । वीरऽवन्तः । वयम् । स्याम । पतयः ।
रयीणाम् ॥ ६ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

ऐसे पालक विश्वदेव वर्षक बृहस्पतिके लिये हम यज्ञोंके द्वारा नमस्कारके द्वारा और हविके द्वारा सेवा करते हैं, हे बृहस्पति-देव। हम सुन्दर प्रजा वाले, वीरोंसे सम्पन्न होवें और धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें सप्तदश सूक्त समाप्त (७०४)

द्वितीये छन्दोमेऽहनि "अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्" इत्यस्य विनियोगः "अभ्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्" [२०, ८७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें "अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्" इसका

विनियोग "अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्" (२० । ८७) के साथ कह दिया है।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोम-
मस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम
इन्द्रम् ॥ १ ॥

अस्ताऽइव । सु । प्रऽतरम् । लायम् । अस्यन् । भूषन्ऽइव । प्र । भर । स्तोमम् । अस्मै ।
वाचा । विप्राः । तरत । वाचम् । अर्यः । नि । रमय । जरितरिति । सोमे । इन्द्रम् ॥ १ ॥

जैसे फेंकने वाला पुरुष, ग्रहण करने वाली वस्तुको विभूषित होता हुआसा फेंकता है, इसी प्रकार आप इन इन्द्रदेवके लिये स्तोमका भरण करिये। हे विप्रों! तुम मन्त्ररूपा वाणीके वाणीसे पार जाओ हे स्तोतः! आप स्वामी हैं अतः सोममें इन्द्रको रमण कराइये ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जार-
मिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय
शूरम् ॥ २ ॥

दोहेन । गाम् । उप । शिक्ष । सखायम् । प्र । बोधय । जरितः । जारम् । इन्द्रम् ।

कोशम् । न । पूर्णम् । वसुना । निऽऋष्टम् । आ । च्यवय । मघऽदेयाय । शूरम् ॥ २ ॥

आप मित्ररूपा वाणीको दोहनसे शिक्षित करिये और हे स्तुति करने वाले ! शत्रुओंको जीर्ण करने वाले इन्द्रको सम्बोधित करिये । और धनसे पूर्ण कोशकी समान शूरतामद शुद्ध सोम को धनमद इन्द्रके लिये च्यावित करिये ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥

किम् । अङ्ग । त्वा । मघऽवन् । भोजम् । आहुः । शिशीहि । मा । शिशयम् । त्वा । शृणोमि ।
अप्नस्वती । मम । धीः । अस्तु । शक्र । वसुऽविदम् । भगम् । इन्द्र । आ । भर । नः ॥ ३ ॥

हे मघवन् इन्द्रदेव ! आपको भोगने वाला कहते हैं, आप मुझे क्षीण न करिये, मैं आपको शत्रुक्षीणकर्ता सुनता हूँ । हे शक्र ! मेरी बुद्धि कर्म वाली हो और हे इन्द्रदेव ! आप हमको धन प्राप्त कराने वाला भाग्य दीजिये ॥ ३ ॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।

अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥

त्वाम् । जनाः । ममऽसत्येषु । इन्द्र । सम्ऽतस्थानाः । वि । ह्वयन्ते । सम्ऽईके ।

अत्र । युजम् । कृणुते । यः । हविष्मान् । न । असुन्वता । सख्यम् । वष्टि । शूरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मेरे यज्ञोंमें खड़े हुए और युद्धमें खड़े हुए पुरुष आपका ही विशेषरूपसे आह्वान करते हैं, जो हवि वाला आप के लिये योग करता है वह शूर आपकी मित्रता चाहता है अतः सोमका अभिषव करता है ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

धनम् । न । स्पन्द्रम् । बहुलम् । यः । अस्मै । तीव्रान् । सोमान् । आऽसुनोति । प्रयस्वान् ।

तस्मै । शत्रून् । सुऽतुकान् । प्रातः । अह्नः । नि । सुऽअष्ट्रान् । युवति । हन्ति । वृत्रम् ॥ ५ ॥

जो हविरूप अन्नसे सम्पन्न पुरुष अपने धनको धीरे धीरे

सरकने वाला रख कर इन इन्द्रदेवके लिये तीव्र सोमोंका अभिषव नहीं करता है उसके लिये इन्द्रदेव दिनके प्रातःकालमें शीघ्र गमन करने वाले भली प्रकार व्याप्त कर लेने वाले शत्रुओंको मिलाते हैं और वज्रका प्रहार करते हैं ॥ ५ ॥

यस्मि॑न् व॒यं द॑धि॒मा शंस॒मिन्द्रे॒ यः शि॒श्राय॑ म॒घवा॒ काम॑म॒स्मे ।
आ॒राच्चि॒त् सन् भ॑यताम॒स्य शत्रु॒र्न्य॑स्मै द्यु॒म्ना जन्या॑ नमन्ताम् ॥ ६ ॥

यस्मिन् । वयम् । दधिम । शंसम् । इन्द्रे । यः । शिश्राय । मघऽवा । कामम् । अस्मे इति ।
आरात् । चित् । सन् । भयताम् । अस्य । शत्रुः । नि । अस्मै । द्युम्ना । जन्या । नमन्ताम् ॥ ६ ॥

जिस इन्द्रमें हम प्रशंसाको स्थापित कर रहे हैं अर्थात् जिस इन्द्रकी प्रशंसा कर रहे है और जो धनवान् इन्द्र हममें इच्छाको आश्रित करते हैं—अर्थात् हमारी इच्छाको पूर्ण करते हैं। इन इन्द्रदेवका शत्रु इनके पासमें आते ही डरने लगे और दमकता हुआ जनसमूह इनको प्रणाम करे ॥ ६ ॥

आ॒राच्छत्रु॒मप॑ बाधस्व दू॒रमु॒ग्रो यः शम्बः॑ पुरुहूत॒ तेन॑ ।
अ॒स्मे धे॑हि॒ यव॑म॒द् गोम॑दिन्द्र कृ॒धी धियं॑ जरि॒त्रे वाज॑रत्नाम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम दुष्ट गतिवाली दरिद्रतासे आई हुई दुर्बुद्धि को पशुओंके द्वारा तरें, यव आदि धान्यके द्वारा बुभुक्षाका निवारण करें, राजाओंमें स्थित श्रेष्ठ धनको हम प्रतिपक्षी जुआरियों से पराजित न होकर बलकारिणी अक्षशलाकाओंसे जीत लें॥०

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्ऽतरस्मात् । अधरात् । अघऽयोः ।
इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः । वरीयः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

जो हमारी हिंसारूप पापको करना चाहता है उस शत्रुसे बृहस्पतिदेव पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे हमको बचावें, इन्द्रदेव पूर्वदिशाकी ओरसे हमको बचावें, हमारे मित्ररूप बृहस्पति अन्य मित्रोंसे हमको श्रेष्ठ करें ॥ ११ ॥

सप्तम अनुवाकमें अठारहवाँ सूक्त समाप्त (७०५)

तृतीये छन्दोमेऽहनि "यो अद्रिभित्" इत्यस्य विनियोगः "अच्छावाकोऽरणम्" [२०. ८७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा उभयोर्द्वितीयतृतीययोरह्नोरैकाहिकानां सूक्तानां मध्यमस्य आदावन्ते वा "यो अद्रिभित्" [२०. ९०] "इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः" [२०. ९१] इत्येतयोर्यथाक्रमम् एकैकं

शंसति । तदुक्तं वैताने । "यो अद्रिभिद्‌ इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये वा" इति [वै०६.३]॥

तृतीय छन्दोम दिनमें "यो अद्रिभित्" का विनियोग "अश्वर्यवोऽरुणम्" (२० । ८७) के साथ कह दिया है ।

तथा दोनों द्वितीय तृतीय दिनोंके ऐकाहिक सूक्तोंके मध्यम का आदि वा अन्तमें "यो अद्रिभित्" (२० । ६०) "इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः" (२० । ६१) को यथाक्रम एक एक करके कहे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"यो अद्रिभित् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये वा" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

यो अद्रि॒भित्प्र॑थम॒जा ऋ॒ताबा॒ बृह॒स्पति॑राङ्गि॒र॒सो ह॒वि-ष्मा॑न् ।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्रा॑घर्म॒सत् पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति ॥ १ ॥

यः । अ॒द्रि॒ऽभित् । प्र॒थ॒म॒ऽजाः । ऋ॒तऽवा॑ । बृह॒स्पतिः॑ । आ॒ङ्गि॒र॒सः । ह॒विष्मा॑न् ।
द्वि॒बर्ह॑ऽज्मा । प्रा॒घ॒र्म॒ऽसत् । पि॒ता । नः॒ । आ । रोद॑सी॒ इति॑ । वृ॒ष॒भः । रो॒र॒वी॒ति॒ ॥ १ ॥

जो मेघोंको विदीर्ण करने वाले हैं, प्रथम प्रादुर्भूत होने वाले हैं, सत्यसम्पन्न हैं, वह अङ्गिरागोत्री बृहस्पति हविके पात्र हैं, द्विबर्हज्मा हैं, प्राघर्मसत् हैं, पालक हैं, वर्षक हैं और द्युलोक तथा पृथ्वीलोकमें बारम्बार शब्द करते हैं ॥ १ ॥

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं छत्रूंरमित्रान् पृत्सु
साहन् ॥ २ ॥

जनाय । चित् । यः । ईवते । ऊं इति । लोकम् । बृहस्पतिः ।
देवऽहूतौ । चकार ।
घ्नन् । वृत्राणि । वि । पुरः । दर्दरीति । जयन् । शत्रून् । अमि-
त्रान् । पृत्ऽसु । सहन् ॥ २ ॥

जो बृहस्पतिदेव मनुष्योंके लिये चलते हैं और देवहूतिमें जिन्होंने लोकको किया है, वह आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हुए पुरोंका दारण करते हैं, शत्रुओंको जीतते हैं और सेनाओं में शत्रुओंको सहते हैं ॥ २ ॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो
देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वऽरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः
बृहस्पतिः । सम् । अजयत् । वसूनि । महः । व्रजान् । गोऽमतः ।
देवः । एषः ।
अपः । सिसासन् । स्वः । अप्रतिऽइतः । बृहस्पतिः । हन्ति ।
अमित्रम् । अर्कैः ॥ ३ ॥

सप्तमेऽनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

इन बृहस्पति देवने बड़े २ गौओं वाले गोठोंको और धनोंको जीत लिया है, जलोंका दान करनेके लिये वह अप्रतीतरूपमें स्वर्गमें जाते हैं और मन्त्रोंके द्वारा शत्रुका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त (७०६)

सप्तम अनुवाक समाप्त

"इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः" इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥

इमाम् । धियम् । सप्तऽशीर्ष्णीम् । पिता । नः । ऋतऽप्रजाताम् । बृहतीम् । अविन्दत् ।
तुरीयम् । स्वित् । जनयत् । विश्वऽजन्यः । अयास्यः । उक्थम् । इन्द्राय । शंसन् ॥ १ ॥

हमारे पालक बृहस्पतिदेवने सत्यसे उत्पन्न हुई इस सात शिर वाली विशाल बुद्धिको पाया है, और उन विश्वजन्य अयास्यने इन्द्रसे कह कर तुरीयको प्रकट किया है ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त

ऋतम् । शंसन्तः । ऋजु । दीध्यानाः । दिवः । पुत्रासः । असुरस्य । वीराः ।

विप्रम् । पदम् । अङ्गिरसः । दधानाः । यज्ञस्य । धाम । प्रथमम् । मनन्त ॥ २ ॥

सत्य बोलते हुए, सरलताका ध्यान रखते हुए प्राणवलीके वीर्यसे प्रकट हुए दिव्यपुत्र अङ्गिरागोत्री विप्रत्वको धारण करते हैं और यज्ञके धाममें प्रथम माने जाते हैं ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥

हंसैःऽइव । सखिऽभिः । वावदत्ऽभिः । अश्मन्ऽमयानि । नहना । विऽअस्यन् ।

बृहस्पतिः । अभिऽकनिक्रदत् । गाः । उत । प्र । अस्तौत् । उत् । च । विद्वान् । अगायत् ॥ ३ ॥

हंसकी समान भाषण करने वाले अपने मित्रोंसे ओले भरे हुए बंधक (मेघों) को खोलते हुए बृहस्पति वाणियोंका उच्चारण करते समय स्तुतिसी करते हैं और गाते हुए विद्वान्से प्रतीत होते हैं ॥ ३ ॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥

अवः । द्वाभ्याम् । परः । एकया । गाः । गुहा । तिष्ठन्तीः । अनृतस्य । सेतौ ।

बृहस्पतिः । तमसि । ज्योतिः । इच्छन् । उत् । उस्राः । आ । अकः । वि । हि । तिस्रः । आवरित्यावः ॥ ४ ॥

मन्नको दो से फिर एकसे हृदयदेशमें स्थित वाणियोंको मकट करते हैं, और बृहस्पतिदेव अन्धकारमें मकाशको चाहते हुए तीन मकारके मकाशोंको करते हैं ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः

विऽभिद्य । पुरम् । शयथा । ईम् । अपाचीम् । निः । त्रीणि । साकम् । उदऽधेः । अकृन्तत् ।

बृहस्पतिः । उषसम् । सूर्यम् । गाम् । अर्कम् । विवेद । स्तनयन्ऽइव । द्यौः ॥ ५ ॥

आप पुरको विदीर्ण करके पश्चिममें शयन करते हैं और समुद्र के चारों भागोंको नहीं काटते हैं—अर्थात् उनमें वर्षा करते हैं। बृहस्पति द्युलोकको फडकाते हुएसे उषा सूर्य गौ और मन्त्रको माप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।

स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । बलम् । रक्षितारम् । दुघानाम् । करेणऽइव । वि । चकर्त । रवेण ।

स्वेदाञ्जिऽभिः । आऽशिरम् । इच्छमानः । अरोदयत् । पणिम् । आ । गाः । अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रदेव कामदुघा धेनुओंके रक्षक मेघको बलपूर्वक विदीर्ण कर डालते हैं, इन्होंने स्वेदाञ्जियोंसे दधिकी इच्छा करके पणि नामके असुरको रुलाया, कि-जिसने गौएँ चुरा ली थीं ॥६॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ७

सः । ईम् । सत्येभिः । सखिऽभिः । शुचत्ऽभिः । गोऽधायसम् । वि । धनऽसैः । अदर्दरित्यदर्दः ।

ब्रह्मणः । पतिः । वृषऽभिः । वराहैः । घर्मऽस्वेदेभिः । द्रविणम् । वि । आनट् ॥ ७ ॥

वह इन्द्रदेव मित्ररूप यज्ञात्मक धनप्रद मेघों को तापदायक यज्ञोंसे पृथ्वीको पुष्ट करने वाले मेघको विदीर्ण करते हैं, और ब्रह्मणस्पति वर्षक घर्मस्वेद मेघोंके द्वारा धनमें व्याप्त होजाते हैं ७

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः

बृहस्पतिर्मिथोअंवद्यपेभिरुदुस्रियां असृजत स्वयुग्भिः

ते । सत्येन । मनसा । गोऽपतिम् । गाः । इयानासः । इषणयन्त । धीभिः ।

बृहस्पतिः । मिथःऽअवद्यपेभिः । उत् । उस्रियाः । असृजत । स्वयुक्ऽभिः ॥ ८ ॥

वह मेघ सत्य मनसे गोपति-वृषभ और गौओं पर जानेकी इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियोंसे उनको प्राप्त होते हैं और बृहस्पति देव उन स्वयुक् अनवद्यप-प्रशस्त शब्दकी रक्षा करनेवाले मेघोंके द्वारा गौओंमें मिलते हैं ॥ ८ ॥

तं वर्धयंन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानंदतं सधस्थे ।

बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ६

तम् । वर्धयन्तः । मतिऽभिः । शिवाभिः । सिंहम्ऽइव । नानदतम् । सधऽस्थे ।

बृहस्पतिम् । वृषणम् । शूरऽसातौ । भरेऽभरे । अनु । मदेम । जिष्णुम् ॥ ६ ॥

उन यज्ञमें (वा संग्राममें) सिंहकी समान वारम्वार गरजने वाले वर्षक जयशील बृहस्पतिदेवको हम अपनी कल्याणमयी बुद्धियोंसे बढ़ाते हुए प्रत्येक संग्रामके अवसर पर हर्षित करते हैं ६

यदा वाजमसंनद् विश्वरूपमा द्यामरुंक्षदुत्तराणि सद्म

बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥

यदा । वाजम् । असनत् । विश्वऽरूपम् । आ । द्याम् । अरुक्षत् । उत्ऽतराणि । सद्म ।
बृहस्पतिम् । वृषणम् । वर्धयन्तः । नाना । सन्तः । बिभ्रतः । ज्योतिः । आसा ॥ १० ॥

जब यह विश्वरूप–सब प्रकारके रूपों वाले गेहूँ और चावल आदि–अन्नको देना चाहते हैं तब द्युलोकरूपी भवन पर आरूढ़ होते हैं, उस समय अनेक होते हुए और ज्योतिको धारण करते हुए बुद्धिसे वर्षक बृहस्पतिको बढ़ाते हैं ॥ १० ॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधैः कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥

सत्याम् । आऽशिषम् । कृणुत । वयःऽधैः । कीरिम् । चित् । हि । अवथ । स्वेभिः । एवैः ।
पश्चा । मृधः । अप । भवन्तु । विश्वाः । तत् । रोदसी इति । शृणुतम् । विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे ॥ ११ ॥

अन्नको पुष्ट करने वाले कारणोंसे आशीर्वादको सत्य करिये, और अपने गमनोंसे इस स्तोताकी रक्षा करिये, जितने युद्ध हैं सब पीछे होजावें, इस बातको हे द्यावापृथिवी ! आप अन्यर्थिके प्रचण्ड होने पर सुनिये ॥ ११ ॥

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात् स॒प्त सिन्धू॑न् दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ १२ ॥

इन्द्रः॑ । म॒ह्ना । म॒ह॒तः । अ॒र्ण॒वस्य॑ । वि । मू॒र्धान॑म् । अ॒भि॒न॒त् । अ॒र्बु॒दस्य॑ ।
अह॑न् । अहि॑म् । अरि॑णात् । स॒प्त । सिन्धू॑न् । दे॒वैः । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑ । प्र । अ॒व॒त॒म् । नः॒ ॥ १२ ॥

इति अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव अपनी महती महिमासे जल वाले मेघके मस्तकको विदीर्ण कर डालते हैं, वह मेघ पर प्रहार करके दमकती हुई जलविन्दुओंसे सात नदियोंको प्रवाह कर देते हैं। हे द्यावापृथिवी! आप हमारी रक्षा करिये ॥ १२ ॥

अष्टम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७०७)

अतिरात्रे मध्यमे पर्याये "अभि त्वा वृषभा सुते" [२०, २२] "अभि प्र गोपतिं गिरा" [२०, ९२] एतौ स्तोत्रियानुरूपौ उक्थशंसनधर्मकौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "अभि त्वा वृषभा सुतेभि प्र गोपतिं गिरेति स्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४, २]॥

तथा पृष्ठ्यषडहस्य षष्ठेहनि प्रातःसवने "अभि प्र गोपतिं गिरा" इत्येकविंशतिमृचं आवपते । तद् उक्तं वैताने । "षष्ठेभि प्र गोपतिं गिरेत्येकविंशतिः" इति [वै० ६, २] ॥

तथा अभिजिति "अभि प्र गोपतिं गिरा" इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । अभिजित्यभि प्र गोपतिं गिरेति च" इति [वै० ८, २] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः "क ईं वेद सुते सचा" [२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

अतिरात्रके मध्यमपर्यायमें "अभि त्वा वृषभा सुते" (२०।२२) "अभि प्र गोपतिं गिरा" (२० । ९२) ये उक्थशंसनधर्मक स्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"अभि त्वा वृषभा सुतेभि प्र गोपतिं गिरेति स्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

तथा पृष्ठ्यषडहके छठे दिन प्रातःसवनमें "अभि प्र गोपतिं गिरा" इन इक्कीस ऋचाओंको पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि "षष्ठेभि प्र गोपतिं गिरेत्येकविंशतिः" इति (वैतानसूत्र ६।२)

तथा अभिजित्‌में "अभि प्र गोपतिं गिरा" यह आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है कि-अभिजित्यभि प्र गोपतिं गिरेति च" इति (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

अभि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च य॒था॑ वि॒दे । सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ १ ॥

अ॒भि । प्र । गोऽप॑तिम् । गि॒रा । इन्द्र॑म् । अ॒र्च॒ । य॒था॑ । वि॒दे ॥ सू॒नुम् । स॒त्यस्य॑ । सत्ऽप॑तिम् ॥ १ ॥

हे स्तोतः ! गौओंके स्वामी इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर सकूँ अर्थात् वह जिस प्रकार वह हमको अपना समझने लगें तिस प्रकार तू इन्द्रकी श्रेष्ठतासे पूजा कर। यह इन्द्रदेव सत्य फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं, और सत्कर्म करने वाले अपने सेवकोंका पालन करने वाले हैं ॥ १ ॥

आ हर॑यः ससृज्रि॒रेरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑ । यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ २ ॥

आ । हरयः । ससृज्रिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि ॥ यत्र । अभि । सम्ऽनवामहे ॥ २ ॥

रूपवान् हरि नामक घोड़े फैली हुई उन कुशाओं पर इन्द्रके रथको संयुक्त करें, जिन कुशाओं पर हम इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं २

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥

इन्द्राय । गावः । आऽशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ॥ यत् । सीम् । उपऽह्वरे । विदत् ॥ ३ ॥

वज्रयुक्त इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं, उस समय समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादिष्ट सोमको इन्द्र सब ओर से पाते हैं ॥ ३ ॥

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥

उत् । यत् । ब्रध्नस्य । विष्टपम् । गृहम् । इन्द्रः । च । गन्वहि । मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥ ४ ॥

जो ब्रध्नका घर स्वर्ग है उसमें हम और इन्द्र जावें, हम इक्कीस बार मधु पीकर इन्द्रके मित्र बनें ॥ ४ ॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

अर्चत । प्र । अर्चत । प्रियऽमेधासः । अर्चत ।
अर्चन्तु । पुत्रकाः । उत । पुरम् । न । धृष्णु । अर्चत ॥ ५ ॥

हे प्रिय बुद्धि वालों ! आप इन्द्रका पूजन करिये, पूजन करिये श्रेष्ठ रीतिसे पूजन करिये, हे पुत्रो ! तुम इन्द्रका पूजन करो सामने खड़े हुएकी समान उनका अपने शत्रुओंको दबाने वाला पूजन करो ॥ ५ ॥

अर्व स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥

अव । स्वराति । गर्गरः । गोधा । परि । सनिस्वनत् ।
पिङ्गा । परि । चनिस्कदत् । इन्द्राय । ब्रह्म । उत्ऽयतम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रके लिये मन्त्र उद्यत होता है तब गर्गर–कलश–शब्द करता है, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी समान शब्द करता है और पिशंग वर्ण वाला पदार्थ चलता है ॥ ६ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

आ । यत् । पतन्ति । एन्यः । सुऽदुघाः । अनपऽस्फुरः ।
अपऽस्फुरम् । गृभायत । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥ ७ ॥

ये जो श्वेत वर्णकी गौएँ आरही हैं (इनमें) अनपस्फुर-अविनाशी (नष्ट न होने देवे वाला) पदार्थ है उस अविनाशी पदार्थ को ग्रहण करो सोमको इन्द्रके पानके लिये ग्रहण करो ॥ ७ ॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥

अपात् । इन्द्रः । अपात् । अग्निः । विश्वे । देवाः । अमत्सत ।

वरुणः । इत् । इह । क्षयत् । तम् । आपः । अभि । अनूषत ।

वत्सम् । संशिश्वरीःऽइव ॥ ८ ॥

इसको इन्द्रदेवने पीलिया है, अग्निदेवने इसका पान कर लिया है, विश्वेदेवता इस सोमका पान करके मदमें भर गए हैं, हे जलो ! यदि वरुण यहाँ निवास करते हैं तो संशिश्वरीके वत्सकी समान उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।

अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥

सुऽदेवः । असि । वरुण । यस्य । ते । सप्त । सिन्धवः ।

अनुऽक्षरन्ति । काकुदम् । सूर्म्यम् । सुषिराम्ऽइव ॥ ९ ॥

हे वरुणदेव ! आप शोभन देवता हैं, क्योंकि—आपके पास अश्वा, विद्युता, अभ्रवती, मेघपत्ना, वर्षयन्ती और पुरस्तात् मरुन्धा नाम वाली सात अन्तरिक्ष नदियें (वा सात समुद्र) हैं। जैसे ऊँचे स्थानका जल नगरके जल निकलनेकी भूमिकी ओर दौड़ता है, इसी प्रकार वे नदियें जल बहाती हैं ॥ ९ ॥

यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।

तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१०॥

यः । व्यतीन् । अफाणयत् । सुऽयुक्तान् । उप । दाशुषे ।

तक्वः । नेता । तत् । इत् । वपुः । उपऽमा । यः । अमुच्यत १०

जो हविदाता यजमानके लिये सुयुक्त ज्योतियोंको फाणित करते हैं, तत्र हैं, नेता हैं, जो छूट गए हैं उनकी शरीर उपमा है

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

अति । इत् । ऊं इति । शक्रः । ओहते । इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विषः ।
भिनत् । कनीनः । ओदनम् । पच्यमानम् । परः । गिरा ॥११॥

इन्द्रदेव इस बड़े भारी भारको सम्हालते हैं, इन्द्रदेव समस्त शत्रुओंको दबा देते हैं, इन्होंने कनीन होने पर भी मन्त्रसे पकते हुए ओदनको भेद डाला था ॥ ११ ॥

अर्भको न कुमारकोधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२॥

अर्भकः । न । कुमारकः । अधि । तिष्ठत् । नवम् । रथम् ।
सः । पक्षत् । महिषम् । मृगम् । पित्रे । मात्रे । विभुऽक्रतुम् १२

श्रेष्ठ बालककी समान वह नवीन रथ पर सवार होते हैं और माता पिता (द्यावापृथिवी) के लिये विभुक्रतु महिष और मृग का पचन करते हैं ॥ १२ ॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्

आ । तु । सुऽशिप्र । दम्ऽपते । रथम् । तिष्ठ । हिरण्ययम् ।

अध । सुऽरथम् । सचेवहि । सहस्रऽपादम् । अरुषम् । स्वस्तिऽगाम् । अनेहसम् ॥१३ ॥

हे सुन्दर ठोड़ी वाले दम्पते इन्द्र ! आप सुवर्णके रथ पर अधिष्ठित हूजिये और हम भी फिर सहस्रों मार्ग वाले, रूपवान् स्वस्तिमय वाणियोंसे सम्पन्न निष्पाप स्वर्ग पर आरूढ़ होवें १३

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने १४

तम् । घ । ईम् । इत्था । नमस्विनः । उप । स्वऽराजम् । आसते । अर्थम् । चित् । अस्य । सुऽधितम् । यत् । एतवे । आऽवर्तयन्ति । दावने ॥ १४ ॥

उनको इस प्रकार जान कर प्रणामकरने वाले पुरुष स्वराज पर बैठते हैं, और इनके पास जो धन भली प्रकार स्थित है उस को ऋत्विज हविर्दाता यजमानके लिये लाते हैं ॥ १४ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत १५

अनु । प्रत्नस्य । ओकसः । प्रियऽमेधासः । एषाम् । पूर्वाम् । अनु । प्रऽयतिम् । वृक्तऽबर्हिषः । हितऽप्रयसः । आशत

इनके प्राचीन भवनके प्रियबुद्धि ऋत्विज हितकारक अन्न वाले होकर पूर्वा प्रयतिका उपभोग लगाते हैं ॥ १५ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १६

यः । राजा । चर्षणीनाम् । याता । रथेभिः । अध्रिऽगुः ।
विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रऽहा । गृणे

जो मनुष्योंके राजा इन्द्रदेव रथसे चलते हैं । सम्पूर्ण सेनाओं को तरने वाले हैं और ज्येष्ठ हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ १६

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भ । पुरुऽहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । विऽधर्तरि ।
हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ १७ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् १८

नकिः । तम् । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदाऽवृधम् ।
इन्द्रम् । न । यज्ञैः । विश्वऽगूर्तम् । ऋभ्वसम् । अधृष्टम् । धृष्णुऽओजसम् ॥ १८ ॥

जो पुरुष यज्ञोंके द्वारा, सब कार्योंमें प्रचण्ड बली, सदा वृद्धि करने वाले, ऋभ्वस, अधृष्ट और धर्षक तेज वाले इन्द्रकी सेवा करता है, कोई पुरुष उसको अपने कर्मसे नष्ट नहीं कर सकता १८

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः

अषाळ्हम् । उग्रम् । पृतनासु । ससहिम् । यस्मिन् । महीः । उरुऽज्रयः

सम् । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । द्यावः । क्षामः । अनोनवुः

जो इन्द्रदेव सेनाओंमें असह्य हैं, और प्रचण्ड हैं, जिनमें विशाल शरण मार्ग हैं, जिनके प्रकट होने पर वाणियें भली प्रकार स्तुति करती हैं, द्युलोक और पृथिवीलोक स्तुति करते हैं (उन इन्द्रकी तुम स्तुति करो) ॥ १९ ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी

यत् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत । स्युरिति स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् । अष्ट । रोदसी इति ॥ २० ॥

हे भगवन् ! इन्द्र ! यदि सैंकड़ों द्युलोक और सैंकड़ों भूलोक हों वा सहस्रों सूर्य और द्यावापृथिवी होजावें तथापि आप प्रादुर्भूत हुए मात्रको भी वह नहीं पहुँच सकते ॥ २० ॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा

असमाँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरू-
तिभिः ॥ २१ ॥

आ । पमाय । महिना । वृष्ण्या । वृषन् । विश्वा । शविष्ठ । शवसा ।
अस्मान् । अव । मघऽवन् । गोऽमति । व्रजे । वज्रिन् । चित्राभिः । ऊतिऽभिः ॥ २१ ॥

इति अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् वर्षक इन्द्र ! हमारे गौओं वाले व्रज में अपनी विचित्र रक्षक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और अपनी महिमासे हमको बलपूर्वक बढ़ाइये ॥ २१ ॥

अष्टम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७०८)

दशरात्रे दशमेऽहनि "उद् त्वा मन्दन्तु" इति आज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "उद् त्वा मन्दन्त्वित्याज्यस्तोत्रियः" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु "सुरूपकृत्नुमूतये" [२०. ५७] "उद् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः" [२०. ६३] "त्वामिद्धि हवामहे" [२०. ९८] इत्याद्यावाज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तृतीयः पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमूतय उद् त्वा मन्दन्तुस्तोमास्त्वामिद्धि हवामह इति" इति [वै० ८. १] ॥

महाव्रते प्रातःसवने "ईङ्खयन्तीरपस्युवः" [२०. ९३. ४] इति पञ्चर्चं सूक्तम् आवापस्थाने आवपेत । तद् उक्तं वैताने । "ईङ्खयन्तीरपस्युव इत्यावपेत" इति [वै० ६. ४] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें "उत् त्वा मदन्तु" यह आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"उत् त्वा मदन्त्वित्याज्यस्तोत्रियः" (वैतानसूत्र ६। ३)॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोंमें "सुरूपकृत्नुमूतये" (२०। ५७) "उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः" (२०। ६३।) "त्वामिद्धि हवामहे" (२०। ६८) ये विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं। तृतीय पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमूतय उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वमिद्धि हवामहे" (वैतानसूत्र ८। १)॥

महाव्रतके प्रातःसवनमें "ईङ्खयन्तीरपस्युवः" (२०। ६३। ४) इस पञ्चर्च सूक्तको आवापस्थानमें पढ़ा जाता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"ईङ्खयन्तीरपस्युव इत्यावपते" (वैतानसूत्र ६। ४)॥

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

उत्। त्वा। मन्दन्तु। स्तोमाः। कृणुष्व। राधः। अद्रिऽवः॥ अव। ब्रह्मऽद्विषः। जहि॥ १॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र! यह स्तोत्र आपको आनन्द देवें, आप हमें धन प्रदान करिये और ब्रह्मद्वेषियोंका संहार करिये ॥१॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

पदा। पणीन्। अराधसः। नि। बाधस्व। महान्। असि॥ नहि। त्वा। कः। चन। प्रति॥ २॥

आप पणि नामक असुरोंको निर्धन करके उनका संहार करिये, क्योंकि-आप महान् हैं, आपसे टक्कर लेने वाला कोई नहीं है २

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

त्वम् । ईशिषे । सुतानाम् । इन्द्र । त्वम् । असुतानाम् ॥ त्वम् । राजा । जनानाम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभिषुत और अनभिषुत (निचोड़े और न निचोड़े हुए) सोमोंके ईश्वर हैं और जनोंके ईश्वर हैं ॥३॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

ईङ्खयन्तीः । अपस्युवः । इन्द्रम् । जातम् । उप । आसते ॥ भेजानासः । सुऽवीर्यम् ॥ ४ ॥

सुन्दर शक्तिका सेवन करती हुई जल चाहती हुई सोमात्मक ओषधियें प्रकट होते ही इन्द्रकी उपासना करने लगती हैं ॥४॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥

त्वम् । इन्द्र । बलात् । अधि । सहसः । जातः । ओजसः ॥ त्वम् । वृषन् । वृषा । इत् । असि ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! धर्षक ओजके बलसे प्रकट हुए हैं , हे वृषन् ! आप फलोंकी वर्षा करने वाले ही हैं ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यं१न्तरिक्षमतिरः।उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । वृत्रऽहा । वि । अन्तरिक्षम् । अतिरः ॥ उत् । द्याम् । अस्तभ्नाः । ओजसा ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्र (असुर वा मेघ) का संहार करने वाले हैं और आप अन्तरिक्षको विशिष्टतासे पार कर जाते हैं और आप अपने ओजसे द्युलोकको स्तम्भित कर डालते हैं ॥ ६ ॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः।वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

त्वम् । इन्द्र । सऽजोषसम् । अर्कम् । बिभर्षि । बाह्वोः ॥ वज्रम् । शिशानः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रीति उत्पन्न करने वाले मन्त्रको धारण करके अपनी भुजाओंके बलसे वज्रको तीक्ष्ण करके धारण करते हैं ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा।स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिऽभूः । असि । विश्वा । जातानि । ओजसा ॥ सः । विश्वाः । भुवः । अभवः ॥ ८ ॥

इति अष्टमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जितने प्रकट होने वाले पदार्थ हैं उनको आप अपने बलसे दबा सकते हैं, वह आप (हमारे विरुद्ध) प्रकट होने वाली सब शक्तियोंका पराभव करिये ॥ ८ ॥

अष्टम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (७०६)

तृतीये छन्दोमेऽहनि "आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय" इत्यस्य "अध्वर्यवोऽरुणम्" [२०. ८७] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तृतीय छन्दोम दिनमें "आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय" इसका "अध्वर्यवोऽरुणम्" (२०।८७) के साथ विनियोग कह दिया है

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन

आ । यातु । इन्द्रः । स्वऽपतिः । मदाय । यः । धर्मणा । तूतुजानः । तुविष्मान् ।
प्रऽत्वक्षाणः । अति । विश्वा । सहांसि । अपारेण । महता । वृष्ण्येन ॥ १ ॥

बलवान् इन्द्र कि-जो धर्मसे शीघ्रता करते हैं, वह धनपति इन्द्र मदके लिये आवें, और अपने अपार महान् वर्षक बलसे सब दबाने वालोंको क्षीण करें ॥ १ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ शीभं राजन् सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

सुऽस्थामा । रथः । सुऽयमा । हरी इति । ते । मिम्यत्त । वज्रः ।

नृऽपते । गभस्तौ ।

शीभम् । राजन् । सुऽपथा । आ । याहि । अर्वाङ् । वर्धाम ।

ते । पपुषः । वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

आपके रथमें बैठनेका स्थान अच्छा है, आपके घोड़े भली प्रकार वशमें रहने वाले हैं । हे नृपते ! आपके हाथमें वज्र प्राप्त होता है हे राजन् ! आप स्वर्गसे नीचेको सुन्दर मार्गसे आइये हम आप पान करनेकी इच्छा वालेके अभिवर्षक बलोंको बढ़ाते हैं २

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ३

आ । इन्द्रऽवाहः । नृऽपतिम् । वज्रऽबाहुम् । उग्रम् । उग्रासः ।

तविषासः । एनम् ।

प्रऽत्वक्षसम् । वृषभम् । सत्यऽशुष्मम् । आ । ईम् । अस्मऽत्रा ।

सधऽमादः । वहन्तु ॥ ३ ॥

इन्द्रको सवारी देनेवाले उग्र बलवान् घोडे इन नृपति, भुजाओं में वज्रको धारण करने वाले, उग्र शत्रुओंको क्षीण करने वाले, फलवर्षक, सत्यबली इन्द्रको इस यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।

ओजः॑ कृष्व सं गृ॑भाय त्वे अप्यसो यथा॑ केनिपानां॑

मिनो वृधे ॥ ४ ॥

एत । पतिम् । द्रोणऽसाचम् । सऽचेतसम् । ऊर्जः । स्कम्भम् । धरुणे । आ । वृषऽयसे ।

ओजः । कृष्व । सम् । गृभाय । त्वे इति । अपि । असः । यथा । केऽनिपानाम् । इनः । वृधे ॥ ४ ॥

(हे ऋत्विज !) द्रोण नामक पात्रसे संयुक्त होने वाले, ज्ञानवान, बली, स्कंभ इन्द्रको आप जलमें बरसाइये, आप बल प्रदान करिये, मुझको भली प्रकार ग्रहण करिये, मैं केनिपानोंकी वृद्धि के लिये आपमें होऊँ ॥ ४ ॥

गमं॑न्नस्मे वसू॒न्या हि शंसि॑षं स्वाशि॒षं भर॒मा या॑हि सोमि॑नः ।

त्वमी॑शिषे सो॒स्मिन्ना स॑त्सि ब॒र्हिष्य॑नाधृष्या तव॑ पात्रा॑णि धर्म॑णा ॥ ५ ॥

गमन् । अस्मे इति । वसूनि । आ । हि । शंसिषम् । सुऽआशिषम् । भरम् । आ । याहि । सोमिनः ।

त्वम् । ईशिषे । सः । अस्मिन् । आ । सत्सि । बर्हिषि । अनाधृष्या । तव । पात्राणि । धर्मणा ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस यजमानमें धनको प्राप्त कराइये, इस मन्त्र-पाठ करने वालेको सुन्दर आशीर्वाद सम्पन्न करिये और इस सोम वाले यजमानके घरमें आइये, आप ईश्वर हैं अतः इस कुशासन पर बैठिये, धारण शक्तिके कारण आपके पात्र अतृप्य हैं ५

पृथक् प्रायंन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहंमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः

पृथक्। प्र। आयन्। प्रथमाः। देवऽहूतयः। अकृण्वत। श्रवस्यानि।
दुस्तरा।
न। ये। शेकुः। यज्ञियाम्। नावम्। आरुऽहम्। ईर्मा। एव।
ते। नि। अविशन्त। केपयः ॥ ६ ॥

जो विद्या और कर्मके अनुरूप पृथक् २ देवयान वा पितृ-यानसे प्रयाण करना चाहते हैं और जो सर्व साधारणसे कठिनतासे करने योग्य देवहूति यज्ञोंको करते हैं किन्तु आपकी कृपादृष्टि न होने पर वे यज्ञरूपी नौका पर नहीं चढ़ सकते और यज्ञरूपी नौका पर न चढ़नेके कारण वे कुपूय कर्मको ही करते हैं अतः कर्मानुसार इसी लोककी किसी योनिमें पड़े रहते हैं ६

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योश्वा येषां दुर्युजं आयुयुज्रे।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावनें पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥

एव। एव। अपाक्। अपरे। सन्तु। दुःऽध्यः। अश्वाः। येषाम्।
दुःऽयुजः। आऽयुयुज्रे।

इत्था । ये । प्राक् । उपरे । सन्ति । दावने । पुरूणि । यत्र ।
वयुनानि । भोजना ॥ ७ ॥

दूसरे दुःध्य अश्व अपाक् रहें, कि-जिनको दुर्युन संयुक्त करते हैं, और जो दाताके लिये जिनमें बहुतसे श्रेष्ठ भोजन भरे हुए हैं वे मेघ होवें ॥ ७ ॥

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

गिरीन् । अज्रान् । रेजमानान् । अधारयत् । द्यौः । क्रन्दत् ।
अन्तरिक्षाणि । कोपयत् ।
समीचीने इति सम्ऽईचीने । धिषणे इति । वि । स्कभायति ।
वृष्णः । पीत्वा । मदे । उक्थानि । शंसति ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव इस वर्षक सोमके रसको पीकर मद होने पर श्रेष्ठ २ पर्वतोंको धारण करते हैं, द्युलोकको क्रन्दित करते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थोंको कुपित करते हैं, समीचीन द्यावापृथिवीको विष्कभित करते हैं, और उक्थोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥ ९ ॥

इमम् । बिभर्मि । सुऽकृतम् । ते अङ्कुशम् । येन । आऽरुजासि ।
मघऽवन् । शफऽआरुजः ।
अस्मिन् । सु । ते । सवने । अस्तु । ओक्यम् । सुते । इष्टौ ।
मघऽवन् । बोधि । आऽभगः ॥ ९ ॥

हे मघवन् ! मैं आपके इस सुकृत अंकुशको धारण कर रहा हूँ,जिससे आप नाखूनोंसे (वा खुरोंसे) पीड़ा देनेवाले प्राणियों का नाश करते हैं, इस सवनमें आपका ओक्य होवे, और सोम का अभिषव होने पर आप धनको समझें ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम

गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःऽएवाम् । यवेन । क्षुधम् । पुरुऽहूत ।
विश्वाम् ।
वयम् । राजऽभिः । प्रथमाः । धनानि । अस्माकेन । वृजनेन । जयेम

हे अनेक यजमानोंसे आह्वान किये हुए इन्द्र ! हम आपसे अनुग्रह पाते हुए यजमान, आपकी दी हुई गौओंसे दुर्गति—दरिद्रताके पार पहुँच जावें और आपके दिये हुए यव व्रीहि आदिसे पुत्र भृत्य आदि सबकी क्षुधाको दूर करें, और आपके अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें मुख्य बने हुए हम उनसे धन प्राप्त करें और अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्ऽतरस्मात् । अध॒-
रात् । अघऽयोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः ।
वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति अष्टमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

बृहस्पति देवता पश्चिम दिशाकी ओरसे आते हुए हिंसक पुरुष से हमारी भली भाँति रक्षा करें, उत्तर दिशासे तथा दक्षिण दिशासे आते हुए हिंसक पुरुषसे भी हमारी रक्षा करें, इन्द्र-देवता पूर्वदिशासे और मध्य दिशासे हमको भली भाँति बचावें, इस प्रकार रक्षा करके मित्र बने हुए इन्द्र मित्र बने हुए हमको धन प्रदान करें ॥ ११ ॥

अष्टम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (७१०)

महाव्रते "त्रिकद्रुकेषु महिषः" [२०. ९५. १] "प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्" [२०. ९५. २] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । त्रिकद्रुकेषु महिषः प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिति स्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ६. ४]॥

महाव्रतमें "त्रिकद्रुकेषु महिषः" (२० । ९५ । १) "प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्" (२० । ९५ । २) ... हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें ... प्रो ष्वस्मै पुरो रथमिति स्तो...

करते हैं ॥ ८ ॥

...र्यं येनारुजासि मघवंच्छारुजः

त्रिकद्रुकेषु महिषो यव... ...ोक्थं सुत इष्टो मंदवन् वोध्या-

पिबद् विष्णुना सु...

स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

त्रिऽकद्रुकेषु । महिषः । यवऽआशिरम् । तुविऽशुष्मः । तृपत् । सोमम् । अपिबत् । विष्णुना । सुतम् । यथा । अवशत् । सः । ईम् । ममाद । महि । कर्म । कर्तवे । महाम् । उरुम् । सः । एनम् । सश्चत् । देवः । देवम् । सत्यम् । इन्द्रम् । सत्यः । इन्दुः १

परमबली राजा इन्द्र त्रिकद्रुक सोमयागोंमें जौ मिले हुए पदार्थ से तृप्त होते हैं, सोमका पान करते हैं, विष्णुके निचोड़े हुए सोमको वशमें करते हैं, वह सोम विशाल कर्म करनेके लिये इन इन्द्रको मदमें भर देता है, यह सत्य सोम देव इन विशाल सत्यदेव इन्द्रसे संयुक्त होना है ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु २

प्रो इति । सु । अस्मै । पुरःऽरथम् । इन्द्राय । शूषम् । अर्चत । अभीके [illegible] भृत्य आदि सत.. [illegible] ति । लोकऽकृत् । सम्ऽगे । समत्ऽसु । [illegible] अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें मुखि [illegible] धि । चोदिता । नभन्ताम् । अन्यके- करें और अपने बलसे शत्रुओंको जन्वऽस्तु ॥ २ ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरो, रथके आगे रहने वाले इन इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा [illegible] में लोककर्ता है, संग्राममें आव-

रक शत्रुओंका नाश करने वाले हैं, यह मेरक देव हमारे स्तोत्रों को जान गए हैं, दूसरे पुरुषों की मत्यश्चाएँ धनुष पर न चढ़सकें २

त्वं सिन्धूँरवासृजोधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परिं ष्वजामहे नभं० ॥ ३ ॥

त्वम् । सिन्धून् । अव । असृजः । अधराचः । । अहन् । अहिम् । अशत्रुः । इन्द्र । जज्ञिषे । विश्वम् । पुष्यसि । वार्यम् । तम् । त्वा । परि । स्वजामहे ।० ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियोंको दक्षिणकी ओर जाने वाली करके रचा है, और आपने मेघ वा वृत्रासुरका संहार किया है, हे इन्द्रदेव ! आप शत्ररहित होते हुए प्रकट होते हैं, सब वरण करने योग्य पदार्थोंको पुष्ट करते हैं ऐसे आपका हम आलिंगन करते हैं दूसरोंकी मत्यश्चाएँ धनुषों पर न चढ़ सकें ॥ ३ ॥

वि षु विश्वा अरातयोर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो नं इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु

वि । सु । विश्वाः । अरातयः । अर्यः । नशन्तः । नः । धियः । अस्ता । असि । शत्रवे । वधम् । यः । नः । इन्द्र । जिघांसति । या । ते । रातिः । ददिः । वसु । नभन्ताम् । अन्यकेषाम् । ज्याकाः । अधि । धन्वऽसु ॥ ४ ॥

इति अष्टमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं, अतः हमारे जो सम्पूर्ण शत्रु हैं, उनकी बुद्धियें नष्ट होजावें, हे इन्द्र ! जो शत्रु हमको मारना चाहता है आप उस शत्रु पर मृत्युके साधन वज्रको फैंकिये आपका जो धन है उस धनको हमें प्रदान करिये, आपके अनुग्रहसे शत्रुओंकी प्रत्यञ्चाएँ धनुष पर न चढ़ सकें ॥ ४ ॥

अष्टम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (७११)

महाव्रते माध्यन्दिने सवने "तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि" इत्येताश्चतुर्विंशतिम् ऋचः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । "तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते" इति [वै० ६. ४] ॥

महाव्रतके माध्यन्दिनसवनमें "तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि" इन चौबीस ऋचाओंको आवापस्थानमें पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते" (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

तीव्रस्य । अभिऽवयसः । अस्य । पाहि । सर्वऽरथा । वि । हरी इति । इह । मुञ्च ।

इन्द्र । मा । त्वा । यजमानासः । अन्ये । नि । रीरमन् । तुभ्यम् । इमे । सुतासः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस तीव्र हविरूप अन्नके अभिमुख रहने वाले यजमानके सब रथियोंकी रक्षा करिये और इस यज्ञमें

अपने घोड़ोंको छोड़िये, हे इन्द्र ! दूसरे यजमान आपको अधिक रमण न करा सकें, क्योंकि-आपके लिये इन सोमोंका अभिषव होचुका है ॥ १ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥

तुभ्यम् । सुताः । तुभ्यम् । ऊं इति । सोत्वासः । त्वाम् । गिरः । श्वात्र्याः । आ । ह्वयन्ति ।
इन्द्र । इदम् । अद्य । सवनम् । जुषाणः । विश्वस्य । विद्वान् । इह । पाहि । सोमम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम आपके लिये निचोड़े गए हैं, आपके लिये ही सोत्वास् (निचोड़े गए) हैं, ये वाणियें शीघ्रता करती हुई आपका ही आह्वान कर रही हैं, हे इन्द्र ! आप सबको जानने वाले हैं अतः आज इस सवनका सेवन करके इस सोमका पान करिये ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥

यः । उशता । मनसा । सोमम् । अस्मै । सर्वऽहृदा । देवऽकामः । सुनोति ।

न । गाः । इन्द्रः । तस्य । परा । ददाति । मऽशस्तम् । इत् । चारुम् । अस्मै । कृणोति ॥ ३ ॥

देवताओंकी कामना वाला जो पुरुष कामना करते हुए पूर्ण मनसे इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव करता है, इन्द्रदेव उसकी स्तुतियोंको नहीं लौटाते–ग्रहण कर लेते है–और इसके लिये सुन्दर और श्रेष्ठ बातको करते है ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः

अनुऽस्पष्टः । भवति । एषः । अस्य । यः । अस्मै । रेवान् । न । सुनोति । । सोमम् ।
निः । अरत्नौ । मघऽवा । तम् । दधाति । ब्रह्मऽद्विषः । हन्ति । अनुनुऽदिष्टः ॥ ४ ॥

जो धनवान् पुरुष इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव नहीं करता है वह इन इन्द्रदेवसे अनुस्पष्ट होता है,इन्द्रदेव उसको अपने मुक्केमें धरते हैं और इन्द्रके निमित्त हवि न देनेसे वह उन ब्रह्मद्वेषियोंको मार डालते हैं ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उं ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम

अश्वऽयन्तः। गव्यन्तः। वाजयन्तः। हवामहे। त्वा। उपऽगन्तवै।

उं इति।

आऽभूषन्तः। ते। सुऽमतौ। नवायाम्। वयम्। इन्द्र। त्वा।

शुनम्। हुवेम॥ ५॥

घोड़े गौ और अन्नको चाहते हुए हम आपकी शरण लेनेके लिये आपका आह्वान करते हैं, हम आपकी नवीन सुमतिमें विभूषित होते हुए आप सुखरूपका आह्वान करते हैं॥ ५॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्

मुञ्चामि। त्वा। हविषा। जीवनाय। कम्। अज्ञातऽयक्ष्मात्।

उत। राजऽयक्ष्मात्।

ग्राहिः। जग्राह। यदि। एतत्। एनम्। तस्याः। इन्द्राग्नी इति।

प्र। मुमुक्तम्। एनम्॥ ६॥

हे रोगिन्! मैं तुझको जीवित रहनेके लिये हविके द्वारा अज्ञातयक्ष्मा और राजयक्ष्मा रोगसे छुड़ाता हूं, यदि ग्राहिका पिशाचीने इसको पकड़ लिया हो तो हे इन्द्र और अग्निदेवताओं! तुम इस रोगीको उसके पाससे मुक्त करो॥ ६॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।

तमा हंरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ७

यदि । क्षितऽआयुः । यदि । वा । पराऽइतः । यदि । मृत्योः ।
अन्तिकम् । निऽइतः । एव ।

तम् । आ । हरामि । निःऽऋतेः । उपऽस्थात् । अस्पार्शम् ।
एनम् । शतऽशारदाय ॥ ७ ॥

यदि इसकी आयु क्षीण होगई है, यह बड़ा ही गया बीता हुआ होगया है, वा मृत्युके पास ही पहुँच चुका है, तब भी मैं इसको निर्ऋति राक्षसीकी गोदमेंसे खेंचता हूँ, मैंने सौ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेके लिये इसका स्पर्श कर लिया है ॥७॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥

सहस्रऽअक्षेण । शतऽवीर्येण । शतऽआयुषा । हविषा । आ ।
अहार्षम् । एनम् ।

इन्द्रः । यथा । एनम् । शरदः । नयाति । अति । विश्वस्य ।
दुःऽइतस्य । पारम् ॥ ८ ॥

सैंकड़ों प्रकारके वीर्य और सहस्रों प्रकारकी सूक्ष्मदृष्टि और सौ वर्षकी आयु (प्रदान करने) वाली हविसे मैं इस रोगीको मृत्युसे हर लाया हूँ, इन्द्रदेव इसको वर्षों तक सब पापोंके पार पहुँचावें ॥ ८ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ६ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् । ऊं इति । वसन्तान् ।
शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा । हविषा । आ । अहार्षम् । एनम् ॥ ६ ॥

हे रोगिन् ! तू सौ वर्ष तक जीवित रह, सौ वर्ष तक बढ़ता रह, सौ हेमन्त और वसन्त ऋतुओं तक रह, इन्द्र अग्नि सविता और बृहस्पति देवता तुझको सौ वर्षकी आयु प्रदान करें, मैं सौ वर्षकी आयु देने वाली हविसे इसको ले आया हूँ ॥ ६ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् ॥ १० ॥

आ । अहार्षम् । अविदम् । त्वा । पुनः । आ । अगाः । पुनःऽनवः ।
सर्वऽअङ्ग । सर्वम् । ते । चक्षुः । सर्वम् । आयुः । च । ते । अविदम् ॥ १० ॥

मैं तुझको लौटाया हुआ समझता हूँ, तू फिर आ, फिर नवीन हो, हे सर्वाङ्ग ! मैंने तेरी चक्षु और पूर्ण आयुको इस कर्मके प्रभावसे पा लिया है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

ब्रह्मणा । अग्निः । सम्ऽविदानः । रक्षःऽहा । बाधताम् । इतः ।
अमीवा । यः । ते । गर्भम् । दुःनामा । योनिम् । आऽशये ११

राक्षसोंका संहार करने वाले अग्निदेव मन्त्रसे संयुक्त होते हुए उसको यहाँसे बाधा दे जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ योनिमें शयन कर रहा है ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२॥

यः । ते । गर्भम् । अमीवा । दुःऽनामा । योनिम् । आऽशये ।
अग्निः । तम् । ब्रह्मणा । सह । निः । क्रव्यऽअदम् । अनीनशत् १२

जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ और योनिमें शयन कर रहा है उन स्थानोंको अग्निदेव मन्त्रकी सहायतासे कच्चे मांस का भक्षण करने वाले रोगसे रहित करके उस रोगको ही नष्ट कर डालें ॥ १२ ॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३॥

यः । ते । हन्ति । पतयन्तम् । निऽसत्स्नुम् । यः । सरीसृपम् ।
जातम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १३

जो तेरे गिरते हुए, सरकते हुए निषस्नु वा निकलते हुए गर्भको मारना चाहता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ।१३।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि ॥१४॥

यः । ते । ऊरू इति । विऽहरति । अन्तरा । दम्पती इति दम्ऽपती । शये ।
योनिम् । यः । अन्तः । आऽरेल्हि । तम् । इतः । नाशयामसि १४·

जो रोग वा भूत राक्षस, तेरी ऊरुओंमें विहार करता है तुम दोनों दम्पतियोंमें शयन करता है जो योनिके भीतर आलेहन करता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५॥

यः । त्वा । भ्राता । पतिः । भूत्वा । जारः । भूत्वा । निऽपद्यते ।
प्रऽजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १५

जो भूत वा राक्षस तुझको भाई, पति, वा जार बनकर प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तानको नष्ट करना चाहता है, उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १५ ॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१६॥

यः । त्वा । स्वप्नेन । तमसा । मोहयित्वा । निऽपद्यते ।

प्रऽजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १६

जो पुरुष तुझको स्वप्नके अँधेरेसे मोहमें डाल कर प्राप्त हो-जाता है और जो तेरी प्रजाको नष्ट करना चाहता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७

अक्षीभ्याम् । ते । नासिकाभ्याम् । कर्णाभ्याम् । छुबुकात् । अधि ।
यक्ष्मम् । शीर्षण्यम् । मस्तिष्कात् । जिह्वायाः । वि । वृहामि । ते १७

मैं तेरे नेत्रोंसे, तेरी नाकके दोनों नथुनोंसे, दोनों कानोंसे, तेरी ठोड़ीसे यक्ष्मा रोगको, और मस्तिष्कमें होने वाले शीर्षण्य रोगको मस्तिष्कसे और जिह्वासे निकालता हूँ ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८

ग्रीवाभ्यः । ते । उष्णिहाभ्यः । कीकसाभ्यः । अनूक्यात् ।
यक्ष्मम् । दोषण्यम् । अंसाभ्याम् । बाहुऽभ्याम् । वि । वृहामि । ते१८

हे व्याधिग्रस्त ! तेरी ग्रीवा (गरदन) की चौदह सूक्ष्म नाड़ियों से मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और रक्तप्रवाहके कारण ऊपर को स्नान कराने वाली स्निग्ध उष्णिह नामकी नाड़ियोंसे, हँसली और वक्षःस्थलकी नाड़ियोंसे, तथा जिसमें क्रमशः अस्थियें मिलती हैं उस अनूक्यसे मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ, तथा तेरे कंधे और भुजाओंसे मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ १८

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृंहामसि १६

हृदयात् । ते । परि । क्लोम्नः । हलीक्ष्णात् । पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मम् । मतस्नाभ्याम् । प्लीह्नः । यक्नः । ते । वि । वृहामसि १६

हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदयकमलसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और हृदयके समीप स्थित क्लोम (मूत्राधार-मसाने) से तथा हलीक्ष्ण नामक मांसपिण्डसे दोनों पसलियोंसे, दोनों पित्ताधार पात्रोंसे और उदर तथा पसलियोंमें स्थित श्येन पक्षीकी समान आकार वाले प्लीहा (तिल्ली) से और हृदयके समीपमें स्थित यकृत् (जिगर) से भी मैं राजयक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ १६

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृंहामि ते ॥२०॥

आन्त्रेभ्यः । ते । गुदाभ्यः । वनिष्ठोः । उदरात् । अधि ।
यक्ष्मम् । कुक्षिऽभ्याम् । प्लाशेः । नाभ्याः । वि । वृहामि । ते २०

हे यक्ष्मारोगसे ग्रसे हुए ! मैं तेरी अँतड़ियोंसे, मल और मूत्रके सरकनेके स्थानोंसे, मोटी आँतसे और इन सबके आधार उदरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ, तथा तेरी दाईं बाईं कोखों से और अनेक छिद्र वाले मलपात्र प्लाशिसे तथा नाभिमण्डल से तेरे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृंहामि ते

ऊरुऽभ्याम् । ते । अष्ठीवत्ऽभ्याम् । पार्ष्णिऽभ्याम् । प्रऽपदाभ्याम् । यक्ष्मम् । भसद्यम् । श्रोणिऽभ्याम् । भासदम् । भंससः । वि । वृहामि । ते ॥ २१ ॥

मैं तेरी ऊरुओंसे, जानुओंसे, पैरोंके अपरभागसे और पैरोंके अग्रभागसे यक्ष्मारोगको अलग करता हूँ और तेरी कमरमें होने वाले यक्ष्माको कटिके नीचेके भागसे अलग करता हूँ और गुह्य-देशमें होनेवाले रोगको भासमान गुह्यस्थानसे पृथक् करता हूँ २१

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते २२

अस्थिऽभ्यः । ते । मज्जऽभ्यः । स्नावऽभ्यः । धमनिऽभ्यः । यक्ष्मम् । पाणिऽभ्याम् । अङ्गुलिऽभ्यः । नखेभ्यः । वि । वृहामि । ते । ॥ २२ ॥

मैं तेरी हड्डी मज्जा आदि सब धातुओंसे, सूक्ष्म नाड़ियोंसे, स्थूल नाड़ियोंसे, हाथ अँगुलि और नखोंसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ ॥ २२ ॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥

अङ्गेऽअङ्गे । लोम्निऽलोम्नि । यः । ते । पर्वणिऽपर्वणि ।

यक्ष्मम् । त्वचस्यम् । ते । वयम् । कश्यपस्य । विऽबर्हेण । विष्वञ्चम् । वि । बृहामसि ॥ २३ ॥

हे रोगिन् ! तेरे ऊपर न कहे गए प्रत्येक अँगोंमें, सम्पूर्ण रोमकूपोंमें और प्रत्येक जोड़ोंमें जो यक्ष्मारोग होगया है उस रोग को हम दूर करते हैं। और तेरी त्वचामें जो यक्ष्मारोग पहुँच गया है, उसको हम दूर करते हैं, और तेरे नेत्र आदि सम्पूर्ण अँगोंमें व्याप्त रोगको हम महर्षि कश्यपके इस विबर्ह मन्त्रसे दूर करते हैं ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः २४

अप । इहि । मनसः । पते । अप । क्राम । परः । चर ।
परः । निःऽऋत्यै । आ । चक्ष्व । बहुधा । जीवतः । मनः २४

अष्टमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥
इति अष्टमोनुवाकः ॥

हे मन पर अधिकार जमाने वाले रोग ! दूर जा, भाग, दूर विचर, निर्ऋतिसे इस जीवित पुरुषके मनसे दूर रहनेको कह २४

अष्टम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१२)
अष्टम अनुवाक समाप्त

बृहस्पतिसवे "वयमेनमिदा ह्यः इत्यस्य "तद् वो गाय सुते सचा" [२०, ७८] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥ तथा सर्वजित्पृष्ठभादिषु अस्य तेनैव सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा त्रिवृदादिषु सूत्रोक्तेषु सप्तसु त्रिरात्रैकाहेषु "उभयं शृणवच्च नः" [२०, ११३] "वयमेनमिदा ह्यः" [२०, ९७]

"पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा" [२०, ११७] एते आज्यस्तोत्रिया भवन्ति चकारात् पृष्ठस्तोत्रिया विकल्पिता भवन्ति तद् उक्तं वैताने । "त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशनवसप्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वेति" इति [वै०. ८, २]॥

तथा त्रिककुद्दशाहे अस्य विनियोगः "क ईं वेद सुते सचा [२०, ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

बृहस्पतिसवमें "वयमेनमिदा ह्यः" इसका "तद् वो गाय सुते सचा" (२० । ७८) के साथ विनियोग कह दिया है।

तथा सर्वजित् ऋषभ आदिमें भी इसका उसके साथ ही विनियोग कह दिया है।

तथा त्रिवृत् आदि सूत्रोक्त सात त्रिरात्रैकाहोंमें "उभयं शृणवच्च नः" (२० । ११३) "वयमेनमिदा ह्यः" (२० । ६७) "पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा" (२० । ११७) ये आज्यस्तोत्रिय होते हैं, चकारसे विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशनवसप्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वेति" (वैतानसूत्र ८ । २)॥

तथा त्रिककुद् दशाहमें इसका विनियोग "क ईं वेद सुते सचा" (२० । ५३) के साथ कह दिया है।

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते १

वयम् । एनम् । इदा । ह्यः । अपीपेम । इह । वज्रिणम् ।

तस्मै । ऊं इति । अद्य । समना । सुतम् । भर । आ । नूनम् । भूषत । श्रुते ॥ १ ॥

हम कल इस सोमसे वज्रधारी इन्द्रको पुष्ट कर चुके हैं उनके लिये ही आज आप मनको प्रसन्न करके अभिषुत सोम दीजिये, हे स्तोताओं ! इस बातको सुन कर तुम भी उन इन्द्रको स्तुतियों से अवश्य भूषित करो ॥ १ ॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया

वृकः । चित् । अस्य । वारणः । उराऽमथिः । आ । वयुनेषु । भूषति ।

सः । इमम् । नः । स्तोमम् । जुजुषाणः । आ । गहि । इन्द्र । प्र । चित्रया । धिया ॥ २ ॥

इन इन्द्रके पास वृक अर्थात् कुत्ता भी है, वह शत्रुओंको हटाने वाला है, वह भेड़ोंका मथन करने वाला है, वह प्रज्ञानोंमें आभूषित करता है, ऐसे हे इन्द्र ! आप हमारे इस स्तोत्रको सुन कर अपनी कमनीय बुद्धिसे इस यज्ञमें आइये [सरमा देवकुत्ती प्रसिद्ध है अतः उसके पोते धेवते भी देवताओंके ही हैं इस लिये यहाँ कुत्ते को वृक कहा है, क्योंकि-और श्वापदोंका श्रवणाभाव है] २

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
कनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ३

कत् । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतम् । इन्द्रस्य । अस्ति । पौंस्यम् ।

केनो इति । नु । कम् । श्रोमतेन । न । शुश्रुवे । जनुषः । परि । वृत्रऽहा ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ऐसा कौनसा पुरुषार्थका काम है जो इन इन्द्रदेवका किया हुआ नहीं है। किस श्रवणशक्ति सम्पन्नने यह सुखमय बात नहीं सुनी है, कि-यह वृत्रासुरका संहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७१३)

श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु "त्वामिद्धि हवामहे" इत्यस्य विनियोगः "सुरूपकृत्नुमूतये" [२०.५७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा तनूपृष्ठे षडहे अस्य विनियोगः "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

श्येनसंदशाजिरवज्र एकाहोंमें "त्वामिद्धि हवामहे" का विनियोग "सुरूपकृत्नुमूतये" (२० । ५७) के साथ कह दिया है।

तथा तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) के साथ कह दिया है।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

त्वाम् । इत् । हि । हवामहे । साता । वाजस्य । कारवः ।
त्वाम् । वृत्रेषु । इन्द्र । सत्ऽपतिम् । नरः । त्वाम् । काष्ठासु । अर्वतः ॥ १ ॥

हम स्तोता अन्नप्राप्ति कराने वाले यज्ञमें आपका ही आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! कोई घेर लेता है ऐसे अवसरों पर सज्जनोंके पालक दिशाओंमें उदकको प्रेरित करनेवाले आपका ही नेता लोग आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे

सः । त्वम् । नः । चित्र । । वज्रऽहस्त । धृष्णुऽया । महः । स्तवानः । अद्रिऽवः ।

गाम् । अश्वम् । रथ्यम् । इन्द्र । सम् । किर । सत्रा । वाजम् । न । जिग्युषे ॥ २ ॥

इति नवमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे चायनीय ! वज्रहस्त वज्र वाले इन्द्र ! ऐसे आप हमारी धर्षकत्व प्रदान करने वाली स्तुतिसे स्तुत होकर इस विजय चाहने वाले राजाके लिये गौ अश्व और रथकी वस्तुएँ अन्नकी समान प्रदान करिये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७१४)

अपूर्वाख्ये एकाहे "अभि त्वा पूर्वपीतये" इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "अपूर्वेभि त्वा पूर्वपीतय इति" इति [वै० ८. १] ॥

अपूर्व नामक एकाहमें "अभि त्वा पूर्वपीतये" यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"अपूर्वेभि त्वा पूर्वपीतय इति" (वैतानसूत्र (८ । १) ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्

अभि । त्वा । पूर्वऽपीतये । इन्द्र । स्तोमेभिः । आयवः ।

सम्ऽईचीनासः । ऋभवः । सम् । अस्वरन् । रुद्राः । गृणन्त । पूर्व्यम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये मनुष्य समीचीन ऋभु देवता और रुद्रदेवता आप पूर्व्यकी पहिले पान करनेके लिये स्तुतियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोनु ष्टुवन्ति पूर्वथा २

अस्य । इत् । इन्द्रः । वावृधे । वृष्ण्यम् । शवः । मदे । सुतस्य ।
विष्णवि ।
अद्य । तम् । अस्य । महिमानम् । आयवः । अनु । स्तुवन्ति ।
पूर्वऽथा ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

यज्ञमें अभिषुत सोमका मद होने पर इस यजमानके ही बल को और धनवर्षकत्वको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं । ये स्तोता मनुष्य इन्द्रदेवकी उस महिमाका ही पहिलेकी समान गान कररहे हैं २

नवम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (७१५)

व्रात्यस्तोमाख्येषु एकाहेषु "आ त्वेना नि षीदत" [२०. ६८. ११] "अधा हीन्द्र गिर्वणः" [२०. १००] इति आज्य-पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद्व उक्तं वैताने । व्रात्यस्तोमेष्वा त्वेता नि षीदताधा हीन्द्र गिर्वण इति" [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" [२०. १११] "अधा हीन्द्र गिर्वणः" [२०. १००] "अभ्रातृव्यो अना त्वम्" [२०. ११४] "त्वम् न इन्द्रा भर" [२०. १०८] एते यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति । चकाराद् "यदद्य कच्च वृत्रहन्" [२०. ११२]। "उभयं शृणवच्च नः" [२०.११३.] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तथा चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" एते चत्वारो यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति ॥

तद् उक्तं वैताने । "राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च ॥ चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु इति" इति [वै० ८, २]॥

व्रात्यस्तोम नामक एकाहोंमें 'आ त्वेता नि षीदत' (२० । ६८ । ११) 'अधा हीन्द्र गिर्वणः' (२० । १००) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—'व्रात्यस्तोमेष्वा त्वेता नि षीदताधा हीन्द्र गिर्वण इति' (वैतानसूत्र ८ । १)॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें 'यत् सोममिन्द्र विष्णवि' (२० । १११) 'अधा हीन्द्र गिर्वणः' (२० । १००) 'अभ्रातृव्यो अना त्वम्' (२० । ११४) 'त्वं न इन्द्रा भर' (२०।१०८) ये यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं । चकारसे 'यदद्य कच वृत्रहन्' (२० । ११२) उभयं शृणवच्च नः' (२० । ११३) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ॥

तथा चतुरह पञ्चाह अहीनदशाह और छन्दोमदशाहोंमें 'यत् सोममिन्द्र विष्णवि' ये चार यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–'राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु च' (वैतानसूत्र ८ । २)॥

अधा हीन्द्र गिर्वणः उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

अच्छ । हि । इन्द्र । गिर्वणः । उप । त्वा । कामान् । महः । ससृजमहे । उदाऽइव । यन्तः । उदऽभिः ॥ १ ॥

जैसे जलसे काम लेने वाले पुरुष जलसे जलको संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार हे स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! आपसे कामनाओं को चाहते हुए हम सोमात्मक जलोंसे आपको संयुक्त करते हैं१

वार्ण त्वां यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

वाः । न । त्वा । यव्याभिः । वर्धन्ति । शूर । ब्रह्माणि ॥ववृध्वासम् । चित् । अद्रिऽवः । दिवेऽदिवे ॥ २ ॥

हे वज्रधारिन् शूर इन्द्र ! प्रत्येक स्तुतिके अवसर पर वारंवार बढ़ना चाहते हुए आपको ये मन्त्र यव्याओंसे जलकी समान बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

युञ्जन्ति । हरी इति । इषिरस्य । गाथया । उरौ । रथे । उरुऽयुगे ॥ इन्द्रऽवाहा । वचःऽयुजा ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

युद्दगमनशील इन्द्रकी गाथासे, मन्त्रसे संयुक्त होने वाले इंद्र के हरि नामक घोड़े विशाल युग वाले इन्द्रके रथमें जुतते हैं ३

नवम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (७१६)

अग्निष्टुत्सु एकाहेषु "ईलेन्यो नमस्यः" [२०. १०२] "अग्निं दूतं वृणीमहे" [२०. १०१] "अग्निमीलिष्वावसे" [२०. १०३] "अग्न आ याह्यग्निभिः" [२०. १०३. २] एषु आद्यौ आज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः। उत्तरौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावसेग्न आ याह्यग्निभिरिति" इति [वै० ८. १]॥

तथा विराजेग्नेः स्तोमेग्नेः कुलाये "अग्निं दूतं वृणीमहे" अग्निमीलिष्वावसे" एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "विराजेग्नेःस्तोमेग्नेःकुलायेग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावस इति" [वै० ८. २]॥

अग्निष्टुद् एकाहोंमें "ईलेन्यो नमस्यः" (२० । १०२) "अग्निं दूतं वृणीमहे" (२० । १०१) "अग्निमीलिष्वावसे" (२० । १०३) "अग्न आयाह्यग्निभिः" (२० । १०३ । २) इनमें पहिले दो विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं। अगले विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योऽग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावऽसेग्न आ ह्यग्निभिरिति" (वैतानसूत्र ८ । १)

तथा विराजमें अग्निके और स्तोममें अग्निके कुलायमें "अग्निं दूतं वृणीमहे" "अग्निमीलिष्वावसे" ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"विराजेऽग्नेः स्तोमेग्नेः कुलायेग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावस इति" (वैतानसूत्र ८।२)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

अग्निम् । दूतम् । वृणीमहे । होतारम् । विश्वऽवेदसम् ॥ अस्य ।

यज्ञस्य । सुऽक्रतुम् ॥ १ ॥

इम अग्निदेवताका वरण करते हैं वह होता हैं और सबको जानने वाले हैं और इस यज्ञके कर्मोंको श्रेष्ठ बनाने वाले है ॥१॥

अग्निंमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्निम्ऽअग्निम् । हवीमऽभिः । सदा । हवन्त । विश्पतिम् ॥

हव्यऽवाहम् । पुरुऽप्रियम् ॥ २ ॥

पुरुप हव्यका वहन करने वाले, बहुतसे पुरुषोंके प्रिय प्रजापति अग्निको सदा हवि देते हैं अतः हम भी अग्निको हवि प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तऽबर्हिषे ॥ असि ।

होता । नः । ईड्यः ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आप ऋत्विजके लिये प्रगट होते हुए यहाँ पर देवताओंको लाइये आप हमारे पूज्य होता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (७१७)

अग्निष्टुत्सु एकाहेषु "ईलेन्यो नमस्यः" इत्यस्य पूर्वेण सह उक्तो विनियोगः ॥

अग्निष्टुत् एकाहोंमें "ईलेन्यो नमस्यः" का पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है।

ईलेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि द॒र्श॒तः। सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑ ॥ १ ॥

ईलेन्यः। न॒म॒स्यः॑। ति॒रः। तमां॑सि। द॒र्श॒तः॥ सम्। अ॒ग्निः। इ॒ध्य॒ते॒। वृषा॑ ॥ १ ॥

स्तुति और प्रणाम करने योग्य दर्शनीय फलवर्षक इन्द्रदेव धुएँको तिरछा करते हुए भली प्रकार दीप्त होते हैं ॥ १ ॥

वृषो॑ अ॒ग्निः समि॑ध्य॒तेऽश्वो॒ न दे॑व॒वाह॑नः। तं ह॒विष्म॑न्त ईलते ॥ २ ॥

वृषो इति। अ॒ग्निः। सम्। इ॒ध्य॒ते॒। अश्वः॑। न। दे॒व॒ऽवाह॑नः॥ तम्। ह॒विष्म॑न्तः। ईल॒ते॒ ॥ २ ॥

देववाहन अश्वकी समान फलवर्षक अग्निदेव दीप्त होते हैं, हवि वाले पुरुष उनका पूजन करते हैं ॥ २ ॥

वृष॑णं त्वा व॒यं वृ॑षन् वृष॑णः॒ समि॑धीमहि। अग्ने॒ दीद्य॑तं बृ॒हत् ॥ ३ ॥

वृष॑णम्। त्वा॒। व॒यम्। वृ॒ष॒न्। वृष॑णः। सम्। इ॒धी॒म॒हि॒॥ अग्ने॑। दीद्य॑तम्। बृ॒हत् ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हविकी वर्षा करने वाले हम हे तृपन् ! आप फलवर्षकको भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, हे अग्निदेव ! आप भली प्रकार दीप्त हूजिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१८)

"अग्निमीलिष्वावसे" इत्यस्य "अग्निं दूतं वृणीमहे" [२०. १०१] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"अग्निमीलिष्वावसे" का "अग्निं दूतं वृणीमहे"(२०।१०१) के साथ विनियोग कह दिया है" ।

अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमील्ह श्रुतं नरोग्निं सुदीतये छर्दिः १

अग्निम् । ईलिष्व । अवसे । गाथाभिः । शीरऽशोचिषम् ।
अग्निम् । राये । पुरुऽमील्ह । श्रुतम् । नरः । अग्निम् । सुऽदीतये । छर्दिः ॥ १ ॥

हे नर ! व्यापक तापक अग्निकी तू गाथाओंमें अन्नके लिये पूजा कर । हे पुरुमीढ ! सुन्दर दीप्ति और धनके लिये श्रुतिप्रसिद्ध शरणरूप अग्निदेवकी तू पूजा कर ॥ १ ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे २

अग्ने । आ । याहि । अग्निऽभिः । होतारम् । त्वा । वृणीमहे ।
आ । त्वाम् । अनक्तु । प्रऽयता । हविष्मती । यजिष्ठम् । बर्हिः । आऽसदे ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी विभुतिरूप अन्य अग्नियोंके साथ आइये आप होताका हम आह्वान करते हैं, आप यजनीयसे बैठने के स्थानमें मयता हविष्पती बर्हि संयुक्त होवे ॥ २ ॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥३॥

अच्छ । हि । त्वा । सहसः । सूनो इति । अङ्गिरः । स्रुचः । चरन्ति । अध्वरे ।
ऊर्जः । नपातम् । घृतऽकेशम् । ईमहे । अग्निम् । यज्ञेषु । पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे जलके पुत्र अंगिरागोत्री अग्निदेव ! यज्ञमें स्रुवे आपके अभिमुख विचरण करते हैं । हम भी बलको बने रखने वाले, केशोंकी समान घृतको ऊपर धारण करने वाले सदा नवीन ही रहने वाले अग्निदेवकी यज्ञोंमें प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (७१९)

"इमा उ त्वा पुरूवसो" इत्यस्य विनियोगः "अयमु ते समतसि" [२०, ४५] इत्यनेन सह उक्तः ॥

"इमा उ त्वा पुरूवसो" का विनियोग "अयमु ते समतसि" (२० । ४५) के साथ कह दिया है ।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥

इमाः । ऊं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । गिरः । वर्धन्तु । याः । मम ।

पावकऽवर्णाः । शुचयः । विपःऽचितः । अभि । स्तोमैः । अनूषत ॥ १ ॥

हे विशाल धनसे सम्पन्न इन्द्र ! जो हमारी अग्निकी समान शुद्ध वर्ण वाली पवित्र वाणियें हैं वह आपको बढ़ावें, हे विद्वानों ! तुम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये २

अयम् । सहस्रम् । ऋषिऽभिः । सहःऽकृतः । समुद्रःऽइव । पप्रथे । सत्यः । सः । अस्य । महिमा । गृणे । शवः । यज्ञेषु । विप्रऽराज्ये ॥ २ ॥

यह अग्निदेव ऋषियोंके द्वारा जलसे बने हुए समुद्रकी समान सहस्रगुणे बढ़ जाते हैं, मैं इनकी इस सत्य महिमाका वर्णन कर रहा हूँ, इनका बल विप्रराज्य यज्ञोंमें दीखता है २

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ३

आ । नः । विश्वासु । हव्यः । इन्द्रः । समत्ऽसु । भूषतु । उप । ब्रह्माणि । सवनानि । वृत्रऽहा । परमऽज्याः । ऋचीषमः ३

हवि देने योग्य इन्द्रदेव ! सब यज्ञोंमें आप हमको भूषित करिये, यह इन्द्रदेव वास्तवमें अपरिमेय होने पर भी ऋचाओंकी समान अपने रूपको बना लेते हैं, ऐसे यह वृत्रासुरके संहारक इन्द्रदेव मन्त्रोंको सवनोंको और श्रेष्ठ २ धनुर्धोंको विभूषित करें ॥ ३ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ४

त्वम् । दाता । प्रथमः । राधसाम् । असि । असि । सत्यः । ईशानऽकृत् ।
तुविऽद्युम्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शवसः । महः ४

इति नवमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे ईश्वर बनाने वाले सत्य अग्निदेव ! तुम धनोंके मुख्य-दाता हो, अतिदमकते हुए जलके पुत्रकी युक्तिका हम वरण करते हैं ॥ ४ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टमसूक्त समाप्त (७२०)

प्रतीचीनस्तोमे एकाहे "त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु" इत्येष आज्यपृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद्व उक्तं वैताने । "प्रतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्विति" इति [वै० ८. १]॥

राजि एकाहे "यो राजा चर्षणीनाम्" [२०. १०५. ४] इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद्व उक्तं वैताने । "राजि यो राजा चर्षणीनाम् इति" [वै ८. १] ॥

एक दिनमें होने वाले प्रतीचीनस्तोममें "त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु" यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"प्रतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु" (वैतानसूत्र ८।१)॥

राज् एकाहमें "यो राजा चर्षणीनाम्" (२० । १०५ । ४) यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि- "राजि यो राजा चर्षणीनाम्" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः १

त्वम् । इन्द्र । मऽत्तूर्तिषु । अभि । विश्वाः । असि । स्पृधः ।

अशस्तिऽहा । जनिता । विश्वऽतूः । असि । त्वम् । तूर्य । तरुष्यतः

हे इन्द्र आप हिंसा वाले युद्धोंमें सबसे स्पर्धा करने वाले हैं, और आप अशस्तिका नाश करने वाले, कल्याणको प्रकट करने वाले, सबसे त्वरा करने वाले हैं आप त्वरा करने वालोंको मारिये१

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि

अनु । ते । शुष्मम् । तुरयन्तम् । ईयतुः । क्षोणी इति । शिशुम् ।

न । मातरा ।

विश्वाः । ते । स्पृधः । श्नथयन्त । मन्यवे । वृत्रम् । यत् । इन्द्र ।

तूर्वसि ॥ २ ॥

त्वरा करते हुए आपके बलके पीछे, बच्चेके पीछे माता पिता की समान द्युलोक और पृथ्वीलोक प्राप्त होते हैं । हे इन्द्रदेव ! जब आप क्रोधमें भर कर वृत्रका संहार कर रहे थे उस समय उसकी सब स्पर्धक वृत्तियें आपको मारना चाह रहीं थीं ॥ २ ॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥३॥

इतः । ऊती । वः । अजरम् । प्रऽहेतारम् । अप्रऽहितम् ।

आशुम् । जेतारम् । हेतारम् । रथिऽतमम् । अतूर्तम् । तुग्र्यऽवृधम् ३

यहाँसे मन्त्रशक्तिसे जो रक्षक वृत्तियें प्रेरित होती हैं वह उस समय आपको अजर, प्रहेता, अनहित, शीघ्रता करने वाला, हेता, रथितम, अतूर्त और तुग्रयवृध बना रहीं थीं ॥ ३ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ४

यः । राजा । चर्षणीनाम् । याता । रथेभिः । अध्रिऽगुः ।
विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रऽहा । गृणे ४

जो मनुष्योंके राजा हैं, जो रथोंके द्वारा गन्त्रोंके अभिमुख जाते हैं, सकल सेनाओंको तरने वाले हैं, जो ज्येष्ठ हैं और वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ । ४॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भ । पुरुहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । विऽधर्तरि ।
हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

इति नवमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेपरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (७२१)

इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" इत्यस्य "इन्द्र क्रतुं न आ भर" [२०. ७६] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" इसका "इन्द्र क्रतुं न आभर" (२० । ७६) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

तव । त्यत् । इन्द्रियम् । बृहत् । तव । शुष्मम् । उत । क्रतुम् ॥ वज्रम् । शिशाति । धिषणा । वरेण्यम् ॥ १ ॥

आपका इन्द्रसम्बन्धी बृहद् बल है, वह बुद्धिसे वरने योग्य बल कर्म और वज्रको तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

तव । द्यौः । इन्द्र । पौंस्यम् । पृथिवी । वर्धति । श्रवः ॥ त्वाम् । आपः । पर्वतासः । च । हिन्विरे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! द्युलोक आपका पुंस्त्व है, पृथिवी अन्नको बढ़ाती है, जल और पर्वत आपको प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । विष्णुः । बृहन् । क्षयः । मित्रः । गृणाति । वरुणः ॥

त्वाम् । शर्धः । मदति । अनु । मारुतम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

विशाल विष्णुदेव, सूर्य, वरुण और यम आपकी प्रशंसा करते हैं, वायुके पीछे चल आपको मद प्रदान करता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (७२२)

विघने एकाहे "समस्य मन्यवे विशः" [२०. १०७] "तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्" [२०. १०७, ४] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "विघने समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति" इति [वै० ८. १] ॥

विघन एकाहमें "समस्य मन्यवे विशः" (२० । १०७) "तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्" (२० । १०७ । ४) ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"विघने समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति" (वैतानसूत्र ८।१)

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

सम् । अस्य । मन्यवे । विशः । विश्वाः । नमन्त । कृष्टयः ॥

समुद्रायऽइव । सिन्धवः ॥ १ ॥

जैसे समुद्रके लिये नदियें नमती हैं, इसी प्रकार संपूर्ण प्रजाएँ कर्म करते हुए इन इन्द्रके लिये नमती हैं-इनकी शरणमें जाती हैं १

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥

ओजः । तत् । अस्य । तित्विषे । उभे इति । सम्ऽअवर्तयत् ॥

इन्द्रः । चर्मऽइव । रोदसी इति ॥ २ ॥

इन इन्द्रने दोनों द्यावापृथिवीको चमड़ेकी समान लपेट लिया था. इनका वह वीर्य दमकता है ॥ २ ॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधंतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

वि । चित् । वृत्रस्य । दोधतः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ शिरः । बिभेद । वृष्णिना ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने क्रोधमें भरे हुए वृत्रासुरके शिरको सैंकड़ों पर्ववाले और रुधिरकी वर्षा करनेवाले वज्रसे काट डाला था ॥ ३ ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः । सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

तत् । इत् । आस । भुवनेषु । ज्येष्ठम् । यतः । जज्ञे । उग्रः । त्वेषऽनृम्णः ।

सद्यः । जज्ञानः । नि । रिणाति । शत्रून् । अनु । यत् । एनम् । मदन्ति । विश्वे । ऊमाः ।

क्योंकि-यह इन्द्रदेव धनवान् और बली हैं, इस कारण भुवनों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, यह प्रकट होतेही शत्रुओंको मारने लगते हैं

इसी लिये इनकी ऊमा (रक्षक शक्तियें) इनके प्रकट होते ही आनन्दमें भर जाती हैं ॥ ४ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु

वव्रधानः । शवसा । भूरिऽओजाः । शत्रुः । दासाय । भियसम् । दधाति ।

अविऽअनत् । च । विऽअनत् । च । सस्नि । सम् । ते । नवन्त । प्रऽभृता । मदेषु ॥ ५ ॥

महाबलवान् बलसे बढ़ता हुआ शत्रु दासोंको भय देता है, स्थावर और जंगम सारा जगत् (परब्रह्ममें) शयन करता है अर्थात् लीन होजाता है, अतः भली प्रकार वेतन आदि देकर रक्खे हुए (सैनिक) हर्षके अवसर युद्धोंमें उन परब्रह्म वा इन्द्रकी स्तुति कर (युद्धमें प्रवृत्त होजा) ते हैं ॥ ५ ॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ६ ॥

त्वे इति । क्रतुम् । अपि । पृञ्चन्ति । भूरि । द्विः । यत् । एते । त्रिः । भवन्ति । ऊमाः ।

स्वादोः । स्वादीयः । स्वादुना । सृज । सम् । अदः । सु । मधु । मधुना । अभि । योधीः ॥ ६ ॥

जो यह जन्म और संस्कारसे दो बार उत्पन्न होते हैं, और युद्ध वा यज्ञकी दीक्षा ले तीन बार उत्पन्न होते हैं, ये बड़े भारी यज्ञको आपमें संयुक्त करते हैं, ऐसे हे स्वादिष्ट पदार्थोंको स्वादु बनाने वाले आप स्वादु पदार्थोंसे इनयोधाओंको संयुक्त करिये। और हे सुन्दर जल वाले इन्द्रदेव ! आप योधाओंमें प्रवेश करके मधुर रीतिसे युद्ध करिये ॥ ६ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥

यदि । चित् । नु । त्वा । धना । जयन्तम् । रणेऽरणे । अनुऽमदन्ति । विप्राः ।

ओजीयः । शुष्मिन् । स्थिरम् । आ । तनुष्व । मा । त्वा । दभन् । दुःऽएवासः । कशोकाः ॥ ७ ॥

प्रत्येक रणमें धनोंको जीतने वाले आपकी ब्राह्मण यदि स्तुति करते हैं तो हे बलवान् ! आप उनमें स्थिर (धन रूप) बल फैलाइये, सुखमें दुःख करने वाले अत एव दुर्गति पाने वाले पुरुष आपको प्राप्त न हों ॥ ७ ॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥

त्वया । वयम् । शाशद्महे । रणेषु । प्रऽपश्यन्तः । युधेन्यानि । भूरि

चोदयामि । ते । आयुधा । वचःऽभिः । सम् । ते । शिशामि ।
ब्रह्मणा । वयांसि ॥ ८ ॥

हम देखते २ आपके द्वारा युद्धोंमें बहुतसे दूसरे पक्ष वालोंका संहार करा डालते हैं, मैं अपने तपः सिद्धवचनोंसे आपके आयुधों को प्रेरित करता हूँ और मन्त्रके द्वारा आपके पक्षीकीसी गति वाले बाणोंको तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि

नि । तत् । दधिषे । अवरे । परे । च । यस्मिन् । आविथ । अवसा ।
दुरोणे ।

आ । स्थापयत । मातरम् । जिगत्नुम् । अतः । इन्वत । कर्व-
राणि । भूरि ॥ ९ ॥

जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियोंने धारण किया है और जिस घरमें अन्नसे रक्षा पाई है उसमें चलती फिरती कालिका माता शक्तिको स्थापित करिये, तदनन्तर अनेक विचित्र पदार्थों को इसमें लाइये ॥ ९ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमा-
प्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं
पृथिव्याः ॥ १० ॥

स्तुष्व । वर्ष्मन् । पुरुऽवर्त्मानम् । सम् । ऋभ्वाणम् । इनऽतमम् । आप्तम् । आप्त्यानाम् ।

आ । दर्शति । शवसा । भूरिऽओजाः । प्र । सक्षति । प्रतिऽमानम् पृथिव्याः ॥ १० ॥

हे स्तोतः ! अनेक मार्गोंमें विचरण करने वाले परम तेजस्वी, श्रेष्ठ स्वामी, आप पुरुषोंके गुणोंको प्राप्त हुए इन्द्रकी स्तुति कर यह पृथिवीकी प्रतिमारूप महाबली इन्द्र यज्ञको देखते हुए यज्ञमें संलग्न होरहे हैं ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः । महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ११ ॥

इमा । ब्रह्म । बृहत्ऽदिवः । कृणवत् । इन्द्राय । शूषम् । अग्रियः । स्वःऽसाः ।

महः । गोत्रस्य । क्षयति । स्वऽराजा । तुरः । चित् । विश्वम् । अर्णवत् । तपस्वान् ॥ ११ ॥

स्वर्गका सेवन करनेकी इच्छा वाला यह श्रेष्ठ राजा महास्वर्ग के अधिपति इन्द्रके लिये इन बड़े २ स्तोत्रोंको करता हुआ इन्द्र को सुख देता है, और स्वर्गका राजा शीघ्रता करने वाला तपस्वी इन्द्र मेघके जलका क्षय करता हुआ अर्थात् उसको बरसाता हुआ जगत्को जलपूर्ण करता है ॥ ११ ॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव

स्वसा॑रौ मात॒रिभ्व॑री अरि॒प्रे हि॒न्वन्ति॑ चैने॒ शव॑सा व॒र्धय॑न्ति च ॥ १२ ॥

एव । महान् । बृहत्ऽदिवः । अथर्वा । अवोचत् । स्वाम् । तन्व॑म् । इन्द्रम् । एव ।

स्वसा॑रौ । मा॒तरिभ्व॑री इति॑ । अरि॒प्रे इति॑ । हि॒न्वन्ति॑ । च । एने इति॑ । शव॑सा । व॒र्धय॑न्ति । च ॥ १२ ॥

अपनेको इन्द्र मानते हुए परमप्रकाशवान् महर्षि अथर्वाने इस प्रकार कहा था, कि-निष्पाप मातरिभ्वरी बहिनें इसको प्रसन्न करती हैं और बलको बढ़ाती हैं ॥ १२ ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒ं के॒तुरनी॑कं॒ ज्योति॑ष्मान् प्र॒दिशः॒ सूर्य॑ उ॒द्यन् ।
दि॒वा॒क॒रोऽति॑ द्यु॒म्नैस्तमां॑सि॒ विश्वा॑तारीद् दुरि॒तानि॑ शु॒क्रः ॥ १३ ॥

चित्रम् । दे॒वाना॑म् । के॒तुः । अनी॑कम् । ज्योति॑ष्मान् । प्र॒ऽदिशः॑ । सूर्यः॑ । उ॒त्ऽयन् ।

दि॒वा॒ऽक॒रः । अति॑ । द्यु॒म्नैः । तमां॑सि । विश्वा॑ । अ॒तारी॒त् । दुः॒ऽइ॒तानि॑ । शु॒क्रः ॥ १३ ॥

यह पूजनीय, किरणोंके समूह वाले ज्ञापक ज्योतिः भरे हुए

दिशाओंकी ओरको उठते हुए अपने प्रकाशोंसे दिन कर देते हैं, सब अंधकारोंको तर जाते हैं और यह वीर्य सम्पन्न इन्द्र सब पापोंके पार जाते हैं अर्थात् उनको नष्ट कर डालते हैं ॥१३॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः ।
आ । अप्रात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥ १४ ॥

यह पूजनीय, किरणोंका जो समूह उदय होरहा है, यह मित्र वरुण और अग्निका चक्षु है। यह जो सूर्य हैं यह जंगम और स्थावरके आत्मा हैं अर्थात् सर्वभूतानुप्रवेशी हैं, यह सूर्यदेव अपनी महिमासे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको भर देते हैं ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥

सूर्यः । देवीम् । उषसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम् । अभि । एति । पश्चात् ।

यत्र । नरः । देवऽयन्तः । युगानि । विऽतन्वते । प्रति । भद्राय । भद्रम् ॥ १५ ॥

इति नवमेऽनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जैसे मरणधर्मी पुरुष स्त्रीके पीछे जाता है, इसी प्रकार यह सूर्यदेव दमकती हुई देवी उषाको प्राप्त होते हैं, उस समय पुरुष दिनोंको देवताओंके उपयोगमें लाते हुए भद्र सूर्यके लिये (अर्घ आदि) भद्र कार्योंको करते हैं ॥ १५ ॥

नवम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (७२३)

वज्रपुनःस्तोमाख्ययोरेकाहयोः "त्वं न इन्द्रा भर" इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु एतस्य विनियोगः "अधा हीन्द्र गिर्वणः" [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा वैदस्वरसाम्नोरुक्थ्ययोः प्रथमयोरह्नोः एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "वैदस्वरसाम्नोस्त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः "आपन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोः पञ्चाहयोर्द्वितीयेहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. ३]

तथा अभिप्लवस्यायुराख्येहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति" इति [वै० ८. ३]॥

तथा पृष्ठ्यषडहस्य तृतीयेहनि अस्य विनियोगः "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" [२०. ४०] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा द्वादशाहस्य च्छन्दोमञ्यहस्य प्रथमान्त्ययोरह्नोः "त्वं न इन्द्रा भर" [२०. १०८] "य एक इद्द विदयते" [२०. ६३. ४] एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः। तद् उक्तं वैताने। "द्वादशाहस्य च्छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद्द विदयत इति" इति [वै० ८. ४]॥

वज्र और पुनःस्तोम नामक एकाहोंमें "त्वं न इन्द्रा भर" यह उक्थस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति" (वैतानसूत्र ८। १)॥

. तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें इसका विनियोग "अधा हीन्द्र गिर्वणः" (२० । १००) के साथ कह दिया है।

तथा तीन दिनमें होने वाले वैदस्वरसामोंमें प्रथम दिन यह उक्थस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वैदस्वरसाम्नोस्त्वं न इन्द्रा भरेति" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें इसका विनियोग "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८) के साथ कह दिया है।

तथा अभ्यासङ्ग्य पञ्चशारदीय पञ्चाहोंके द्वितीय दिनोंमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

तथा अभिलवके आयु नामक दिनमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति" (वैतानसूत्र ८। ३)॥

तथा पृष्ठ्यषडहके तीसरे दिनमें इसका विनियोग "इन्द्रेण सं हि दृक्षसे" (२० । ४०) के साथ कह दिया है।

तथा द्वादशाह और छन्दोमत्र्यहके प्रथम और अन्तिम दिनों में "त्वं न इन्द्रा भर" (२० । १०८) "य एक इद्द विदयते"

(२० । ६३ । ४) ये यथाक्रम उक्थस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"द्वादशाहस्य च्छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति (वैतानसूत्र ८ । ४)॥

त्वं न॑ इन्द्रा भ॑र॒ ओजो॑ नृ॒म्णं श॑तक्रतो विचर्षणे।
आ वी॒रं पृ॑तना॒षह॑म् ॥ १ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । आ । भर । ओजः । नृम्णम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । विऽचर्षणे ॥ आ । वीरम् । पृतनाऽसहम् ॥ १ ॥

हे विशेषरूपसे द्रष्टा शतक्रतु इन्द्र ! हममें धन और बलको स्थापित करिये और शत्रुओंकी सेनाओंका पराभव करने वाले वीर-पुत्र-को दीजिये ॥ १ ॥

त्वं हि नः॑ पि॒ता व॑सो॒ त्वं मा॒ता श॑तक्रतो ब॒भूवि॑थ।
अधा॑ ते सु॒म्नमी॑महे ॥ २ ॥

त्वम् । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वम् । माता । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । बभूविथ ॥ अध । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥२॥

हे शतक्रतो ! आप हमारे पिता हैं और हे वसो इन्द्र ! आप हमारी माता हैं, इसलिये हम आपसे सुखकी याचना करते हैं २

त्वां शु॑ष्मिन् पुरुहूत वाजय॒न्तमुप॑ ब्रुवे शतक्रतो।
स नो॑ रास्व सु॒वीर्य॑म् ॥ ३ ॥

त्वाम् । शुष्मिन् । पुरुऽहूत । वाजऽयन्तम् । उप । ब्रुवे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । सः । नः । रास्व । सुऽवीर्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे बलवन् शतक्रतो ! मैं आप हविरूप अन्न चाहने वालेकी स्तुति करता हूँ, इस लिये आप सुन्दर वीरतासे सम्पन्न धन दीजिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (७२४)

साहस्राख्याश्चत्वार एकाहा ब्राह्मणपठिताः। तेषां प्रथमद्वितीययोः "स्वादोरित्था विषूवतः" इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति। तदुक्तं वैताने। "साहस्राद्ययोः स्वादोरित्था विषूवत इति" इति [वै० ८. १]॥

तथा अश्वमेधत्र्यहस्य द्वितीयेहनि अस्य विनियोगः "वाचमष्टापदीमहम्" [२०. ४२] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साहस नामक चार एकाह ब्राह्मणमें पठित हैं। उनमेंसे पहिले दूसरेमेंमे "स्वादोरित्था विषूवतः" यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"साहस्राद्ययोः स्वादोरित्था विषूवतः" (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा अश्वमेध त्र्यहके द्वितीय दिनमें इसका विनियोग "वाचमष्टापदीमहम्" (२० । ४२) के साथ कह दिया है।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स्वादोः। इत्था। विषुऽवतः। मध्वः। पिबन्ति। गौर्यः। याः। इन्द्रेण। सऽयावरीः। वृष्णा। मदन्ति। शोभसे। वस्वीः। अनु। स्वऽराज्यम् ॥ १ ॥

विपुवत् यज्ञके स्वादु मधुका स्तोत्र की वाणियें इस प्रकार पान करती हैं, कि–वह इन्द्रसे संयुक्त होकर रात्रियों तक इन्द्र को हर्षमें भरे रखती हैं, उसके अनन्तर हे यजमान ! तू भी स्वराज्य पर शोभा पावेगा ॥ १ ॥

ता अ॑स्य पृशना॒युवः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
प्रि॒या इन्द्र॑स्य धे॒नवो॒ वज्रं॑ हिन्वन्ति॒ साय॑कं॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

ताः । अ॒स्य॒ । पृ॒श॒न॒ऽयु॒वः॑ । सोम॑म् । श्री॒ण॒न्ति॒ । पृश्न॑यः ।
प्रि॒याः । इन्द्र॑स्य । धे॒नवः॑ । वज्र॑म् । हि॒न्व॒न्ति॒ । साय॑कम् ।० २

यह पृशनयुव पृश्नियें इसके सोमको पका रही हैं, यह इन्द्रकी धेनुएँ इन्द्रके सायक और वज्रको प्रेरित करती हैं। इन रात्रियों के अनन्तर आप स्वराज्य पर आरूढ़ हूजिये ॥ २ ॥

ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सहः॑ सप॒र्यन्ति॒ प्रचे॑तसः ।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ३ ॥

ताः । अ॒स्य॒ । नम॑सा । सहः॑ । स॒प॒र्यन्ति॑ । प्रऽचे॑तसः ।
व्र॒तानि॑ । अ॒स्य॒ । स॒श्चि॒रे॒ । पु॒रूणि॑ । पू॒र्वऽचि॑त्तये । वस्वीः॑ । अनु॑ । स्व॒ऽराज्य॑म् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

ये प्रकृष्ट ज्ञान वाली वाणियें इस (इन्द्र) की हविके साथ

पूजा करती हैं, इस यजमानके बड़े २ व्रत इस पूर्वचित्ति इन्द्रमें संयुक्त होते हैं और यज्ञकी रात्रियोंके अनन्तर आप स्वराज्य पर आरूढ़ होंगे ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (७२६)

विराडादिषु सप्तस्वेकाहेषु "इन्द्राय मद्वने सुतम्" [२०.११०] "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" [२०. १११] एतौ आज्योक्थस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्रिष्पपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योःकुलाय इन्द्राय मद्वने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवीति" इति [वै० ८. २].॥

विराट् आदि सात एकाहोंमें "इन्द्राय मद्वने सुतम्" (२०।१००) "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" (२० । १११) यह आज्योक्थस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्रिष्पपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्यो कुलाय इन्द्राय मद्वने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवि" (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

इन्द्राय । मद्वने । सुतम् । परि । स्तोभन्तु । नः । गिरः ॥ अर्कम् । अर्चन्तु । कारवः ॥ १ ॥

हमारे इस सेवनीय यज्ञमें अभिषुत सोमकी हमारी वाणियें स्तुति करें और स्तोता पूजनीय इन्द्रका पूजन करें ॥ १ ॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

यस्मिन् । विश्वाः । अधि । श्रियः । रणन्ति । सप्त । सम्ऽसदः ॥ इन्द्रम् । सुते । हवामहे ॥ २ ॥

सात संपत्तिरूपा सब सभाएँ जिनको प्राप्त होती हैं, उन इन्द्रदेवका हम सोमका अभिषव होने पर आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

त्रिऽकद्रुकेषु । चेतनम् । देवासः । यज्ञम् । अत्नत ॥ तम् । इत् । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

त्रिकद्रुकोंने इस ज्ञानमद यज्ञको आरंभ किया था, उसको हमारी वाणियें बढ़ावें ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७२६)

"यत् सोममिन्द्र विष्णवि" इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु चतुरहादिषु च अस्य विनियोगः "अधा हीन्द्र गिर्वणः" [२०, १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभिप्लवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं चेद् भवति तदा "य एक इद् विदयते" [२०, ६३, ४] "यत् सोममिन्द्र विष्णवि" [२०, १११] एतौ उक्थस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति" इति [वै० ८, ३] ॥

"यत् सोममिन्द्र विष्णवि" का विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें तथा चतुरह आदिमें भी इसका विनियोग "अधा हीन्द्र गिर्वणः" (२० । १००) के साथ कह दिया है।

तथा अभिलवका छठा दिन यदि उक्थ्य-संस्थ होता है तो "य एक इद् विदयते" (२० । ६२ । ४) यत् सोममिन्द्र विष्णवि" (२० । १११) ये विकल्पित उक्थस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति" (वैतानसूत्र८ । ३)॥

यत् सोमंमिन्द्र विष्णंवि यद्वां घ त्रित आप्त्ये । यद्वां मुरुत्सु मन्दंसे समिन्दुंभिः ॥ १ ॥

यत् । सोमम् । इन्द्र । विष्णवि । यत् । वा । घ । त्रिते । आप्त्ये । यत् । वा । मरुत्ऽसु । मन्दसे । सम् । इन्दुऽभिः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जो आप त्रितमें यज्ञमें वा आप्त्य तथा मरुत्में हर्ष में भरते हैं वह जलके साथके सोमसे ही हर्षमें भरते हैं ॥ १ ॥

यद्वां शक्र परावर्ति समुद्रे अधि मन्दंसे । अस्माक-मित् सुते रंणा समिन्दुंभिः ॥ २॥

यत् । वा । शक्र । पराऽवति । समुद्रे । अधि । मन्दसे ॥ अस्माकम् । इत् । सुते । रण । सम् । इन्दुऽभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो आप बहुत दूरके समुद्रमें वा हमारे यज्ञमें हर्षित होते हैं वह जल मिले सोमसे ही होते हैं ॥ २ ॥

यद्वासिं सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

यत् । वा । असि । सुन्वतः । वृधः । यजमानस्य । सत्ऽपते ॥ उक्थे । वा । यस्य । रण्यसि । सम् । इन्दुऽभिः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे सत्पते ! जो आप सोमाभिषव करने वाले यजमानके बढ़ाने वाले हैं, वा जिसके उक्थ्यमें रमणीय होते हैं वह सोमसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पन्द्रहवाँ सूक्त समाप्त (७२७)

विनुत्यभिभूत्यादिषु अष्टसु द्वन्द्वैकाहेषु "यदद्य कच्च वृत्रहन्" [२०. ११२] "उभयं शृणवच्च नः" [२०. ११३] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "विनुत्यभिभूत्यो राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नुभयं शृणवच्च न इति" इति [वै० ८. २] ॥

विनुति अभिभूति आदि आठ द्वन्द्वैकाहोंमें "यदद्य कच्च वृत्रहन्" (२० । ११२) "उभयं शृणवच्च नः" (२० । ११३) ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"विनुत्यभिभूत्यो राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नुभयं शृणवच्च न इति" (वैतानसूत्र८।२)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

यत् । अद्य । कत् । च । वृत्रऽहन् । उत्ऽअगाः । अभि । सूर्य ॥ सर्वम् । तत् । इन्द्र । ते । वशे ॥ १ ॥

हे मेघोंका संहार करने वाले वृत्रहन् सूर्यात्मक इन्द्र ! आप जब कभी उदय होते हैं, वह सब हे इन्द्रात्मक इन्द्र ! आपके वशमें है ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २ ॥

यत् । वा । प्रऽवृद्ध । सत्ऽपते । न । मरै । इति । मन्यसे ॥ उतो इति । तत् । सत्यम् । इत् । तव ॥ २ ॥

अथवा हे सत्पते इन्द्र ! जब आप यह विचारते हैं, कि-यह न मरे वह आपका विचार सत्य ही होता है ॥ २ ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

ये । सोमासः । पराऽवति । ये अर्वाऽवति । सुन्विरे ॥ सर्वान् । तान् । इन्द्र । गच्छसि ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो सोम दूर वा पास पर निचोड़े जाते हैं, हे इन्द्र ! उन सबके पास आप प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (८२८)

विनुत्यभिभूत्यादिषु "उभयं शृणवच्च नः" इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा त्रिष्टुदादिषु अस्य विनियोगः "वयमेनमिदा ह्यः" [२०. ९७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

विभूति अभिभूति आदिमें इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है।

तथा त्रिवृत् आदिमें इसका विनियोग "वयमेनमिदा ह्यः" (२० । ६७) के साथ कह दिया है।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्

उभयम् । शृणवत् । च । नः । इन्द्रः । अर्वाक् । इदम् । वचः ।
सत्राच्या । मघऽवा । सोमऽपीतये । धिया । शविष्ठः । आ । गमत्

दोनों लोकोंमें हित करने वाले हमारे इस वचनको इन्द्रदेव अभिमुख होकर सुनें, कि–सत्यात्मिका बुद्धिसे बलवान् इन्द्रदेव सोमपान करनेके लिये आरहे हैं ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः

तम् । हि । स्वऽराजम् । वृषभम् । तम् । ओजसे । धिषणे इति ।
निःऽततक्षतुः ।
उत । उपऽमानाम् । प्रथमः । नि । सीदसि । सोमऽकामम् । हि । ते ।
मनः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

उन अपनी प्रभासे दमकने वाले, कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्रको बल पानेके लिये द्युलोक और पृथ्वीलोक तन् करते

हैं। तुम इनमेंसे उपमानाको प्रथम प्राप्त होते हो, तुम्हारा मन सोमकी इच्छा वाला है ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (७२९)

पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु "अभ्रातृव्यो अना त्वम्" इत्यस्य विनियोगः "अधा हीन्द्र गिर्वणः" [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः

तथा अभिसवपडहस्य गवाख्येहनि "अभ्रातृव्यो अना त्वम्" इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति। तद् उक्तं वैताने। "पडहस्य गव्य-भ्रातृव्यो अना त्वमिति" इति [वै० ८. ३] ॥

पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें "अभ्रातृव्यो अना त्वम्" इसका विनियोग "अधा हीन्द्र गिर्वणः" (२० । १००) के साथ कह दिया है।

तथा अभिसव पडहके गवाख्य दिनमें अभ्रातृव्यो अना त्वम्" यह उक्थस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"पडहस्य गव्यभ्रातृव्यो अना त्वमिति" (वैतान-सूत्र ८ । ३) ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अभ्रातृव्यः। अना। त्वम्। अनापिः। इन्द्र। जनुषा। सनात्। असि ॥ युधा। इत्। आपिऽत्वम्। इच्छसे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुरहित हैं, अना और अनापि हैं, आप प्रकट होते ही संभक्ति करते हैं और युद्धमें आप आपित्वको चाहते हैं ॥ १ ॥

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे २

नकिः । रेवन्तम् । सख्याय । विन्दसे । पीयन्ति । ते । सुराऽश्वः

यदा । कृणोषि । नदनुम् । सम् । ऊहसि । आत् । इत् । पिताऽइव । हूयसे ॥ २ ॥

इति नवमेऽनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

आप धनवान्को मित्रताके लिये प्राप्त करते हैं । सुराशु भाग को पुष्ट करते हैं, जब आप अपने समूहकी गर्जनाको करते हैं तब आप पिताकी समान बुलाये जाते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें अठारहवाँ सूक्त समाप्त (७२०)

साद्यःक्राभिधानेषु एकाहेषु श्येनयागर्जिनेषु "अहमिद्धि पितुष्परि" इत्यादयस्तोत्रियो भवति । तदुक्तं वैताने । "साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च" इति [वै० ८, २]

श्येनयागरहित साद्यःक्राभिधान एकाहोंमें "अहमिद्धि पितुष्परि" यह आयस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च" (वैतानसूत्र (८ । २) ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

अहम् । इत् । हि । पितुः । परि । मेधाम् । ऋतस्य । जग्रभ ॥ अहम् । सूर्यःऽइव । अजनि ॥ १ ॥

मैंने पिता ब्रह्माकी मेधाको भली प्रकार ग्रहण कर लिया है। और मैं सूर्यकी समान प्रकट हुआ हूँ ॥ १ ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

अहम्। प्रत्नेन। मन्मना। गिरः। शुम्भामि। कण्वऽवत् ॥ येन। इन्द्रः। शुष्मम्। इत्। दधे ॥ २ ॥

मैं प्राचीन मननीय स्तोत्रसे कण्व ऋषिकी समान वाणियों को अलंकृत करता हूँ। इससे इन्द्रमें बलको स्थापित करता हूँ२

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

ये। त्वाम्। इन्द्र। नः। तुस्तुवुः। ऋषयः। ये। च। तुस्तुवुः ॥ मम। इत्। वर्धस्व। सुऽस्तुतः ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र! जिन ऋषियोंने आपकी स्तुति की है वा जिन ऋषियों ने आपकी स्तुति न की हो, (उनकी ओर कुछ ध्यान न देकर) आप मुझसे ही भली प्रकार स्तुत होकर बढ़िये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त (७३१)

अतिरात्राणां सर्वस्तोमाख्ययोः "मा भूम निष्ट्या इव" [२०. ११६] "विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे" [१०. ५५.५] एतौ पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः। तद्द उक्तं वैताने। "अतिरात्राणां सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ट्या इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति" [वै० ८. २] ॥

तथा चतुरहाणां सर्वेष्वहःसु एतौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ

भवनः । तद् उक्तं वैताने । "सर्वेषु मा भूम निष्ट्या इव विधु दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति" इति [वै० ८. ३]॥

अतिरात्रोंको सर्वस्तोमाख्योंमें "मा भूम निष्ट्या इव" (२०। ११६) "विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे" (९ । १५ । ९) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"अतिरात्राणां सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ट्या इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति" (वैतानसूत्र ८ । २)॥

तथा चतुरहोंके सब दिनोंमें ये विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"सर्वेषु मा भूम निष्ट्या इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति" (वैतानसूत्र ८ । ३)॥

मा भूम निष्ट्यां इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि १

मा । भूम । निष्ट्याःऽइव । इन्द्र । त्वत् । अरणाःऽइव । वनानि । न । प्रऽजहितानि । अद्रिऽवः । दुरोषासः । अमन्महि १

हम आपसे उत्पन्न न होनेके कारण दुष्ट शत्रुसे न होवें, हम आपकी त्यागने योग्य वस्तुओंको दुष्ट पाक (दावानल) से संपन्न वनोंकी समान मानें ॥ १ ॥

अमन्महीदनाशवोनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि २

अमन्महि । इत् । अनाशवः । अनुग्रासः । च । वृत्रऽहन् । सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राधसा । अनु । स्तोमम् । मुदीमहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे वृत्रहन्! हम अपनेको आपसे नाशरहित † और अनुग्र समझें हे शूर! हम आपकी एक बारकी ही समृद्धिसे स्तोम करने पर आनन्द पावें ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त (७३२)

त्रिवृदादिषु "पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा" इत्यस्य विनियोगः "वयमेनमिदा ह्यः" [२०. ६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥ तथा तनूपृष्ठे षडहे अस्य विनियोगः "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

त्रिवृत् आदिमें "पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा" का विनियोग "वयमेनमिदा ह्यः" (२० । ६७) के साथ कह दिया है।

तथा तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) के साथ कह दिया है।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

पिब । सोमम् । इन्द्र । मन्दतु । त्वा । यम् । ते । सुसाव । हरिऽअश्व । अद्रिः ।
सोतुः । बाहुऽभ्याम् । सुऽयतः । न । अर्वा ॥ १ ॥

हे इन्द्र! आप सोमका पान करिये, हे हर्यश्व! जिसको पत्थरने निचोड़ा है वह सोम आपको हर्ष प्रदान करे। सधे हुए घोड़ेकी समान यह पत्थर अभिषव करने वालेके हाथमें रहा था

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

यः । ते । मदः । युज्यः । चारुः । अस्ति । येन । वृत्राणि । हरिऽअश्व । हंसि ।
सः । त्वाम् । इन्द्र । प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो । ममत्तु ॥ २ ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! जो आपका मद युज्य और चारु है और जिससे आप आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हैं। हे प्रभूवसो इन्द्र ! वह आपको हर्ष देय ॥ २ ॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

बोध । सु । मे । मघऽवन् । वाचम् । आ । इमाम् । याम् । ते । वसिष्ठः । अर्चति । प्रऽशस्तिम् ।
इमा । ब्रह्म । सधऽमादे । जुषस्व ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आप मेरी इस वाणीको भलीप्रकार जानिये कि-जिस प्रशस्तिकी वशिष्ठ पूजा करते हैं और इन मन्त्रसमूह का आप यज्ञमें सेवन करिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त (७३३)

चातुर्मास्यवैश्वदेवादीनां सप्तानां त्र्यहाणां प्रथमेष्वहःसु "शग्ध्यू षु शचीपते" इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद्व उक्तं वैताने । "चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदच्छन्दोमवत्पराकान्तर्वैश्वरथमेधत्र्यहाणां शग्ध्यू षु शचीपत इति" इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहाहीने अस्य विनियोगः "क ईं वेद सुते सचा" [२०, ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साकमेधत्र्यहस्य प्रथमेऽहनि "इन्द्रमिद् देवतातये" [२०.११८.३] इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । 'साकमेधस्येन्द्र मिद् देवतातय इति" इति [वै० ८. ३] ॥

चातुर्मास्य वैश्वदेव आदि सात त्र्यहोंके प्रथम दिनोंमें "शग्ध्यू षु शचीपते" यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्र में कहा है, कि-"चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदच्छन्दोमवत्पराकान्तर्वस्वश्वमेधत्र्यहाणां शग्ध्यू षु शचीपते" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुद्दशाहाहीनमें इसका विनियोग "क ईं वेद सुते सचा" (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

साकमेध त्र्यहके प्रथमदिन "इन्द्रमिद्नातये" (२० ।११८। ३) यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, है, कि-"साकमेधस्येन्द्रमिद् देवतातये"(वैतानसूत्र ८ । ३)॥

शग्ध्यू॒ ३॒ षु श॑चीपत॒ इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑ ।
भगं॒ न हि त्वा॑ य॒शसं॑ वसु॒विद॒मनु॑ शूर॒ चरा॑मसि १

श॒ग्धि । ऊं॒ इति॑ । सु । श॒ची॒ऽप॒ते॒ । इन्द्र॑ । विश्वा॑भिः । ऊ॒तिऽभिः॑ भग॑म् । न । हि । त्वा॒ । य॒शस॑म् । व॒सु॒ऽविद॑म् । अनु॑ । शूर॑ । चरा॑मसि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि-आपकी सकल रक्षक शक्तियोंके द्वारा आपसे भाग्य और यश पानेके लिये हम आप धनलंभकके अनुकूल चलें ॥ १ ॥

पौ॒रो अश्व॑स्य पुरु॒कृद् गवा॑मस्यु॒त्सो दे॑व हिर॒ण्ययः॑ ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर २

पौरः । अश्वस्य । पुरुऽकृत् । गवाम् । असि । उत्सः । देव । हिरण्ययः ।

नकिः । हि । दानम् । परिऽमर्धिषत् । त्वे इति । यत्ऽयत् । यामि । तत् । आ । भर ॥ २ ॥

आप धन आदिको प्रचुर करने वाले हैं, पुरवासियोंके लिये अश्वरूप हैं अर्थात् उनको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने वाले हैं, आप गौओंको बहुत करने वाले हैं, उत्सदेव और हिरण्मय हैं, आपकी दानकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । मैं जिस २ वस्तु की इच्छासे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ उस २ वस्तुको आप मुझमें भरिये ॥ २ ॥

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ३

इन्द्रम् । इत् । देवऽतातये । इन्द्रम् । प्रऽयति । अध्वरे ।

इन्द्रम् । सम्ऽईके । वनिनः । हवामहे । इन्द्रम् । धनस्य । सातये ३

हम यज्ञके लिये प्रयत् यज्ञमें इन्द्रका आह्वान करते हैं, इन्द्र की सेवा करने वाले हम युद्धके अवसर पर धनकी प्राप्तिके लिये इंद्रका आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ४

इन्द्रे । मह्ना । रोदसी इति । पप्रथत् । शवः । इन्द्रः । सूर्यम् । अरोचयत् ।

इन्द्रे । ह । विश्वा । भुवनानि । येमिरे । इन्द्रे । सुवानासः । इन्दवः

इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेवने अपनी महिमासे द्यावापृथिवीका विस्तार किया है, इन्द्रात्मक बलमे सूर्यको दमका रक्खा है। सकल भुवन इन्द्रमें ही आश्रित होते हैं, और इन्द्रके लिये सोम अभिषुत होते हैं ॥४॥

नवम अनुवाकमें बाईसवाँ सूक्त समाप्त (७३४)

वैश्वदेवादित्र्यहेषु "अस्तावि मन्म पूर्व्यम्" इत्यस्य विनियोगः "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

वैश्वदेव आदि त्र्यहोंमें "अस्तावि मन्म पूर्व्यम्" का विनियोग "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२०।४७) के साथ कह दिया है।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

अस्तावि । मन्म । पूर्व्यम् । ब्रह्म । इन्द्राय । वोचत ।

पूर्वीः । ऋतस्य । बृहतीः । अनूषत । स्तोतुः । मेधाः । असृक्षत १

मैं मननीय प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी स्तुति कर चुका हूँ अब हे ऋत्विजों ! तुम इन्द्रके लिये मन्त्रका उच्चारण करो, तुम इन्द्रकी यज्ञकी प्राचीन कालोंकी बड़ी २ ऋचाओंसे स्तुति करो, स्तुति करने वालों की बुद्धि ऋचाओंमें संयुक्त होगई ॥ १ ॥

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोस्मे सुवानास इन्दवः २

तुरण्यवः । मधुऽमन्तम् । घृतऽश्चुतम् । विप्रासः । अर्कम् । आनृचुः ।
अस्मे इति । रयिः । पप्रथे । वृष्ण्यम् । शवः । अस्मे इति ।
सुवानासः । इन्दवः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

शीघ्रता करने वाले विप्र मधुमय घृतस्रावि पूजक (मन्त्र) की प्रशंसा करते हैं, इस यजमानके लिये धन विस्तृत होता है और वर्षक बल इसको प्राप्त होता है, और इन इन्द्रदेवके लिये सोम अभिषुत होते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें तेईसवाँ सूक्त समाप्त (७३५)

दशाहस्य गवामयनिकस्य अष्टमेहनि "यदिन्द्र प्रागपागुदक्" इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति। उक्तं वैताने। "दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदगिति" इति [वै० ८. ४] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहाहीने अस्य विनियोगः "क ईं वेद सुते सचा" [२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

दशाह गवामयनिकाके अष्टम दिनमें "यदिन्द्र प्रागपागुदक्" यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदगिति" (वैतानसूत्र ८।४)॥

तथा त्रिककुद्दशाहाहीनमें इसका विनियोग "क ईं वेद सुते सचा" (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

यत् । इन्द्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । हूयसे । नृऽभिः ।
सिम । पुरु । नृऽसूतः । असि । आनवे । असि । प्रऽशर्ध । तुर्वशे

हे इन्द्रदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण जिस ओरसे भी मनुष्योंसे बुलाये जाते हैं हे सर्व ! हे प्रकृष्टरूपसे शत्रुओंका संहार करने वाले ! आप इस मनुष्यमें आनुके लिये हैं॥ १॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि

यत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इन्द्र । मादयसे । सचा ।
कण्वासः । त्वा । ब्रह्मऽभिः । स्तोमऽवाहसः । इन्द्र । आ । यच्छन्ति । आ । गहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे समर्थ इन्द्र ! आप रुम रुशम और श्यावकमें साथ ही साथ आनन्द उत्पन्न करते हैं। कण्वगोत्री स्तोमधारी ऋषि आपको (हवि) देते हैं आप आइये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें चौबीसवाँ सूक्त समाप्त (७३६)

तनूपृष्ठे षडहे "अभि त्वा शूर नोनुमः" इत्यस्य विनियोगः "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ षडहमें "अभि त्वा शूर नोनुमः" का विनियोग "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) के साथ कह दिया है।

अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः १

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाःऽइव । धेनवः ।
ईशानम् । अस्य । जगतः । स्वःऽदृशम् । ईशानम् । इन्द्र । तस्थुषः

हे शूर ! बिना दुही हुई धेनुओंकी समान हम आपको प्रेरित करते हैं । आप इस चर जगत्के ईश्वर हैं । स्वर्गके द्रष्टा हैं और हे इन्द्र ! आप स्थावर जगत्के ईश्वर हैं ॥ १ ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः । न । जनिष्यते ।
अश्वऽयन्तः । मघऽवन् । इन्द्र । वाजिनः । गव्यन्तः । त्वा । हवामहे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आपकी समान और कोई दिव्य पदार्थ नहीं है, और कोई पार्थिव प्राणी आप की समान नहीं है, न कोई हुआ है और न कोई होगा । हे मघवन् ! इन्द्र ! हम गौ अश्व और अन्नकी प्रार्थना करते हुए आपका आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें पच्चीसवाँ सूक्त समाप्त (७३७)

तनूपृष्ठे षडहे "रेवतीर्नः सधमादे" इत्यस्य विनियोगः "यद्द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ षडहमें "रेवतीर्नः सधमादे" का विनियोग "यद्द्याव इन्द्र ते शतम्" (२०. ८१) के साथ कह दिया है ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

रेवतीः । नः । सधऽमादे । इन्द्रे । सन्तु । तुविऽवाजाः ॥ क्षुऽमन्तः । याभिः । मदेम ॥ १ ॥

हमारे यज्ञमें इन्द्रके आने पर हम यज्ञान्न और साधारण अन्न की धनमयी वस्तुओंसे सम्पन्न होवें और उनसे हम आनन्द पावें १

आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

आ । घ । त्वाऽवान् । त्मना । आप्तः । स्तोतृऽभ्यः । धृष्णो इति । इयानः ॥ ऋणोः । अक्षम् । न । चक्र्योः ॥ २ ॥

हे धृष्णो ! स्तोताओंकी कृपासे आपकी दयाको पाने वाला पुरुष गमनशील रथके दोनों चक्रोंमें रहने वाले अक्षकी समान आप्त होजाता है ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

आ । यत् । दुवः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । आ । कामम् । जरितॄणाम् । ऋणोः । अक्षम् । न । शचीभिः ॥ ३ ॥

-इति नवमेऽनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आपकी सेवा करने वाला पुरुष आपकी

शक्तियोंको पाकर स्तोताओंकी कामनाओंको गमनशील रथके अश्वकी समान (पूर्ण करनेमें मुख्य) होता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें छब्बीसवाँ सूक्त समाप्त (७३८)

विषुवति सौर्यपृष्ठे माध्यन्दिने "चित्रं देवानामुदगादनीकम्" [२०. १०७. १४] "तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्" [२०. १२३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। "चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ६. ३]॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठ माध्यन्दिनमें "चित्रं देवानामुदगादनीकं" (२० । १०७ । १४) "तत् सूर्यस्य देवत्वम् तन्महित्वम्" (२० । १२३) यह पृष्ठस्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ६ । ३)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै

तत्। सूर्यस्य। देवऽत्वम्। तत्। महिऽत्वम्। मध्या। कर्तोः। विऽतम्। सम्। जभार।

यदा। इत्। अयुक्त। हरितः। सधऽस्थात्। आत्। रात्री। वासः। तनुते। सिमस्मै ॥ १ ॥

यह सूर्यदेवका देवत्व और माहात्म्य है, कि-जब वह किरणों को अपनेमें अनुप्रवेश कराते हैं तो फैले हुए कामोंको बीचमें ही समेट लेते हैं, और तब इस भूलोकके लिये पृथ्वी अन्धकारको

चारों ओरसे समेट कर वस्त्ररूपमें अर्पण करती है (वह अन्धकार सूर्यसे नष्ट होता है अतः सूर्य महिमामय है) ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥

तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽचक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते । द्योः । उपऽस्थे ।

अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् । हरितः । सम् । भरन्ति ॥ २ ॥

इति नवमेऽनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

मैं मित्र और वरुण देवताके माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, कि-सूर्यदेव द्युलोकमें अपना रूप करते हैं, इनका दमकता हुआ तेज अनन्त है, दूसरा वारुण तेज कृष्ण है उसको सूर्यकी किरणें भली प्रकार भरण करती हैं-खैंच कर लेजाती हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त (७३९)

तनूपृष्ठे पडहे "कया नश्चित्र आ भुवत्" इत्यस्य विनियोगः "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पडहमें "कया नश्चित्र आभुवत्" का विनियोग "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

कया । नः । चित्रः । आ । भुवत् । ऊती । सदाऽवृधः । सखा ॥

कया । शचिष्ठया । वृता ॥ १ ॥

सदा वृद्धि करने वाले, चायनीय, सखा किस रक्षक शक्ति के द्वारा हमारी रक्षा करने वाले होंगे वह रक्षकत्ववृत्ति किस शक्तिमती धारणासे सम्पन्न होगी (सुखप्रदा धारणासे) ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृल्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

कः । त्वा । सत्यः । मदानाम् । मंहिष्ठः । मत्सत् । अन्धसः ॥

दृल्हा । चित् । आऽरुजे । वसु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमरूप अन्नका कौन अंश जो कि–मदजनक हवियों में श्रेष्ठ है तुम्हें प्रसन्न करता है, कि–आप जिससे प्रसन्न होकर दृढ़तासे रहने वाले धनको भक्तोंको विभाग करके देते हो ॥२॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ॥ शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अभि । सु । नः । सखीनाम् । अविता । जरितॄणाम् ॥ शतम् ।

भवासि । ऊतिऽभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मित्ररूप हम स्तोताओंके रक्षक आप रक्षा करनेके लिये भली प्रकार हमारे अभिमुख होकर सैंकड़ों बार (राम कृष्ण आदिके रूपमें) प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति

इमा। नु। कम्। भुवना। सीसधाम। इन्द्रः। च। विश्वे। च। देवाः। यज्ञम्। च। नः। तन्वम्। च। प्रऽजाम्। च। आदित्यैः। इन्द्रः। सह। चीक्लृपाति॥ ४॥

इस रमणीय यज्ञको [सब प्रकट होने वाले ऋत्विज इन्द्र और सकल देवता (तथा हम) सिद्ध करें, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञ शरीर और प्रजाको समर्थ रक्खें॥ ४॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववितां तनूनाम्।

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः॥ ५॥

आदित्यैः। इन्द्रः। सऽगणः। मरुत्ऽभिः। अस्माकम्। भूतु। अविता। तनूनाम्।

हत्वाय। देवाः। असुरान्। यत्। आयन्। देवाः। देवऽत्वम्। अभिऽरक्षमाणाः॥ ५॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें॥ ५॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।

शया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवऽहितम् । सनेम । मदेम । शतऽहिमाः ।

सुऽवीराः ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे संपन्न देखा है, इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावें और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहें ६

नवम अनुवाकमें अट्ठाईसवाँ सूक्त समाप्त (७४०)

पृष्ठ्यस्य षष्ठेऽहनि "अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान्" इति सुकीर्त्याख्यस्य सकलसूक्तस्य पच्छः शंसने प्राप्ते चतुर्थीम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । "अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थीमर्धर्चशः" इति [वै० ६. २] ॥

सौत्रामण्यां गृहीतेष्वाज्येषु "कुविदङ्ग यवमन्तः" [२०.१२५.२] इति ऋचा पयोग्रहान् गृह्णन्तमध्वर्युम् अभिमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । "गृहीतेष्वाज्येषु कुविदङ्ग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्" इति [वै० ५. ३] ॥

तत्रैव वपामार्जनादनन्तरम् "युवं सुराममश्विना" [२. १२५, ४-७] इति चतसृभिर्ऋग्भिः पयःसुराग्रहाणां होमान् अनुमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । "वपामार्जनाद्ध युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्" इति [वै० ५. ३] ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन "अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान्" इस सुकीर्ति नाम वाले सकल सूक्तके पद-पद करके शंसनकी प्राप्ति होने पर

चतुर्थीको अर्धर्चरूपमें कहे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि– "अपेन्द्र माचो मघवन्निमित्रान् इति सुकीर्तिम्। चतुर्थीमर्धर्चशः" (वैतानसूत्र ६। २)॥

सौत्रामणिमें घृतके ग्रहण करने पर "कुविदंग यवमन्तः" (२०। १२५) ऋचासे पयोग्रहोंको पकड़ते हुए अध्वर्युको अभिमन्त्रित करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— "गृहीतेष्वाज्येषु कुविदंग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्" (वैतानसूत्र ५। ३)॥

तहाँ ही वपामार्जनके अनन्तर "युवं सुराममश्विना" (२०। १२५। ४–७) इन चार ऋचाओंसे पयःसुराग्रहके होमोंका अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वपामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्" (वैतानसूत्र ५। ३)॥

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम

अप। इन्द्र। प्राचः। मघऽवन्। अमित्रान्। अप। अपाचः। अभिऽभूते। नुदस्व।

अप। उदीचः। अप। शूर। अधराचः। उरौ। यथा। तव। शर्मन्। मदेम॥ १॥

हे इन्द्र! पूर्वकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको दूर करिये, हे अभिभुते! पश्चिमकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको पीड़ित करिये, हे शूर इन्द्र! उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको बाधा दीजिये। जिससे आपके दिये विशाल सुखमें हम आनन्द पा सकें॥ १॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न
जग्मुः ॥ २ ॥

कुवित् । अङ्ग । यवऽमन्तः । यवम् । चित् । यथा । दान्ति ।
अनुऽपूर्वम् । विऽयूय ।
इहऽइह । एषाम् । कृणुहि । भोजनानि । ये । बर्हिषः । नमःऽवृक्तिम् । न । जग्मुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! बहुतसे यव वाले पुरुष जैसे जौंको मिला कर आनुपूर्वक काटते हैं, इसी प्रकार जो कुशाएँ हविसे संपृक्त नहीं हुई हैं उनका आप भक्षण करिये ॥ २ ॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥

नहि । स्थूरि । ऋतुऽथा । यातम् । अस्ति । न । उत । श्रवः ।
विविदे । सम्ऽगमेषु ।
गव्यन्तः । इन्द्रम् । सख्याय । विप्राः । अश्वऽयन्तः । वृषणम् ।
वाजयन्तः ॥ ३ ॥

ऋतुके अनुसार बहुतसा अन्न हमको नहीं मिला है, और युद्धोंमें भी हमको अन्न नहीं मिला है, इस लिये इन्द्रको मित्रके

लिये चाहते हुए विप्र, गौ अश्व और अन्नको चाहते हुए उन फलवर्षक इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

युवम् । सुरामम् । अश्विना । नमुचौ । आसुरे । सचा ।
विऽपिपाना । शुभः । पती इति । इन्द्रम् । कर्मऽसु । आवतम् ४

हे अश्विनीकुमारो ! अलंकारोंके देवता तुम दोनों नमुचिके साथ आसुर युद्ध होते समय सुन्दर रमणीय सोमका विशेषरूप से पान करके कर्मोंमें इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्न-
भिष्णक् ॥ ५ ॥

पुत्रम्ऽइव । पितरौ । अश्विना । उभा । इन्द्र । आवथुः । काव्यैः ।
दंसनाभिः ।
यत् । सुऽरामम् । वि । अपिबः । शचीभिः । सरस्वती । त्वा ।
मघऽवन् । अभिष्णक् ॥ ५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारोंने, माता पिताके पुत्रकी रक्षा करनेकी समान, अपनी चतुरता और शत्रुओंको काटनेकी युक्तियोंसे इंद्र की रक्षा की है, हे मघवन् ! जो आपने सुन्दर रमणीय सोमका पान किया है तो सरस्वती देवी अपनी शक्तियोंसे आपको स्नान करावे ॥ ५ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम

इन्द्रः । सुऽत्रामा । स्वऽवान् । अवःऽभिः । सुऽमृडीकः । भवतु । विश्वऽवेदाः ।
बाधताम् । द्वेषः । अभयम् । नः । कृणोतु । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥ ६ ॥

भली प्रकार रक्षा करने वाले धनी इन्द्र रक्षाओंके द्वारा हम को सुन्दर सुख प्रदान किया करें और यह बड़े भारी धनसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शत्रुओंका संहार करें और हमको अभय भी देवें, और हम शोभन प्रभाव वाले धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम

सः । सुऽत्रामा । स्वऽवान् । इन्द्रः । अस्मत् । आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोतु ।
तस्य । वयम् । सुऽमतौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ७

इति नवमेऽनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥

भली प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र हमसे दूर ही हमारे शत्रुओं को तिरोहित कर डालें अलग २ कर डालें, हम यज्ञके पात्र उन

इन्द्रदेवकी अनुग्रहरूपा बुद्धिमें रहते हुए उनके कल्याणमय भाव को पाते रहें ॥ ७ ॥

नवम अनुवाकमें उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त (७४१)

पृष्ठयस्य षष्ठेहनि "वि हि सोतोरसृक्षत" इति वृषाकप्याख्यं सूक्तं सूत्रोक्तधर्मकं शंसति । तद् उक्तं वैताने । "वि हि सोतोरसृक्षतेति वृषाकपिम्" इत्यादि [वै० ६. २] ॥

पृष्ठयके छठे दिन "वि हि सोतोरसृक्षत" यह वृषाकपि नामक सूक्त सूत्रमें कहे हुए धर्म वालेका गान करता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"वि हि सोतोरसृक्षतेति वृषाकपिम्" इत्यादि (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

वि हि सोतो॒रसृ॑क्षत॒ नेन्द्रं॑ दे॒वमं॑मंसत ।
यत्राम॑दद् वृ॒षाक॑पिर॒र्यः पु॒ष्टेषु॒ मत्स॑खा॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥ १ ॥

वि । हि । सोतो॑ः । असृ॑क्षत । न । इन्द्र॑म् । दे॒वम् । अ॒मं॑सत । यत्र॑ । अम॑दत् । वृ॒षाक॑पिः । अ॒र्यः । पु॒ष्टेषु॑ । मत्ऽस॑खा । विश्व॑स्मात् । इन्द्र॑ः । उत्ऽत॑रः ॥ १ ॥

अभिषव करने वालेसे अलग हुए (वृषाकपिने) इन्द्रको देवकी समान माना, ऐसे वृषाकपि देवता जो पुष्टोंमें स्वामी हैं, वह मेरे सखा हैं, इस कारण मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

परा॒ हीन्द्र॒ धाव॑सि वृ॒षाक॑पे॒रति॒ व्यथिः॑ ।
नो अह॒ प्र वि॑न्दस्य॒न्यत्र॒ सोम॑पीतये॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥ २ ॥

परा । हि । इन्द्र । धावसि । वृषाकपेः । अति । व्यथिः ।

नो इति । अह । प्र । विन्दसि । अन्यत्र । सोमऽपीतये ।० ॥२॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंको व्यथा देने वाले हैं, आप वृषाकपि से भी अधिक दौड़ते हैं, सोमपानके अतिरिक्त अन्यस्थलमें आप किसीसे नहीं मिलते हैं, अत एव इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

किम् । अयम् । त्वाम् । वृषाकपिः । चकार । हरितः । मृगः ।

यस्मै । इरस्यसि । इत् । ऊं इति । नु । अर्यः । वा । पुष्टिऽमत् ।

वसु ।० ॥ ३ ॥

क्या इन वृषाकपि (किरणोंसे कँपाने वाले देव) नेआपको हरित मृग बना दिया है, कि–जो आप स्वामी होने पर भी इन को पुष्टि–प्रद धन देते हैं, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥

यम् । इमम् । त्वम् । वृषाकपिम् । प्रियम् । इन्द्र । अभिऽरक्षसि ।

श्वा । नु । अस्य । जम्भिषत् । अपि । कर्णे । वराहऽयुः ।० ४

हे इन्द्र ! जिन प्रिय वृषाकपिकी आप रक्षा करते हैं, क्या कुत्ता इनके सामने जँभाई लेता है और क्या कान पर वराहको चाहने वाला जँभाई लेता है ? इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥

प्रिया । तष्टानि । मे । कपिः । विऽअक्ता । वि । अदूदुषत् ।
शिरः । नु । अस्य । राविषम् । न । सुऽगम् । दुःऽकृते । भुवम् ।०

कपिने मेरे प्रियोंको तनू किया है, व्यक्ताने दूषित किया है, मैं इसके शिरको शब्दित करता हूँ, दुष्कृतमें प्रादुर्भाव सुगम नहीं होता है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

न । मत् । स्त्री । सुभसत्ऽतरा । न । सुयाशुऽतरा । भुवत् ।
न । मत् । प्रतिऽच्यवीयसी । न । सक्थि । उत्ऽयमीयसी ।० ६

मेरी स्त्री सुभसत्तरा नहीं है, और सुयाशुतरा भी नहीं है, और प्रतिच्यवीयसी भी नहीं है । और सक्थियोंको उठाने वाली भी नहीं है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

उवे । अम्ब । सुलाभिके । यथाऽइव । अङ्ग । भविष्यति ।

भसत् । मे । अम्ब । सक्थि । मे । शिरः । मे । विऽइव । हृष्यति ॥

हे उवे अम्ब सुलाभिके अंग ! जैसा होगा तैसा हो, हे अम्ब ! मेरी कटि मेरी सक्थि और मेरा शिर पत्तीकी समान प्रसन्न होरहा है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥

किम् । सुबाहो इति सुऽबाहो । सुऽअङ्गुरे । पृथुस्तो इति पृथुऽस्तो । पृथुऽजघने ।

किम् । शूरऽपत्नि । नः । त्वम् । अभि । अमीषि । वृषाकपिम् ॥

हे सुन्दर भुजा वाली, हे सुन्दर अंगुलियों वाली, हे पृथुस्त वाली, हे पृथु जघन वाली, हे शूरपत्नि ! क्या तू हमको वृषाकपिके अभिमुख मारती है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥

अवीराम्ऽइव । माम् । अयम् । शराहः । अभि । मन्यते ।

उत । अहम् । अस्मि । वीरिणी । इन्द्रऽपत्नी । मरुत्ऽसखा ।०

यह अपने शरीरको नष्ट करना चाहने वाला नहुष मुझे वीर (पति) से रहित मानता है, परन्तु मैं वीर पतिसे सम्पन्न हूँ, मेरे पति मरुत्सखा इन्द्र हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

सम्ऽहोत्रम् । स्म । पुरा । नारी । समनम् । वा । अव । गच्छति ।

वेधाः । ऋतस्य । वीरिणी । इन्द्रऽपत्नी । महीयते ।० ॥ १० ॥

पहिले स्त्री होत्ररूप होती है और वह यागमें पुरुषके साथ बैठती है, इस प्रकार वह यज्ञकी रचना करने वाली है, ऐसी वीरिणी इन्द्रपत्नी प्रशंसा पाती है, क्योंकि–इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं१०

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।

नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥

इन्द्राणीम् । आसु । नारिषु । सुऽभगाम् । अहम् । अश्रवम् ।

नहि । अस्याः । अपरम् । चन । जरसा । मरते । पतिः ।०

मत नारियोंमें मैं इन्द्राणीको ही सौभाग्यवती समझता हूँ, क्योंकि–इसका पति अन्य वर्षको प्राप्त होकर भी नहीं मरता है,

जैसे, कि-और प्राकृत नारियोंके पति मर जाते हैं और न इस का पति इन्द्र होता है। वह कौनसा पति है ? उत्तर-जो सर्व-श्रेष्ठ इन्द्र हैं, वही इसके पति हैं ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥

न । अहम् । इन्द्राणि । ररण । सख्युः । वृषाकपेः । ऋते ।
यस्य । इदम् । अप्यम् । हविः । प्रियम् । देवेषु । गच्छति ।०

इन्द्र कहते हैं, कि-हे इन्द्राणि ! मैं अपने मित्र वृषाकपिको छोड़ कर अन्यत्र कहीं रमण नहीं करता हूँ, क्योंकि-इनकी हवि जलसे संस्कृत होती है. यह मुझे सब देवताओंमें प्रिय हैं, ऐसा मैं सब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र कहता हूँ ॥ १२ ॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥

वृषाकपायि । रेवति । सुऽपुत्रे । आत् । ऊं इति । सुऽस्नुषे ।
घसत् । ते इन्द्रः । उक्षणः । प्रियम् । काचित्ऽकरम् । हविः ।०

हे वृषाकपि सूर्यकी-पत्नी-विभूति वृषकपायि ! हे धनवति ! हे सुपुत्रे ! हे माध्यमिका वाणीसे सुस्नुषे ! तेरे इन माध्यमिक उक्ष अवश्यायसंस्त्यानोंको यह इन्द्र (सूर्य) पियें और तुम्हारी इष्ट सुखस्थान जलरूप हविको यह इन्द्र भक्षण करें, क्योंकि-इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षीः पृणन्ति मे विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥

उक्ष्णः । हि । मे । पञ्चऽदश । साकम् । पचन्ति । विंशतिम् ।
उत । अहम् । अद्मि । पीवः । इत् । उभा । कुक्षी इति । पृणन्ति । मे ।०

मुझ महान्के पन्द्रह साथमें बीसको पकाते हैं, मैं उनका भक्षण करता हूँ अतः मैं स्थूल हूँ, मेरी दोनों कोखें भरी हुई, इन्द्रदेव सबसे उत्तम हैं ॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥

वृषभः । न । तिग्मऽशृङ्गः । अन्तः । यूथेषु । रोरुवत् ।
मन्थः । ते । इन्द्र । शम् । हृदे । यम् । ते । सुनोति । भावयुः ।०

तीखे सींग वाले वृषभके यूथमें बारम्बार शब्द करनेकी समान हे इन्द्र ! आपका मन्थ जिसके हृदयमें सुख प्रदान करता है, वह सुख पाने वाला होता है, क्योंकि–इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्या ३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।
सः । इत् । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुषः । विऽजृम्भते ।०

जिसकी सक्थियोंके बीचमें कपृत् लटकता रहता है, वह ऐश्वर्य नहीं पाता है, और जिस बैठनेकी इच्छा वालेका रोमश जँभाई लेता है वह (उपभोग करनेमें) समर्थ होता है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्या ३ कपृद् विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुषः । विऽजृम्भते ।
सः । इत् । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत्.०

जिस (आसन लगा कर) बैठने वाले (योगी) का रोमश विजृंभण करता है वह (योगसाधनमें) समर्थ नहीं होता और जिसका कपृत् सक्थियोंमें लटकता रहता है (वह योगसिद्धि में) समर्थ होता है इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयम् । इन्द्र । वृषाकपिः । परस्वन्तम् । हतम् । विदत् ।

असिम् । सूनाम् । नवम् । चरुम् । आत् । एधस्य । अनः ।
आऽचितम् ।० ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपिने अपने नष्ट हुए अतः शत्रुधनको पाया था और एधकी तलवार, सूना, और आचित नवीन चरुको ग्रहण किया है। इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥

अयम् । एमि । विऽचाकशत् । विऽचिन्वन् । दासम् । आर्यम् ।
पिबामि । पाकऽसुत्वनः । अभि । धीरम् । अचाकशम् ।० १९

यह मैं कर्म करने वाले आर्यको ढूँढ़ता हुआ और दमकता हुआ आरहा हूँ, मैं प्रशस्यरूपसे निचोड़े हुए, धीरतामद सोमांश का पान कर रहा हूँ, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥

धन्व । च । यत् । कृन्तत्रम् । च । कति । स्वित् । ता । वि ।
योजना ।
नेदीयसः । वृषाकपे । अस्तम् । आ । इहि । गृहान् । उप ।०

जो मरुस्थल और अन्तरिक्ष हैं, उनका वियोजन कितना है,

हे वृषाकपे ! उस निकटतम स्थलसे आप घरको आइये, घरों के पास आइये, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्नंनशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥

पुनः । आ । इहि । वृषाकपे । सुविता । कल्पयावहै ।
यः । एषः । स्वप्नऽनंशनः । अस्तम् । एषि । पथा । पुनः ।०

हे भगवन् वृषाकपे ! जो आप अपने उदयसे स्वप्नको नष्ट करने वाले हैं, वह आप मार्गसे फिर अस्तको प्राप्त होजाते हैं, जो आप सब जगत्से श्रेष्ठ हैं, वह आप फिर उदयको प्राप्त हूजिये, फिर हम शोभन अर्थके उद्देश्यसे जगत्के हितमें प्रवृत्त हुए शोभन कर्मोंकी कल्पना करें अर्थात् उनको सगुण करें ॥ २१ ॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

यत् । उदञ्चः । वृषाकपे । गृहम् । इन्द्र । अजगन्तन ।
क्व । स्यः । पुल्वघः । मृगः । कम् । अगन् । जनऽयोपनः ।०

हे वृषाकपे इन्द्र (सूर्य) ! जब आप उत्तरमें रहते हुए भुवनों को प्रदक्षिण करते हुए गृहानुप्रवेशमें अन्तर्हित होते हैं, उससमय आपके घर आने पर-अस्त होने पर-लोक प्रकाशरहित होकर विस्मित होकर कहता है, कि-वह सब प्राणियोंमें रह कर बहुत

सा भक्षण करने वाले सूय कहाँ गए, वह जनमोहन सूर्य सबसे श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्यां अभूद् यस्यां उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

पर्शुः । ह । नाम । मानवी । साकम् । ससूव । विंशतिम् ।
भद्रम् । भल । त्यस्यै । अभूत् । यस्याः । उदरम् । आमयत् । विश्वस्मात् । इन्द्रः । उत्ऽतरः ॥ २३ ॥

मानवी पर्शु प्रसिद्ध है उसने साथ ही साथ बीसको प्रकट किया है, उसके लिये भद्र हुआ, जिसका उदर रोगसहित था, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

नवम अनु ।कमें तासवाँ सूक्त समाप्त (७४२)

ॐ अथ कुन्तापसूक्तानि ॐ

पृष्ठयस्य षष्ठेहनि "इदं जना उपश्रुत" इति कुन्तापम् अर्धर्चशः शंसति । तत्र प्रथमाश्चतुर्दश ऋचः पदावग्राहं शंसति । तद् उक्तं वैताने । "इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापम् अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्" इति [वै० ६. २]॥

पृष्ठयके छठे दिन "इदं जना उपश्रुत" इस कुन्तापको आधी २ ऋचा करके पढ़े, इसकी पहिली चौदह ऋचाओंको (पद पद करके) पदावग्राह पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा, है, कि- "इदं जना उपश्रुतेति कुन्ताप अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्" (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे १

हे मनुष्यों ! और हे कौरम नराशंस तुम स्तुति करने वालों के विषयमें यह बात सुनो, कि–हम साठ हजार रुशमोंको देते हैं १

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः२

जिसके शरीररूपी रथके वधूमान् बीस ऊँट बोझेको ढोने वाले हैं वह द्युलोक स्पर्श करते हुए हीडन करते हैं ॥ २ ॥

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥

हम अन्नके लिये सौ निष्क, दश माला, तीनसौ घोड़े और दश हजार गौओंका दान करते हैं ॥ ३ ॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! जैसे पके हुए फल वाले वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी चहचहाता है, इसी प्रकार आप शब्द करिये, हाथोंमें वर्तमान छुरा जैसे चलता है इसी प्रकार कर्मके बन्द होने पर भी आपकी जिह्वा चलती रहे ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥

बुद्धिसम्पन्न स्तोता वर्षक साँडोंकी समान चल रहे हैं इनके घरमें पुत्र और गौ बैठे हुए से हैं ॥ ५ ॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६ ॥

हे स्तोतः ! गौ प्राप्त कराने वाली और धन प्राप्त करानेवाली बुद्धिको धारण कर, देवताओंमें इस वाणीका श्रीणन कर, जैसे बाण फैंकने वाले मनुष्यकी रक्षा करता है, इसी प्रकार वाणी तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्याँ अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७ ॥

यदि देवता विश्वजनीन राजाके मनुष्योंका अतिक्रमण करता हो तो वह परिक्षित वैश्वानरके सुन्दर स्तोत्रको करे ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८॥

परिच्छिन्न (देवता) कल्याणको करता है, आसन (स्थिति) को विस्तृत करता है, इस प्रकार विस्तृत करता हुआ कौरव्य-पति जायासे कहता है ॥ ८ ॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥६॥

राजा परिक्षित्के राज्यमें जाया पतिसे बूझता है, कि—मंथा में परिश्रुत दधिको तेरे लिये कितना लाऊँ ॥ ६ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥

पका हुआ यवरूप धन मार्गमें उदररूप बिलको प्राप्त होता है, इस प्रकार राजा परिक्षित्के राज्यमें प्राणी कल्याणको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

इन्द्रने स्तोतासे कहा, कि-खड़ा हो, जनसमाजमें विचरण कर, मुझ उग्रके प्रतापसे तू कर्म कर तेरा शत्रु तुझको सब कुछ दे जाय ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

यहाँ गौएँ ब्यावें, यहाँ अश्व और पुरुष प्रकट होवें, और सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देने वाले पूषा यहाँ विराजें ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! यह गौएँ हिंसित न हों, और इनका पालन करने वाला गोप भी नष्ट न होवे, इन पर अमित्रता करने वाला वा चोर भी अपना प्रभाव न दिखा सके ॥ १३ ॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

तं प्रतिगिरेति प्रतिकुरुत । ओथामोदैवेति पञ्चपदा चतुर्दशी एकेन द्वाभ्यां वा प्रणौति ॥

इति नवमेनुवाके एकत्रिंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप हमें सूक्तसे प्रसन्न सा करते हैं और हम भी आपको कल्याणमय वचनसे आनन्दित करते हैं, अन्तरिक्षसे आप हमारी वाणियोंको सुनिये, हम कभी भी नष्ट न होवें ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें इकतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४३)

"यः सभेयो विदथ्यः" इति षोडशर्चः ॥

"यः सभेयो विदथ्यः" एतस्य शंसनप्रकारः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

"यः सभेयो विदथ्यः" यह सोलह ऋचा वाला सूक्त है ।

"यः सभेयो विदथ्यः" इसका शंसनप्रकार पूर्वसूक्तमें कह दिया है ।

यः स॒भेयो॑ विद॒थ्य॑ः सु॒त्वा य॒ज्वाथ॒ पूरु॑षः ।
सूर्यं॒ चामूं रि॒शाद॑स॒स्तद् दे॒वाः प्राग॑कल्पयन् ॥ १ ॥

जो सभाके योग्य, यज्ञगृहके योग्य, अभिषव करने वाला और यजन करने वाला पुरुष होता है, वह सूर्य (मण्डल) को भेद डालता है और ऊपरके लोकोंमें पहुँच जाता है, इस बातको देवताओंने पहिले ही बना रक्खा है ॥ १ ॥

यो जा॒म्या अप्र॑थय॒स्तद् यत् सखा॑यं॒ दुधू॑र्षति ।
ज्येष्ठो॒ यद॑प्रचेता॒स्तदा॑हु॒रध॑रा॒गिति॑ ॥ २ ॥

जो जामिसे विस्तृत करता है और जो मित्रका दुर्धर्षण करता है, जो अप्रचेता ज्येष्ठ है उसको अधराक् कहते हैं ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

जिस मंगलमय पुरुषका पुत्र धर्षणशील होता है, वह विप्र कामना करने योग्य वचनको कह सकता है, वह गन्धर्व होता है ३

यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

जो वणिक् रघुजिष्ठ्य और जो देवताओंको हवि आदि न देनेके स्वभाव वाला होता है, हम सुनते हैं, कि-वह शाश्वत धीरोंका अपाक्-मुख फेरने योग्य-होता है ॥ ४ ॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥५॥

जो स्तुति करने वाले-स्तोता यज्ञ करते हैं और जो परादान करते हैं वह स्वर्गमें सूर्यकी समान जाते हैं, हमारे इन्द्र महान हैं ५

योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

जो अनाक्ताक्ष है, अनभ्यक्त है, अमणिव अहिरण्यव और अब्रह्मा है, वह ब्रह्माका पुत्र तोता कल्पोंमें संमिता है ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुमणि, सुहिरण्यव, सुब्रह्मा ब्रह्माके पुत्र तोता हैं वह कल्पोंमें संमिता हैं ॥ ७ ॥

अप्रंपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेंषु संमिता ८

अप्रपाणा वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्य अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिंदिश्ययः ।
सुयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेंषु संमिता ९

सुप्रपाणा वेशन्ता रेवान् सुप्रतिदिश्यय सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ९ ॥

परिंवृक्ता च महिंषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
अनांशुरश्चायामी तोता कल्पेंषु संमिता ॥ १० ॥

परिवृक्ता, महिषी, स्वस्त्या और युधिगम अनाशुर आयामी तोता कल्पोंमें संमित है ॥ १० ॥

वावाता च महिंषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥

वावाता महिषी स्वस्त्या और युधिगम श्वाशुर अयामी और तोता कल्पोंमें सम्मित हैं ॥ ११ ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते १२

हे इन्द्र ! जो आपने दाशराजके मनुष्यको विगाहित किया है, आप सबके लिये विरूप हुए थे और आप यज्ञके साथ समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥१३॥

हे वर्षक मघवन् ! आप मर्याकर रविरूपमें अक्षुको नम्र करते हैं, और रौहिणको फैले हुए मुख वाला करते हैं और आपने वृत्रासुरके शिरको काट डाला है ॥ १३ ॥

य पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोस्तु ते ॥१४॥

जिन्होंने पर्वतोंको विशेषरूपसे स्थापित किया है, और जिन्होंने जलका अवगाहन किया है और जो इन्द्र वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं, ऐसे हे इन्द्र ! आपके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥

हरिनामक घोड़ोंकी पीठ पर दौड़ते हुए (इन्द्रको देख कर प्राणियोंने) उच्चैःश्रवासे कहा, कि–हे अश्व ! तेरा कल्याण हो तू विजयशील कर्मके लिये सुन्दरमाला वाले इन्द्रको सवारी दे१५

ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्ता नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥१६॥

इति नवमेनुवाके द्वात्रिंशं सूक्तम् ॥

जो श्वेत अजैश्रवस हारी आपकी दक्षिण ओर जुतते हैं, हे देवताओंके नमस्य ! हे उन पूर्ताओंको धारण करने वाले आप महत्त्व पाते हैं ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमें बत्तीसवाँ सूक्त समाप्त (७४३)

"एता अश्वा आ प्लवन्ते" इति पट्सप्ततयष्टादशपदान्त्यः मण्डलपष्ट मति त्वा ॥

"एता अश्वा आ प्लवन्ते" [२०. १२९] इत्यादि "नीलशिखण्डवाहनः" [२०. १३२] इत्यन्तम् ऐतशमलापाख्यं षट्सप्ततिपादसमुदायं पदावग्राहं सूत्रोक्तप्रकारेण शंसति । तदुक्तं वैताने । "एता अश्वा आप्लवन्त इत्यैतशप्रलापं पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन प्रणौति" इति [वै० ६. २]॥

"एता अश्वा आप्लवन्ते" (२० । १२९) इत्यादि "नीलशिखण्डवाहनः" (२० । १३२) तक ऐतशप्रलाप नामक छिहत्तर पादसमुदायको पद २ ग्रहण करके सूत्रोक्त रीतिसे पढ़े। वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"एताः अश्वा आप्लवन्त इत्यैतशप्रलापं पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन प्रणौति" (वैतानसूत्र ६।२)॥

एता अश्वा आ प्लवन्ते १ प्रतीपं प्रातिं सुत्वनम् २ तासामेका हरिक्किका ॥३॥ हरिक्किके किमिच्छसि ४ साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥ काहतं परास्यः ॥ ६ ॥ यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥ परि त्रयः ॥ ८ ॥ पृदाकवः ॥ ६ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥ अयन्महा ते अर्वाहः ॥११ स इच्छकं सघाघते १२ सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥ १३ ॥ पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥ पल्पं बद्ध वयो इति ॥१५॥ बद्धं वो अघा इति १६

अजांगार केविका १७ अश्वस्य वारो गोशपद्यके १८
श्येनीपती सा ॥१९॥ अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

इति नवमेनुवाके त्रयस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

ये अश्वा दौड़ती हैं ॥ १ ॥ सुत्वा प्रतीपको पूर्ण करता है २ उनमेंसे एक हरिक्निका है ॥ ३ ॥ हे हरिक्निके ! तू क्या चाहती है ॥ ४ ॥ हित रमणीय साधु पुत्रको ॥ ५ ॥ परास्य कहाँ अहिंसित रहता है ॥ ६ ॥ जहाँ यह तीन शिशपा हैं ॥ ७ ॥ चारों ओर तीन ॥ ८ ॥ सर्प ॥ ९ ॥ सींगको धौंकते हुए बैठे हैं ॥ १० ॥ यह दिन आपका बड़ा घोड़ा है ॥११॥ वह इच्छक का सधाय करता है ॥ १२ ॥ गोमीद्या गोगतियोंको सधायन करता है ॥ १३ ॥ पुरुष और पृथिवी तेरा निमिच्छन करते हैं १४ हे वद्ध यन्य अन्न है इस प्रकार ॥ १५ ॥ हे वद्ध तुम्हारी अघा है ॥ १६ ॥ केविका न जागी ॥ १७ ॥ अश्वका वार गोशपद्यकमें है ॥ १८ ॥ वह श्येनपती है ॥ १९ ॥ वह अनामया उपजीविका है ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें तेंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४५)

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१॥ को असिद्याः पयः २
को अर्जुन्याः पयः ॥३॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ७ अकुप्यन्तः कुपायकुः ८
आमणको मणत्सकः ॥९॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति १२

शृङ्ग उत्पन्न ॥१३॥ मा त्वाभि सखा नो विदन् १४
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५। इरावेदुमयं दत ।१६।
अथो इयन्नियन्निति ।।१७॥ अथो इयन्निति १८
अथो श्वा अस्थिरो भवन् १९ उयं यकांशलोकका

इति नवमेऽनुवाके चतुस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इन बहुतसे वाणोंको कौन स्वामित्वमें रखता है ॥ १ ॥ असि-
दीका पय कौन है ? ॥ २ ॥ अर्जुनीका पय कौन है ? ॥ ३ ॥
कार्ष्णीका पय कौन है ? ॥ ४ ॥ इससे वृक्ष, कुहसे वृक्ष ॥५॥
कुहाक पक्वकसे वृक्ष ॥ ६ ॥ यतिरूप धन वाली पृथिवियोंसे
मिलता हुआ ॥ ७ ॥ कुपायकु क्रोधमें भर गया ॥ ८ ॥ आम-
णक मणत्सक ॥ ९ ॥ किंतु हे अमतिसूर्य देव ॥१०॥ एनश्चि-
पङ्क्तिका हवि ॥ ११ ॥ प्रदुदुद मघामति ॥ १२ ॥ हे शृंग !
हे उत्पन्न ! ॥ १३ ॥ मेरा सखा तुझको और मुझको अभि-
मुख होकर प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वशाके पुत्रको प्राप्त होते हैं १५
हे दत इरावेदुमय ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त यह यह, इसप्रकार १७
इसके उपरान्त यह इस प्रकार है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त श्वा
अस्थिर होता है ॥ १९ ॥ उय यंकाशलोकका ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें चौंतीसवां सूक्त समाप्त (७४६)

आमिनोनिति भद्यते ॥१॥ तस्य अनु निभंञ्जनम् २
वरुणो याति वस्वभिः ।३। शतं वा भारती शवः ४
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५

अहंल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफेन इव ओहते ७
आये वनेनती जनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ६
इदं मह्यं मदूरिति ॥ ११ ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति १२
पाक वलिः ॥ १२ ॥ शक वलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥ अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हत इव ॥ १६ ॥ व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः १६
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

इति नवमेऽनुवाके पञ्चत्रिंशं सूक्तम् ॥

आमिनोनिति कहा जाता है ॥१॥ उसके पीछे निमज्जन है २ वरुणदेव रात्रियोंके साथ जाते हैं ॥ ३ ॥ सौ भारती बल ॥४॥ सौ हित रमणीय घोड़े सौ हिरण्य रथ्या, सौ हिरण्यय कुथ्या और सौ हिरण्यय निष्क ॥ ५ ॥ अहल कुश वर्तक ॥ ६ ॥ शफसे वहनसा करता है ॥ ७ ॥ आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥ धनिष्ठा नौका पकड़ी जाती हैं ॥ ६ ॥ यह मुझको प्रसन्न करने वाला है ॥१०॥ वह वृक्षोंके साथ स्थित होती है ॥ ११ ॥ पाकबलि ॥ १२ ॥ शकबलि ॥ १३ ॥ अश्वत्था खदिर धव ॥१४॥ चला, विरामको प्राप्त हो ॥ १५ ॥ सोने वाला मरा हुआसा होता है ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त होजाता है ॥ १७ ॥ मैं अन्तमें पूषाको दुहता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान् नामक मृगका अतिक्रमण करके अर्धर्च प्राप्त होवे ॥१६॥ हाथीकी दतियोंका दुवन कर २०

नवम अनुवाकमें पैंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४७)

आदलांबुकमेकंकम् ॥ १ ॥ अलांबुकं निखांतकम् २
कर्करिको निखांतकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मंथायति ४
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वंनिषदांततम् ६
न वंनिषदनांततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ८
क एषां दुन्दुभिं हनत् ६ यदीयं हंनत् कथं हनत्१०
देवी हंनत् कुहंनत् ॥११॥ पर्यांगारं पुनःपुनः १२
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि १३ हिरण्य इत्येकें अब्रवीत् १४
द्वौ वां ये शिशवः ॥१५॥ नीलंशिखण्डवाहंनः १६

इति नवमेनुवाके षट्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर अलाबुक (रामतुरई—लौकी) एक ॥ १ ॥ खोदने वाला अलाबुक ॥ २ ॥ निखातक कर्करिक ॥ ३ ॥ यह वायुको उखेड़ता है ॥ ४ ॥ कुलायको करता है ॥ ५ ॥ विस्तृत उग्रकी संभक्ति करता है ॥ ६ ॥ अविस्तृतका सेवन नहीं करता है ॥ ७ ॥ इनमेंसे कौन कर्करी लिखता है ॥ ८ ॥ इनमेंसे कौन दुन्दुभिको मारती है ॥ ६ ॥ यदि यह मारती है तो कैसे मारती है ॥ १० ॥ देवीने मारा, कुहनन किया ॥ ११ ॥ भवनके चारों ओर बारम्बार ॥ १२ ॥ उष्ट्रके तीन नाम हैं १३ एक हिरण्य यह बोला ॥ १४ ॥ जो शिशु हैं वे दो हैं ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहन ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमें छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त (७४८)

"वितनौ किरणौ द्वौ" इति मत्रहिकाख्या ऋचः अर्धर्चशः

शंसति । तद् उक्तं वैताने । "विततौ किरणौ द्वाविति मतह्लिकाः" इति [वै० ६. २]॥

"विततौ किरणौ द्वौ" इस मतह्लिका नामक ऋचाको अर्धर्च-रूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"विततौ किरणौ द्वाविति मतह्लिकाः" इति (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

विततौ किरणौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥

दो किरणें फैली हुई हैं पुरुष उनका पिशन करता है, हे कुमारि ! तू उसको जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ १ ॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै० २

हे पुरुष ! अनृतसे निवृत्त हुआ जो तू है, उस तेरी माताकी दो किरणें हैं । हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ २ ॥

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै० ३

हे मध्यमे ! तू दोनों कानोंको पकड़ कर नहीं देती है, हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि । न वै० ४

उत्ताना वा शयानाके लिये खड़ी होकर आलिङ्गन करती है, हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै०

तू श्लक्ष्णा वा श्लक्ष्णिकामें श्लक्ष्ण ही अवगूहन करती है, हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ५ ॥

अवंश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥६॥

इति नवमेऽनुवाके सप्तत्रिंशं सूक्तम् ॥

टूटे दाँत और लोमयुक्त सरोवरमें अवश्लक्ष्णकी समान है । हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है, वह तैसा नहीं है ॥ ६॥

नवम अनुवाकमें सैंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४२)

"इहेत्थ प्रागपागुदगधराक्" इति प्रतिराधाख्या ऋचः अर्धर्चशः शंसति । न संतनोति । तदुक्तं वैताने । "इहेत्थ प्रागपागुदधराग् इति प्रतिराधान् । न संतनोति" इति [वै० ६. २]॥

"इहेत्थ प्रागपागुदगधराक्" इन प्रतिराधा नामक ऋचाओं को अर्धर्चरूपमें पढ़े । विस्तार न करे । इसी बातको वैतानसूत्र में कहा है, कि-"इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् इति प्रति राधान् । न संतनोति" (वैतानसूत्र ६ । २)॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण अरालसे उत्भर्त्सन करो ॥ १ ॥

०वत्सा पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

० वत्स पुरुष बनना चाहते हुए बैठे हैं ॥ २ ॥

०स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

० स्थालीपाक विलीन होता है ॥ ३ ॥

०स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

० वह बहुत ही लीन होजाता है ॥ ४ ॥

०आष्टे लाहणि लीशांथी ॥ ५ ॥

० लाहनमें लीशाथी उपभोग करती हैं ॥ ५ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदंगधराग्-अर्दिल्ली पुच्छिलीयते ६

इति नवमेनुवाके अष्टत्रिंशं सूक्तम् ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तरमें अर्दिल्ली पुच्छिल होती है ६

नवम अनुवाकमें अड़तीसवाँ सूक्त समाप्त (७५०)

"भुगित्यभिगतः" इत्याजिज्ञासेन्याख्यास्तिस्र ऋचः शंसति। तद् उक्तं वैताने। "भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः" इति [वै० ६. २] ॥

"वीमे देवा अक्रंसत" इत्यतीवादाख्या ऋचः अर्धर्चशः शंसति। तद् उक्तं वैताने। "वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्" इति [वै० ६. २] ॥

"भुगित्यभिगतः" इन आजिज्ञासेनी नामक तीन ऋचाओं को पढ़ता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः" (वैतानसूत्र ६। २) ॥

"वीमे देवा अक्रंसत" इन अतीवाद नामक ऋचाओंको आधी २ ऋचा करके पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्" (वैतानसूत्र ६। २)॥

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

भुक् यह अभिगत है, शल् यह अपक्रान्त है, फल यह अभिष्ठित है, हे स्तोतः! इसके उपरान्त आप दुन्दुभिको ताड़ित करने वाले दो दण्डोंसे क्रीड़ा करिये ॥ १ ॥

कोशविलें रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहिं पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् २

कोशविल रजनमें ग्रन्थिके धानको जूतेमें पैरको और उत्तमा जनिमा, जन्य और उत्तमा जनियोंको मार्गमें (स्थापित करे) २

अलांबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥ ३ ॥

लौकी, पृषातक, अश्वत्थ, ढाक, पिपीलिक, अवटश्वस, विद्युत्, स्वापर्णशफ, गोशफ, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त तू बल से क्रीड़ा कर ॥ ३ ॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥

ये देवता दमक रहे हैं, हे अध्वर्यो ! आप शीघ्रतासे मन्त्रोंका उच्चारण करिये, आप गौओंके लिये सत्य और प्रभुत् हैं ४

इह इत्येतामर्धर्चशः प्रणवस्त्यनुते ॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव ।
होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

जो पत्नी है वह पूजन करती हुई ही पत्नी दीखती हैं, हे जरितः ! इसके उपरान्त आप भयोंकी जीतनेकी इच्छा करिये५

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६

हे स्तोतः ! आदित्य अंगिराओंसे दक्षिणाको लाये थे, हे जरितः ! उसको वे लाये थे, हे स्तोतः ! उसको वे लाये थे ६

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः

अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः

हे हमारे स्तोतः ! उसको उन्होंने ग्रहण किया था, हे हमारे स्तोतः ! उसको आपने ग्रहण किया था, अहानेतरसको नहीं विशेष चेतनोंको और यज्ञानेतरसको नहीं, किंतु विशेष चेतनों को हम सन्मुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।

उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥

श्वेत और आशुपत्वा आप पदमयी ऋचाओंसे युवा होते हैं और इनको शीघ्र मान पूर्ण करता है ॥ ८ ॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः

इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

हे अंगिरः ! आदित्य वसु और रुद्र तेरे अनुकूल हैं, तू इस धनको ग्रहण कर, यह धन विभु और प्रभु है, और यह धन विशाल और बृहत् है ॥ ९ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

देवता तुझे प्राणबल देवें, वह आपको चेतनता देने वाला होवें, तुम्हें प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होवें, प्रत्येक अवसर पर आपको प्राप्त होवें ॥ १० ॥

सप्तदश पदान्यष्टादशभिर्व्याख्याता प्रतिगरे विकारः । ॐ ह जरितस्तथा ह जरितरिति विपर्यासं जरितुं प्रतिष्वेवं प्रतिगरामके सर्वाश्विविपाणिनास्त्वमिन्द्र शर्म रिणेति तिस्रो भूतेच्छदो अर्धर्चशः॥

सत्रह पद अठारहसे व्याख्यात होगए, प्रतिगरमें विकार है। ओं ह जरितस्तथा ह जरितः इस विपर्यायसे स्तुति करनेके लिये तथा प्रतिगरामकमें सर्वाशु हाथसे "त्वमिन्द्र शर्मरिणा" इन ऋचाओंके होने पर इनका अर्धर्चरूपमें पढ़े ।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! आप इस लोक और परलोक दोनों लोकोंके पार तक पहुँचने वाले (देवताओं) के लिये शर्मरी (कल्याणप्रद अवयव) से हव्यका वहन करिये । और जिसको अन्न मिलना दुस्तर होरहा है उस स्तुति करने वाले विप्रके लिये धनका संभक्तन करने वाली शक्तिको दीजिये ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! आप परकटे अत एव खिचड़ते हुए कपोतके लिये काकुनी, और अखरोटको तथा बहुतसे जलको करिये ॥१२॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

इति नवमेऽनुवाके एकोनचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

चमड़ेकी रस्सीसे तीन स्थानोंमें बँधा हुआ अरंगर बारम्बार

शब्द करता है । यह पृथ्वी की प्रशंसा करता है और पृथ्वी- रहित स्थानका अपसेवन करता है ॥ १३ ॥

प्रथम अनुवाकमें उन्नालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५१)

"यदस्या" इति षोडश आहनस्या वृषाकपिवत् वैशिपमुच्चमेन पादेन प्रणौति ॥

"यदस्या अंहुभेद्याः" इत्याहनस्याख्याः षोडशर्चः वृषाकपि- शस्त्रवच्छंसति । तद् उक्तं वैताने । "यदस्या अंहुभेद्या इत्याह- नस्या वृषाकपिवत्" इति [वै० ६. २]॥

"यदस्या अंहुभेद्याः" इन आहनस्य नामक सोलह ऋचाओं को वृषाकपिशस्त्रकी समान पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— 'यदस्या अंहुभेद्या इत्याहनस्या वृषाकपिवत्" (वैतान- सूत्र ६ । २) ॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

जो इस पापभेदिनीका स्थूल कृधु क्षीण होगया है, शकुल (सौरा मछली) की समान इसके मुष्क गोशफमें हिलते हैं १

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

जब स्थूल पसः (शिश्न) से अणुमें मुष्कोंका प्रहार किया तब जैसे रेतमें गधे बढ़ते हैं तैसे ही इस चारों ओर गमन करती हुई आच्छादिकामें मुष्क बढ़ते हैं ॥ २ ॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेवपद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥

जो अल्पिकामें अल्पिका है, और जो कर्कधूकाकी समान अवपदन करती है, वासन्तिक तेजनकी समान अवातके लिये विस्तृत् में जाते हैं ॥ ३ ॥

यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥४॥

जब देवता प्रविष्ट सुन्दर गौमें प्रसन्न होते हैं, तब सत्य अक्षिभूकी समान सकुला नारी वार वार भला दीजाती है ॥ ४ ॥

महानग्न्यतृपद्वि मोक्रदस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

ऊपर खड़े हुओं पर न दौड़ता हुआ, उत्क्रमण न करताहुआ महाअग्नि तृप्त होता है, शक्तिकानन हम स्वचमशक दमकते हुओं को प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महान् अग्नि उलूखलका अतिक्रमण करती हुई कहने लगी कि–हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं, तैसे ही ॥ ६ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवति ॥ ७ ॥

महान् अग्नि कहती है, कि–तू भ्रष्ट होकर भी वारम्वार प्रकट होजाता है, हे वनस्पते ! जिस प्रकार तू पूरण होता है तिसी प्रकार ॥ ७ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदुह्यते ॥ ८ ॥

महान् अग्नि कहता है, कि-तू भ्रष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट होजाता है, जैसे अवस्था जीर्ण होकर स्वर्गमें हविकी समान धारण की जाती है ॥ ८ ॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महान् अग्नि कहता है कि-यह शिश्न भली प्रकार आवेशित कर दिया है, इस प्रकार हम फलसम्पन्न वृक्ष के छाजमें छाज का भजन करते हैं ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् १०

महान् अग्नि कृक शब्द करने वालेपर कर्मसे दौड़ता है। हम जानते हैं कि-वह मृगकी समान शिरसे धाणिकाका हरण करता है

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥

महान् अग्नि दौड़ते हुए महानग्नके पीछे दौड़ता है। इसकी इन इन्द्रियोंकी रक्षा कर,मेरे साथ मैथुन कर और भात भक्षण कर ११

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

शोभन दमकने वाला महान् अग्नि भली प्रकार विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़े बड़ोंको कुरेदने वाला है, स्थूल कृशको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥

वशाने इस जली हुई अंगुलिको रचा है, दूसरे उग्रतकी रचना करते हैं महान् कल्याणकारी होता है, मेरे साथ मैथुन कर और भातका भक्षण कर ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति १४

यह विशिष्ट देवता महान् अग्नि विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़ेको साधु खोद डालता है, कुमारिका पिंगलिका कार्मको करके दौड़ जाती है ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५॥

महान् बिल्व भद्र है, महान् उदुम्बर भद्र है, जो महान् चारों ओरसे पीड़ा देता है, वह बड़ों २ को भली प्रकार खोदन करने वाला है ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके चत्वारिंशं सूक्तम् ॥
इति कुन्तापसूक्तानि ॥

जो पिंगलिका पीवरी कुमारी वसन्तको पाजावे तो तैलके कुण्डमेंसे अँगूठेकी समान इस कुरेदते हुए शुद्धका उद्धार करती है

नवम अनुवाकमें चालीसवाँ सूक्त समाप्त (७१२)

सोमयागे "दधिक्राव्णः" [२०. १३७. ३] इत्यस्या ऋच आग्नीध्रीये दधिभक्षणे विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । "आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधिक्राव्ण इति" इति [वै० ३. १३]॥

तथा पृष्ठ्यषडहे "दधिक्राव्णः" इत्येतामृचम् अर्धर्चशः शंसति। तद् उक्तं वैताने । "दधिक्राव्णो अकारिषमित्यर्धर्चशः" इति [वै० ६. २]॥

तत्रैव "सुतासो मधुमत्तमाः" [२०. १३७. ४–६] इति पावमान्याख्यास्तिस्र ऋचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । "सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः" इति [वै. ६. २]॥

तत्रैव "अव द्रप्सो अंशुमतीम्" [२०. १३७. ७–९] इति तिस्र ऋचः पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । "अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः" इति [वै० ६. २]॥

सोमयागमें "दधिक्राव्णः" (२० । १३७ । ३) ऋचाका आग्नीध्रीय दधिके भक्षणमें विनियोग है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधि क्राव्णः" (वैतानसूत्र ३ । १३) ॥

तथा पृष्ठ्यषडहमें "दधिक्राव्णः" ऋचाको अर्धर्चरूपमें पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"दधि क्राव्णो अकारिषमित्यर्धर्चशः" (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहाँ ही "सुतासो मधुमत्तमाः" (२० । १३७ । ४–६) इन पावमानी नामक तीन ऋचाओंको अर्धर्चरूपमें पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः" (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहाँ ही "अव द्रप्सो मधुमतीम्" (२०।१३७।७-६) इन तीन ऋचाओंको पद पद करके पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः" (वैतानसूत्र ६।२)॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥

यत् । ह । प्राचीः । अजगन्त । उरः । मण्डूरऽधाणिकीः ।
हताः । इन्द्रस्य । शत्रवः । सर्वे । बुद्बुदऽयाशवः ॥ १ ॥

जब प्राचीन मण्डूरधाणिकी वक्षःस्थलको प्राप्त हुई, तब इन्द्रके सब बुद्बुदयाशु शत्रु मारे गए ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ २ ॥

कपृत् । नरः । कपृथम् । उत् । दधातन । चोदयत । खुदत । वाजऽसातये ।
निष्टिग्र्यः । पुत्रम् । आ । च्यवय । ऊतये । इन्द्रम् । सऽबाधः । इह । सोमऽपीतये ॥ २ ॥

मनुष्य कपृत् है, तुम कपृथको धारण करो, अन्नकी प्राप्तिके लिये प्रेरणा करो, रक्षा पानेके लिये पुत्रको उत्पन्न करो और

वाचः । पतिः । मखस्यते । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ॥५॥

सोम इन्द्रदेवके लिये पवित्र किया जाता है, इस प्रकार देवता कहते हैं, विश्वके ईश्वर वाचस्पति बलपूर्वक प्रशंसा पाते हैं ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रऽधारः । पवते । समुद्रः । वाचम्ऽईङ्खयः ।
सोमः । पतिः । रयीणाम् । सखा । इन्द्रस्य । दिवेऽदिवे ॥ ६ ॥

यह गमन करने वाला जलसे भरा हुआ सहस्रों धारों वाला सोम पवित्र किया जारहा है, यह सोम धनोंका स्वामी है और प्रत्येक स्तोत्रके लिये इन्द्रका मित्र बन जाता है ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥

अव । द्रप्सः । अंशुऽमतीम् । अतिष्ठत् । इयानः । कृष्णः । दशऽभिः । सहस्रैः ।
आवत् । तम् । इन्द्रः । शच्या । धमन्तम् । अप । स्नेहितीः । नृऽमनाः । अधत्त ॥ ७ ॥

दश सहस्र किरणोंसे (रसको) खेंचने वाले सूर्य पृथ्वीको

विशः । अदेवीः । अभि । आऽचरन्तीः । बृहस्पतिना । युजा । इन्द्रः । ससहे ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त शुक्रने अपने शरीरको सूक्ष्म करके अंशुमती ओड़में स्थापित कर दिया, जो देवताओंको न मानने वाली प्रजाएँ हैं, उनको इन्द्रने बृहस्पतिकी सहायता लेकर नष्ट कर दिया ६

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोशत्रुभ्यों अभवः शत्रु-रिन्द्र ।
गूल्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥

त्वम् । ह । त्यत् । सप्तऽभ्यः । जायमानः । अशत्रुऽभ्यः । अभवः शत्रुः । इन्द्र ।
गूल्हे इति । द्यावापृथिवी इति । अनु । अविन्दः । विभुमत्ऽभ्यः । भुवनेभ्यः । रणम् । धाः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सातों अशत्रुओंमें प्रकट होकर उनके शत्रु बन जाते हैं, आपने द्यावापृथिवीका आलिंगन किया है और इसके अनन्तर आपने उनको प्राप्त किया है, और विभुत्व वाले भुवनोंसे रणको ठान दिया था ॥ १० ॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्ऽभृतः । सऽबलः । अनपऽच्युतः । ववक्षे । ऋष्वः । अस्तृतः ॥ १४ ॥

इति नवमेनुवाके एकचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्रकी समान बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंको) यजमानों पर पहुँचाते हैं ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें इकतालीसवाँ सूक्त समाप्त (८५३)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थ्येषु "महाँ इन्द्रो य ओजसा" इत्यस्य विनियोगः "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०.४७] इत्यनेन सह उक्तः

तथा छन्दोमाख्येषु त्र्यहःसु अस्य विनियोगस्तत्रैवोक्तः ॥

तथा त्र्यहाणां तृतीयेष्वहःसु "महाँ इन्द्रो य ओजसा" इत्यस्य विनियोगः "अभि प्र वः सुराधसम्" [२०. ५१] इत्यत्र उक्तः

तथा चतुरहाणां चतुर्थेष्वहःसु "महाँ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] "य एक इद् विदयते" [२०. ६३. ४] इत्येतौ आज्यो-क्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद् विदयत इति" इति [वै० ७. ३] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्य अष्टमेहनि एष आज्यस्तोत्रियो भवति। तद् उक्तं वैताने। "अष्टमे महाँ इन्द्रो य ओजसेति" इति [वै० ८. ४]

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थोंमें "महाँ इन्द्रो य ओजसा" इसका विनियोग "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) के साथ कह दिया है ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम सत्यकी प्रजाको पुष्ट करो, कि— जिसका अग्निएँ भरण कर रही हैं और ब्राह्मण यज्ञका वहन करने वाले अग्निसे जिसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

कण्वाः । इन्द्रम् । यत् । अक्रत । स्तोमैः । यज्ञस्य । साधनम् ॥ जामि । ब्रुवते । आयुधम् ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके द्विचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

कण्वने जिस इन्द्रको स्तोमोंसे यज्ञका साधन बनाया है उसी को जामि आयुध बताती हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें बयालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५५)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थेषु स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरम् "आ नूनमश्विना युवम्" [२०. १३६] "तं वां रथम्" [२०. १४३] इति सूक्ते शंसति । तत्र पूर्वसूक्तस्य दशमीं द्वादशीमृचम् उत्तरसूक्तं च पच्छः शंसति । तदुक्तं वैताने । "आ नूनमश्विना युवं तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छः" इति [वै० ४. ३] ॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थोंमें स्तोत्रिय और अनुरूपके अनंतर "आ नूनमश्विना युवम् "(२० । १३६) "तं वां रथम्" (२० । १४३) इन सूक्तोंको पढ़े । इनमें प्रथमसूक्तकी दशमी और बारहवीं ऋचाको और अगले सूक्तको भी पद पद करके पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"आ नूनमश्विना युवं तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छः" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो ब्राह्मण आपके कर्मोंका परिमार्जन करते हैं, इस सबको काण्वका कृत्य समझो ॥ ३ ॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः

अयम् । वाम् । घर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । सिच्यते ।
अयम् । सोमः । मधुऽमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
येन । वृत्रम् । चिकेतथः ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आपका यह स्तोम घर्मसे परिपिञ्चित होना है, यह सोम मधुसम्पन्न है, हे हविरूप क्रियात्मक धनसे संपन्न अश्विनीकुमारों ! इस सोमसे आप आवरक शत्रुको जानते हैं ४

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यत् । अप्ऽसु । यत् । वनस्पतौ । यत् । ओषधीषु । पुरुऽदंससा ।
कृतम् ।
तेन । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥ ५ ॥

इति नवमेऽनुवाके त्रिचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों जलमें वनस्पतिमें और ओषधियोंमें जो कृत है, उससे आप मुझको पूर्ण करिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें तैंतालीसवां सूक्त समाप्त (७५५)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम शीघ्रगामी, चलने वाले रथमें बैठते हो, यह आपके लिये किये हुए मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहें ॥ ३ ॥

यद्द्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥४॥

यत् । अद्य । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।
यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उक्थोंसे आपकी शरणमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काण्वकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः । ऋषिः । यत् । वाम् । दीर्घऽतमाः । जुहाव ।
पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सदनेषु । एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोषसा । यत् । वा ।
विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान प्रीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्द्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

यत् । अद्य । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजऽसातये ।
यत् । पृत्ऽसु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अवः

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नप्राप्तिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानिं वां हिता ।
इमे सोमासो अधिं तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।
इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदौ । इमे । कण्वेषु । वाम् ।
अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका हित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें है अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

(हे स्तोतः !) आप प्रातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको (अपने स्तोत्रको) जताइये, हे सूनृते देवि ! आप उसको प्रशंसनीय करिये और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुंषो यासिं भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथों वर्तिर्यांति नृपाय्यंम् ॥ ३ ॥

यत् । उषः । यासि । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।
आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृऽपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ ! तू अपनी कान्तिसे उषाको प्राप्त होता है और सूर्यके साथ दमकता है, और अश्विनीकुमारोंका रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें आता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊर्धभिः ।
यद्वा वाणीरनूंषत प्र देवयन्तों अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आऽपीतासः । अंशवः । गावः । न । दुह्रे । ऊधऽभिः ।
यत् । वा । वाणीः । अनूषत । प्र । देवऽयन्तः । अश्विना ॥४॥

जब किरणें पी हुईसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय ऋत्विज स्तुति करते हैं, और वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र द्युम्नाय प्र शवंसे प्र नृपाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

८, ६) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"मधुमतीरोषधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या" (वैतानसूत्र ४। ३)॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १

तम्। वाम्। रथम्। वयम्। अद्य। हुवेम। पृथुऽज्रयम्। अश्विना। समऽगतिम्। गोः।
यः। सूर्याम्। वहति। वन्धुरऽयुः। गिर्वाहसम्। पुरुऽतमम्। वसुऽयुम्॥ १॥

हे अश्विनीकुमारो! हम आज आपके उस रथका आह्वान करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है. उस वाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आह्वान करता हूँ॥ १॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्॥ २॥

युवम्। श्रियम्। अश्विना। देवता। ताम्। दिवः। नपाता। वनथः। शचीभिः।

पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ४

हिरण्ययेन । पुरुभू इति पुरुऽभू । रथेन । इमम् । यज्ञम् । नासत्या । उप । यातम् ।

पिबाथः । इत् । मधुनः । सोम्यस्य । दधथः । रत्नम् । विधते । जनाय ॥ ४ ॥

हे महान्रूपमें प्रकट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः । यातम् । दिवः । अच्छ । पृथिव्याः । हिरण्ययेन । सुऽवृता । रथेन ।

मा । वाम् । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयन्तः । सम् । यत् । ददे । नाभिः । पूर्व्या । वाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृत् रथके द्वारा द्युलोकसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने वाले आपको वशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व्य (नवीन) बन्धनकारिणी (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

को नामरत्ना सुमतिसे संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारो ! आप इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप पर ही निर्भर है७

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ८

मधुऽमतीः । ओषधीः । द्यावः । आपः । मधुऽमत् । नः । भवतु । अन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य । पतिः । मधुऽमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु । एनम् । चरेम ॥ ८ ॥

ओषधियें हमारे लिये मधुमती होवें, द्युलोक हमारे लिये मधुमय हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमय हो, क्षेत्रका पति हमारे लिये मधुमय हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ६ ॥

पनाय्यम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः । रजसः । पृथिव्याः ।
सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽइष्टौ । सर्वान् । इत् । तान् । उप । यात । पिबध्यै ॥ ६ ॥

नवमेनुवाके सप्तचत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोनुवाकः ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम शीघ्रगामी, चलने वाले रथमें बैठते हो, यह आपके लिये किये हुए मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहें ॥ ३ ॥

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥४॥

यत् । अद्य । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।
यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम आज उक्थोंसे आपकी शरणमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारो ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काण्वकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः । ऋषिः । यत् । वाम् । दीर्घऽतमाः । जुहाव ।
पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सदनेषु । एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! कक्षीवान् व्यश्व और दीर्घतमा नामक ऋषियोंने जो आपके निमित्त आहुति दी है, और जो वेनका पुत्र पृथी है, वह आपके सदनोंमें ही है, हे अश्विनीकुमारों ! इस लिये प्रबुद्ध होइये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें चौवालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५६)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यातम् । छर्दिःऽपा । उत । नः । परःऽपा । भूतम् । जगत्ऽपा । उत । नः । तनूऽपा ।
वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप हमारे भवनकी रक्षा करते हुए प्राप्त हूजिये, श्रेष्ठ रक्षक होते हुए आप प्राप्त हूजिये, जगत्के रक्षक होते हुए प्राप्त हूजिये और हमारे शरीरके रक्षक बनते हुए प्राप्त हूजिये, पुत्र और पौत्रके लिये वर्तन करते हुए प्राप्त हूजिये ॥१॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यत् । इन्द्रेण सऽरथम् । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना । भवथः । समऽओकसा ।

यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोषसा । यत् । वा । विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान प्रीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्द्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

यत् । अद्य । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजऽसातये । यत् । पृत्ऽसु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अवः

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नप्राप्तिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है३

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता । इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदौ । इमे । कण्वेषु । वाम् । अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका हित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें हैं अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ५

यत् । नासत्या । पराके । अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ।
तेन । नूनम् । विऽमदाय । प्रऽचेतसा । छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ।

इति नवमेनुवाके पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो औषधि दूर वा पास है, आप अपने ज्ञानयुक्त मनसे विशेषमद करनेके लियेउ सको दीजिये और वत्सके लिये घर दीजिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें छयालीसवाँ सूक्त प्रमाण (७५७)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

अभुत्सि । ऊं इति । प्र । देव्या । साकम् । वाचा । अहम् । अश्विनोः ।
वि । आवः । देवि । आ । मतिम् । वि । रातिम् । मर्त्येभ्यः १

मैं ज्ञानमय बुद्धिसे अश्विनीकुमारोंको साथ रहने वाला जानता हूँ, हे बुद्धिदेवि ! आप हमारी मतिको प्रकाशित करिये और मनुष्योंको धन प्रदान करिये ॥ १ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

प्र । बोधय । उषः । अश्विना । प्र । देवि । सूनृते । महि ।
प्र । यज्ञऽहोतः । आनुषक् । प्र । मदाय । श्रवः । बृहत् ॥ २॥

(हे स्तोतः !) आप प्रातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको (अपने स्तोत्रको) जताइये, हे सूनृते देवि ! आप उसको प्रशंसनीय करिये. और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यत् । उषः । यासि । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।
आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृऽपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ ! तू अपनी कान्तिसे उषाको प्राप्त होता है और सूर्यके साथ दमकता है, और अश्विनीकुमारोंका रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें आता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आऽपीतासः । अंशवः । गावः । न । दुह्रे । ऊधऽभिः ।
यत् । वा । वाणीः । अनूषत । प्र । देवऽयन्तः । अश्विना ॥४॥

जब किरणें पी हुईसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय ऋत्विज स्तुति करते हैं, और वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

प्र । द्युम्नाय । प्र । शवसे । प्र । नृऽसह्याय । शर्मणे ।
प्र । दक्षाय । प्रऽचेतसा ॥ ५ ॥

मैं प्रकृष्टरूपसे धन पानेके लिये, और मनुष्योंको दबाने वाला श्रेष्ठ बल पानेके लिये तथा कल्याण और दक्ष पानेके लिए प्रकृष्ट ज्ञान वाले मनसे (आपकी स्तुति करता हूँ) ॥ ५ ॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

यत् । नूनम् । धीभिः । अश्विना । पितुः । योना । निऽसीदथः ।
यत् । वा । सुम्नेभिः । उक्थ्या ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके षट्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

जो आप बुद्धियोंसे अपने पालकके कारणमें बैठते हैं और जो सुखमद कारणोंसे प्रशंसनीय होते हैं (इस कारण मैं आप की स्तुति करता हूँ) ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें छियालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५८)

"तं वां रथम्" इत्यस्य विनियोगः "आ नूनमश्विना युवम्" [२०. १३६] इत्यत्र उक्तः ॥

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थे "मधुमतीरोषधीः" [२०. १४३. ८. ६] इति द्वे ऋचौ परिधानीयाशस्त्रयाज्ये क्रमेण भवतः । तद्व उक्तं वैताने । मधुमतीरोषधीरिति परिधानीया । उत्तरा याज्या" इति [वै० ४. ३] ॥

"तं वां रथम्" इसका विनियोग "आ नूनमश्विना युवम्" (२० । १३६) में कह दिया है ।

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें "मधुमतीरोषधीः" (२०।१४३।

८, ६) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"मधुमतीरोषधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १

तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम । पृथुऽज्रयम् । अश्विना ।
समऽगतिम् । गोः ।
यः । सूर्याम् । वहति । वन्धुरऽयुः । गिर्वाहसम् । पुरुऽतमम् ।
वसुऽयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आह्वान करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है. उस वाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवः । नपाता ।
वनथः । शचीभिः ।

युवोः । वपुः । अभि । पृक्षः । सचन्ते । वहन्ति । यत् । ककुहासः । रथे । वाम् ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप लक्ष्मीके अधिष्ठात्री देवता हैं और उसको द्युलोकसे नहीं गिरने देते हैं और आप शक्तियोंसे उस का सेवन करते हैं, अन्न आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं और जो विशाल (घोड़े) रथमें आपका वहन करते हैं, वह आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः । ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥

कः । वाम् । अद्य । करते । रातऽहव्यः । ऊतये । वा । सुतऽपेयाय । वा । अर्कैः ।

ऋतस्य । वा । वनुषे । पूर्व्याय । नमः । येमानः । अश्विना । आ । ववर्तत् ॥ ३ ॥

आज कौन हवि देने वाला आपकी सेवा कर रहा है, और कौन रक्षा पानेके लिये और अभिषुत सोमका पान करनेके लिये मन्त्रोंसे आपका आह्वान कर रहा है, यज्ञका सेवन करने वाले (इन्द्रके लिये) प्रणाम है, और जो उपरम करता हुआ इन अश्विनीकुमारोंको लाता है उसके लिये प्रणाम करता है ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।

पिबा॑थ इन्म॒धुनः॑ सो॒म्यस्य॒ दध॑थो॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ४

हिर॒ण्यये॑न । पु॒रु॒भू इति॑ पुरु॒ऽभू । रथे॑न । इ॒मम् । य॒ज्ञम् । ना॒सत्या॑ । उप॑ । या॒त॒म् ।

पिबा॑थः । इत् । मधु॑नः । सो॒म्यस्य॑ । दध॑थः । रत्न॑म् । वि॒ध॒ते । जना॑य ॥ ४ ॥

हे महान्‌रूपमें प्रकट होने वाले अश्विनीकुमारो ! आप हित रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो॑ यातं दि॒वो अच्छा॑ पृथि॒व्या हि॑र॒ण्यये॑न सु॒वृता॒ रथे॑न ।

मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन् देव॒यन्तः॒ सं यद् द॒दे नाभिः॑ पू॒र्व्या वा॑म् ॥ ५ ॥

आ । नः॒ । या॒त॒म् । दि॒वः । अच्छ॑ । पृ॒थि॒व्याः । हि॒र॒ण्यये॑न । सु॒ऽवृता॑ । रथे॑न ।

मा । वा॒म् । अ॒न्ये । नि । य॒म॒न् । दे॒व॒ऽयन्तः॑ । सम् । यत् । द॒दे । नाभिः॑ । पू॒र्व्या । वा॒म् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम हित रमणीय सुन्दर रथके द्वारा द्युलोकसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने वाले आपको वशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व (नवीन) बन्धकारिणी (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमी-
ळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥

नु। नः। रयिम्। पुरुऽवीरम्। बृहन्तम्। दस्रा। मिमाथाम्।
उभयेषु। अस्मे इति।
नरः। यत्। वाम्। अश्विना। स्तोमम्। आवन्। सधऽस्तुतिम्।
आजऽमीळ्हासः। अग्मन् ॥ ६ ॥

हे अश्विनीकुमारो! आप इस यजमानके लिये दोनों लोकोंमें बहुतसे—वीर्यसे उत्पन्न होने वाले उन पुत्र पौत्र आदि—वीरोंसे सम्पन्न धनको दोनों लोकोंमें प्रदान करिये, हे अश्विनीकुमारो! जो मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं, वह स्तुतिके साथ ही आजमीढ़ होकर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युव-
द्रिक् ॥ ७ ॥

इहऽइह। यत्। वाम्। समना। पपृक्षे। सा। इयम्। अस्मे इति।
सुऽमतिः। वाजऽरत्ना।
उरुष्यतम्। जरितारम्। युवम्। ह। श्रितः। कामः। नासत्या।
युवद्रिक् ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आप एकसे मन वाले हों तिस प्रकार आप

को वाजरत्ना सुमतिसे संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों! आप इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप पर ही निर्भर है ७

मधुंमतीरोषंधीर्द्याव आपो मधुंमन्नो भवत्वन्तरिंक्षम् ।
क्षेत्रंस्य पतिर्मधुंमान्नो अस्त्वरिंष्यन्तो अन्वेंनं चरेम ८

मधुऽमतीः । ओषधीः । द्यावः । आपः । मधुऽमत् । नः । भवतु ।
अन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य । पतिः । मधुऽमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु ।
एनम् । चरेम ॥ ८ ॥

औषधियें हमारे लिये मधुमती होवें, द्युलोक हमारे लिये मधुमय हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमय हो, क्षेत्रका पति हमारे लिये मधुमय हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें

पनाय्यं तदंश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजंसः
पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उपं याता
पिबंध्यै ॥ ९ ॥

पनाय्यम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः ।
रजसः । पृथिव्याः ।
सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽइष्टौ । सर्वान् । इत् । तान् ।
उप । यात । पिबध्यै ॥ ९ ॥

नवमेनुवाके सप्तचत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोनुवाकः ॥

आपकी स्तुतिरूप किया हुआ कर्म द्युलोक और ... पर (फलकी) वर्षा करने वाला है, गोपूजामें जो सैंकड़ों हैं सोमपान करके उन सबको आप प्राप्त होते हैं अर्थात् पान करानेसे इन सब स्तोत्रोंके पाठका फल मिलता है ॥

नवम अनुवाकमें सैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त (७१९)

नवम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका विंशकाण्ड ऋषिकुमार
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित
समाप्त.

॥ विंशः काण्डः समाप्तः ॥

॥ अथर्ववेदसंहिता पूर्णा ॥



मिलने का पता—
सनातनधर्म-यन्त्रालय,
मुराद